



हिंदी साहित्य का आदिकाल और भक्ति काल

Edited By
Dr. Vinod Kumar

Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम
(SYLLABUS)

हिंदी साहित्य का आदिकाल और भक्ति काल

उद्देश्य

- छात्रों में साहित्य समझने, उसका आस्वादन करने तथा मूल्यांकन करने की दृष्टि को बढ़ाना।
- छात्रों को साहित्य के संदर्भ में विभिन्न साहित्यिक विधाओं के विकास क्रम का परिचय देना।
- छात्रों को युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में हिंदी से अवगत कराना।

Sr. No.	Content
1	हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन, नामकरण की समस्या, आदिकाल के नामकरण की समस्या और विविध परिस्थितियाँ
2	आदिकालीन साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ, आदिकालीन साहित्य का परवर्ती काव्य पर प्रभाव, पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) की सामान्य परिस्थितियाँ और भक्ति के उदय के कारण
3	निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि एवं प्रमुख विशेषताएँ, प्रमुख संत कवि एवं उनका योगदान सूफी काव्य परम्परा की वैचारिक पृष्ठभूमि, परम्परा और भारतीय संस्कृति एवं लोक-जीवन
4	प्रमुख सूफी कवि, सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ, राम एवं कृष्ण काव्य धारा: प्रमुख कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ अष्टछाप के प्रमुख कवि
5	भक्तिकाल : हिन्दी साहित्य के स्वर्णयुग के रूप में भक्तिकालीन हिन्दी कविता: अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

विषय-सूची

इकाई (Units)

(CONTENTS)

पृष्ठ संख्या (Page No.)

1.	हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन, सीमा निर्धारण एवं नामकरण <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>	1
2.	हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में काल विभाजन एवं नामकरण की समस्या <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>	7
3.	आदिकालीन परिस्थितियाँ <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	14
4.	आदिकालीन साहित्य परंपरा : जैन, सिद्ध एवं नाथ साहित्य, रासो साहित्य <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	20
5.	आदिकालीन साहित्य परंपरा : खुसरौ, चंदबरदाई, विद्यापति एवं अब्दुल रहीम <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>	34
6.	आदिकालीन साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>	43
7.	आदिकालीन साहित्य का परवर्ती काव्य पर प्रभाव <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	48
8.	पूर्व मध्यकाल (भक्ति काल) भक्तिकालीन परिस्थितियाँ एवं भक्ति के उदय के कारण <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>	53
9.	निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि एवं प्रमुख विशेषताएँ, प्रमुख संत कवि एवं उनका योगदान <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>	68
10.	हिंदी सूफी काव्य परंपरा <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>	76
11.	प्रमुख सूफी कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	81
12.	राम एवं कृष्ण काव्य धारा : प्रमुख कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>	89
13.	भक्तिकालीन हिंदी : भक्तिकाल स्वर्ण युग के रूप में <i>Vinod Kumar, Lovely Professional University</i>	116
14.	भक्तिकालीन अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ <i>Hardeep Kaur, Lovely Professional University</i>	120
15.	रीतिकाल : प्रमुख प्रवृत्तियाँ, दरबारी संस्कृति एवं लक्षण, ग्रंथों की परम्परा <i>Reeta Singh, Lovely Professional University</i>	137

नोट

इकाई-1 : हिंदी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन, सीमा निर्धारण एवं नामकरण

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 1.1 काल विभाजन
 - 1.1.1 हिंदी के प्रमुख इतिहासकारों द्वारा किए गए काल विभाजन
 - 1.1.2 मिश्रबंधुओं के काल विभाजन की त्रुटियाँ
 - 1.1.3 विभिन्न काल खंडों के नामकरण
- 1.2 सारांश (Summary)
- 1.3 शब्दकोश (Keywords)
- 1.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- काल विभाजन के आधार को जानने हेतु।
- इतिहासकारों द्वारा किए गए काल विभाजन को जानने हेतु।
- काल खण्डों के नामकरण को जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

काल विभाजन के कई आधार हो सकते हैं। यथा—

1. कर्ता के आधार पर—प्रसाद युग, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग।
2. प्रवृत्ति के आधार पर—भक्तिकाल, संतकाव्य, सूफीकाव्य, रीतिकाल, छायावाद, प्रगतिवाद।
3. विकासवादिता के आधार पर—आदिकाल, आधुनिक काल, मध्यकाल।
4. सामाजिक तथा सांस्कृतिक घटनाओं के आधार पर—राष्ट्रीय धारा, स्वातंत्र्योत्तर काल, स्वच्छंदतावाद, आदि। इस संबंध में उल्लेखनीय बिंदु निम्नवत् हैं—
 1. काल विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों की समानता के आधार पर होना चाहिए।
 2. कालों का नामकरण यथासंभव मूल चेतना (प्रधान प्रवृत्ति) को आधार बनाकर करना चाहिए।
 3. युगों (कालों) का सीमांकन मूल प्रवृत्तियों के आरंभ और समापन के अनुसार होना चाहिए।
 4. काल की मूल प्रवृत्ति का निर्धारण प्रमुख ग्रंथों के आधार पर करना चाहिए।

1.1 काल विभाजन

1.1.1 हिंदी के प्रमुख इतिहासकारों द्वारा किए गए काल विभाजन

1. गार्सा-द-तासी, शिवसिंह सेंगर ने काल विभाजन का कोई प्रयास नहीं किया।
2. ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान' को ग्यारह अध्यायों में विभक्त किया है। प्रत्येक अध्याय एक काल खंड को व्यक्त करता है। इन्होंने लेखकों एवं कवियों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण किया है।

इस काल विभाजन में वैज्ञानिकता का अभाव है तथा अध्यायों की संख्या अधिक होने से उसे काल विभाजन मानना उपयुक्त नहीं है।

3. मिश्रबंधुओं का काल विभाजन—मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक 'मिश्रबंधु विनोद' (1913 ई.) में निम्न काल विभाजन प्रस्तुत किया—

- | | |
|-----------------|---|
| 1. आरंभिक काल | <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;"> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> </div> (क) पूर्वारंभिक काल (700 - 1343 वि.)
(ख) उत्तरारंभिक काल (1344 - 1444 वि.) |
| 2. माध्यमिक काल | <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;"> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> </div> (क) पूर्व माध्यमिक काल (1445 - 1560 वि.)
(ख) प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561 - 1680 वि.) |
| 3. अलंकृत काल | <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;"> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> </div> (क) पूर्वालंकृत काल (1681 - 1790 वि.)
(ख) उत्तरालंकृत काल (1791 - 1889 वि.) |
| 4. परिवर्तन काल | <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;"> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> </div> (क) (1890 - 1925 वि.) |
| 5. वर्तमान काल | <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;"> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> <div style="display: inline-block; width: 10px; height: 10px; border: 1px solid black; margin-right: 5px;"></div> </div> (ख) (1926 वि. से अब तक) |

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. गार्सा-द-तासी, शिवसिंह सेंगर ने का कोई प्रयास नहीं किया।
2. मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक 1913 ई. में काल विभाजन प्रस्तुत किया।
3. वर्तमान काल 1890-1925 वि. से अब तक।

1.1.2 मिश्रबंधुओं के काल विभाजन की त्रुटियाँ

1. कालखंडों के नामकरण में एक जैसी पद्धति नहीं अपनाई गई। आरंभिक, माध्यमिक, वर्तमान काल विकासवादिता के आधार पर हैं तो अलंकृत काल आंतरिक प्रवृत्ति के आधार पर।
2. इस काल विभाजन का कोई सुस्पष्ट आधार नहीं है।
3. हिंदी साहित्य के इतिहास का प्रारंभ 700 वि. (64 ई.) से मानकर हिंदी के अंतर्गत अपभ्रंश की रचनाओं को समेट लिया गया है। हिंदी साहित्य का प्रारंभ 1000 ई. के आसपास हुआ था।
4. परिवर्तन काल असंगत है तथा कालों की संख्या भी अधिक है।



क्या आप जानते हैं मिश्रबंधुओं ने अपनी पुस्तक 'मिश्रबंधु विनोद' 1913 में काल विभाजन प्रस्तुत किया।

नोट

इन्हीं न्यूनताओं को ध्यान में रखकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उक्त काल विभाजन पर व्यंग्य करते हुए लिखा है—“सारे रचना काल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर, इत्यादि खंडों में आँख मूंदकर बाँट देना—यह भी न देखना कि किस खंड के भीतर क्या आता है और क्या नहीं—किसी वृत्त संग्रह को इतिहास नहीं बना सकता।”

4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का काल विभाजन—आचार्य शुक्ल ने ‘हिंदी साहित्य के इतिहास’ (1929 ई.) में निम्न काल विभाजन किया—

1. वीरगाथाकाल (संवत् 1050-1375 वि.)
2. भक्तिकाल (संवत् 1375-1700 वि.)
3. रीतिकाल (संवत् 1700-1900 वि.)
4. गद्यकाल (संवत् 1900-1984 वि.)

वस्तुतः शुक्लजी ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में दोहरा नामकरण करते हुए उसका प्रारूप निम्न प्रकार से दिया है—

- | | |
|-----------------------------|-----------------|
| 1. आदिकाल (वीरगाथाकाल) | (1050-1375 वि.) |
| 2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) | (1375-1700 वि.) |
| 3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) | (1700-1900 वि.) |
| 4. आधुनिक काल (गद्य काल) | (1900-1984 वि.) |

स्पष्ट है कि लोग जिसे आदिकाल कहते हैं शुक्लजी उस काल में ‘वीरता’ की प्रवृत्ति को प्रधान मानकर उसका नाम वीरगाथाकाल रखना चाहते हैं। इसी प्रकार पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल, उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल तथा आधुनिक काल को वे गद्यकाल कहे जाने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार वीरगाथाकाल में वीरता की, भक्तिकाल में भक्ति की, रीतिकाल में रीतितत्व निरूपण की और आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता है, इसलिए प्रधान प्रवृत्ति के आधार पर ही इन कालखंडों का नामकरण करना उचित है।

शुक्ल जी काल विभाजन पद्धति के दो आधार हैं—

1. प्रधान प्रवृत्ति, 2. ग्रंथों की प्रसिद्धि।

जिस कालखंड में एक विशेष ढंग की रचनाएँ अधिक मिलीं उसे एक अलग कालखंड माना गया और रचनाओं की प्रचुरता के आधार पर प्रधान प्रवृत्ति का निर्धारण कर लिया गया। प्रधान प्रवृत्ति के लिए लोक प्रसिद्ध ग्रंथों को ही आधार बनाया गया है।

शुक्लजी के काल विभाजन में सर्वाधिक आपत्ति विद्वानों को वीरगाथाकाल नाम पर है। इस काल की अधिकांश सामग्री आधारहीन एवं अप्रामाणिक है। अतः उसके आधार पर प्रधान प्रवृत्ति का निर्धारण नहीं हो सकता। कुछ आलोचकों ने इस नाम को अनुचित बताकर इसे आदिकाल कहना ही उपयुक्त माना है।

एक प्रवृत्ति को प्रधानता देकर शेष को गौण मान लेने का दृष्टिकोण भी कुछ लोगों के मत से एकांगी है जो इतिहास की अधूरी एवं एक पक्षीय व्याख्या करता है जिसे वैज्ञानिक नहीं कह सकते।

फिर भी यह कहना उचित है कि शुक्लजी की काल विभाजन पद्धति का आधार तर्कसंगत एवं पुष्ट है। उनका काल विभाजन सरल एवं सुस्पष्ट है। अधिकतर परवर्ती इतिहासकारों ने उसी का आधार ग्रहण किया है।

5. डॉ. रामकुमार वर्मा का काल विभाजन—डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास ग्रंथ ‘हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास’ (1938 ई.) में निम्न प्रकार काल विभाजन किया—

1. संधिकाल (750 वि. - 1000 वि.)
2. चारणकाल (1000 वि. - 1375 वि.)
3. भक्तिकाल (1375 वि. - 1700 वि.)

नोट

4. रीतिकाल (1700 वि. - 1900 वि.)

5. आधुनिक काल (1900 वि. - अब तक)

संधिकाल में उन्होंने अपभ्रंश की रचनाएँ समाविष्ट की हैं। चारणकाल और शुक्लजी के वीरगाथाकाल में कोई मौलिक अंतर नहीं है। वीरगाथाओं के रचयिता चारण कहलाते थे। शुक्लजी ने नामकरण रचना की प्रवृत्ति के आधार पर किया जबकि डॉ. वर्मा ने रचनाकार के आधार पर किया।

6. डॉ. गणपति चंद्र गुप्त का काल विभाजन—इन्होंने 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' (1965 ई.) में निम्न काल विभाजन किया—

1. प्रारंभिक काल (1184-1350 ई.)

2. मध्यकाल 1. पूर्व मध्यकाल (1350-1500 ई.)

2. उत्तर मध्यकाल (1500-1857)

3. आधुनिक काल (1857-1965 ई.)



टास्क मिश्रबंधुओं के काल विभाजन की त्रुटियों से क्या तात्पर्य है? समझाइए।

डॉ. गणपति चंद्र गुप्त का यह भी मत है कि हिंदी के प्रारंभिक काल एवं मध्यकाल में तीन प्रकार का काव्य मिलता है—(i) धर्माश्रित काव्य, (ii) राज्याश्रित काव्य, (iii) लोकाश्रित काव्य।

विभिन्न काल खंडों में विकसित काव्य परंपराओं का विवरण डॉ. गुप्त ने इस प्रकार दिया है—

1. प्रारंभिक काल	1. धार्मिक रास काव्य परंपरा 2. संत काव्य परंपरा	} धर्माश्रित काव्य
2. मध्यकाल	1. संत काव्य परंपरा 2. पौराणिक गीति परंपरा 3. पौराणिक प्रबंध काव्य परंपरा 4. रसिक भक्ति काव्य परंपरा	
	1. मैथिली गीति परंपरा 2. ऐतिहासिक रास काव्य परंपरा 3. ऐतिहासिक चरित काव्य परंपरा 4. ऐतिहासिक मुक्तक काव्य परंपरा 5. शास्त्रीय मुक्तक परंपरा	} राज्याश्रित काव्य
	1. रोमांसिक कथा काव्य परंपरा 2. स्वच्छंद प्रेम काव्य परंपरा	

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. कालखंडों के नामकरण में एक जैसी क्या नहीं अपनाई गई?

(क) नीति

(ख) विगति

(ग) पद्धति

(घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

5. शुक्लजी के काल विभाजन में सर्वाधिक आपत्ति विद्वानों को किस नाम पर है?

नोट

- (क) चारणकाल (ख) आधुनिक काल
(ग) आदिकाल (घ) वीरगाथा काल

6. चारणकाल और शुक्लजी के वीरगाथाकाल में कोई अंतर नहीं है।

- (क) भौगोलिक (ख) खगोलिक
(ग) मौलिक (घ) आंदोलित

1.1.3 विभिन्न काल खंडों के नामकरण

1. आदिकाल

- (अ) वीरगाथाकाल — आचार्य रामचंद्र शुक्ल
(ब) आदिकाल — हजारीप्रसाद द्विवेदी
(स) चारणकाल — डॉ. रामकुमार वर्मा
(द) बीज वपन काल — महावीर प्रसाद द्विवेदी
(य) सिद्ध सामंत युग — राहुल सांकृत्यायन
(र) आरंभिक काल — मिश्र बंधु
(ल) प्रारंभिक काल — डॉ. गणपति चंद्र गुप्त

2. पूर्व मध्यकाल—भक्तिकाल।

3. उत्तर मध्यकाल—रीतिकाल, अलंकृतकाल, शृंगारकाल, कला काल।

4. आधुनिक काल—गद्यकाल, वर्तमान काल।

स्पष्ट है कि प्रथम कालखंड के नामकरण पर ही अधिक विवाद है। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में जो नाम सर्वाधिक प्रचलित हैं, वे इस प्रकार हैं—

1. आदिकाल (1000 ई. से 1350 ई.)
2. भक्तिकाल (1350 ई. से 1650 ई.)
3. रीतिकाल (1650 ई. से 1850 ई.)
4. आधुनिक काल (1850 ई. से अब तक)

उक्त नाम ही अब सर्वस्वीकृत हैं। इतिहास ग्रंथों में इन्हीं का प्रयोग होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. शुक्लजी ने नामकरण रचना की प्रवृत्ति के आधार पर किया।
8. 'वीरगाथा काल' नामकरण शुक्लजी ने किया।
9. हिंदी के प्रारंभिक काल एवं मध्यकाल में आठ प्रकार का काव्य मिलता है।

1.2 सारांश (Summary)

- लोग जिसे आदिकाल कहते हैं शुक्लजी उस काल में 'वीरता' की प्रवृत्ति को प्रधान मानकर उसका नाम **वीरगाथाकाल** रखना चाहते हैं। इसी प्रकार पूर्व मध्यकाल को **भक्तिकाल**, उत्तर मध्यकाल को **रीतिकाल** तथा आधुनिक काल को वे **गद्यकाल** कहे जाने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार वीरगाथाकाल में वीरता की, भक्तिकाल में भक्ति की, रीतिकाल में रीतितत्व निरूपण की और आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता है, इसलिए प्रधान प्रवृत्ति के आधार पर ही इन कालखंडों का नामकरण करना उचित है।
- यह कहना उचित है कि शुक्लजी की काल विभाजन पद्धति का आधार तर्कसंगत एवं पुष्ट है। उनका काल विभाजन सरल एवं सुस्पष्ट है। अधिकतर परवर्ती इतिहासकारों ने उसी का आधार ग्रहण किया है।

1.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **अप्रमाणिक** : जिसका कोई प्रमाण न हो।
2. **आधारहीन** : जिसका कोई आधार न हो।
3. **इतिहासकार** : इतिहास लिखने वाला

1.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मिश्रबंधुओं के काल विभाजन की त्रुटियों से क्या तात्पर्य है? समझाइए।
2. शुक्लजी के काल विभाजन के दो आधार क्या हैं? उल्लेख कीजिए।
3. विभिन्न काल खंडों के नामकरण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

- | | | |
|---------------|----------------------|-----------|
| 1. काल विभाजन | 2. 'मिश्रबंधु विनोद' | 3. 1926 |
| 4. (ग) | 5. (घ) | 6. (ग) |
| 7. सत्य | 8. सत्य | 9. असत्य। |

1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



- पुस्तकें
1. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
 2. हिंदी साहित्य का इतिहास—नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
 3. हिंदी साहित्य का इतिहास—कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।
 4. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।

नोट

इकाई-2 : हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में काल विभाजन एवं नामकरण की समस्या

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 2.1 हिंदी साहित्य लेखन और काल विभाजन
 - 2.1.1 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में काल विभाजन की समस्या
 - 2.1.2 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन परंपरा में नामकरण की समस्या
- 2.2 सारांश (Summary)
- 2.3 शब्दकोश (Keywords)
- 2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- हिंदी साहित्येतिहास लेखन में काल विभाजन की समस्या जानने हेतु।
- मिश्रबंधुओं द्वारा काल विभाजन समझने हेतु।
- हिंदी साहित्येतिहास लेखन परंपरा में नामकरण की समस्या जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

हिंदी साहित्येतिहास लेखन में जो आरंभिक प्रयास थे कविमाला या 'भक्तिमाला' सदृश रचनाएँ हों, चाहे गार्सा द तासी या शिवसिंह सेन के प्रयास—उनमें काल-विभाजन का प्रयास नहीं किया गया। यह प्रयास प्रथमतः जार्ज ग्रियर्सन ने किया व संपूर्ण साहित्य को दो कालों में बाँटा। किसी भी इतिहास में प्रथम समस्या काल-विभाजन की होती है व द्वितीय उन कालखंडों के सही नामकरण की। कालखंडों का नाम यादृच्छिक आधार पर नहीं रखा जा सकता अतः प्रयास यह किया जाता है कि जहाँ तक संभव हो, नामकरण साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर हो जिसने तत्कालीन साहित्य के स्वरूप के निर्धारण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हो। हिंदी साहित्येतिहास लेखन में नामकरण की समस्या सामान्यतः प्रारंभिक काल (या आदिकाल) तथा उत्तरमध्यकाल अथवा रीतिकाल के संदर्भ में उठती हैं। नामकरण की अगली समस्या आधुनिक काल के कुछ उपखंडों को लेकर है। आधुनिककालीन गद्य-विधाओं के कालखंडों का नामकरण प्रायः एक सरलीकरण का शिकार हुआ है। किंतु इस सरलीकरण की समस्याओं को समझते हुए कुछ इतिहासकारों ने विशेषतः स्वतंत्रता के बाद प्रत्येक विधा का विभाजन साहित्यिक आधार पर किया।

2.1 हिंदी साहित्य लेखन और काल विभाजन

2.1.1 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में काल विभाजन की समस्या

कोई भी इतिहास यूँ तो निरंतरता की प्रवृत्तियों के कारण समग्र होता है किंतु उसकी समग्रता का अपबोध करने के लिए उसका वैज्ञानिक वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से काल विभाजन की समस्या साहित्येतिहास लेखन में महत्वपूर्ण हो जाती है।



क्या आप जानते हैं

आधुनिककालीन गद्य-विधाओं के कालखंडों का नामकरण प्रायः एक सरलीकरण का शिकार हुआ है। किंतु इस सरलीकरण की समस्याओं को समझते हुए कुछ इतिहासकारों ने विशेषतः स्वतंत्रता के बाद प्रत्येक विधा का विभाजन साहित्यिक आधार पर किया।

हिंदी साहित्येतिहास लेखन परंपरा में जो आरंभिक प्रयास थे, चाहे वे 'भक्तिमाला' या 'कविमाला' सदृश रचनाएँ हों, चाहे गार्सी द तासी या शिवसिंह सेंगर के प्रयास; उनमें काल-विभाजन का प्रयास नहीं किया गया। यह प्रयास प्रथमतः जॉर्ज ग्रियर्सन ने किया व संपूर्ण साहित्य को 11 कालों में बाँटा। इस विभाजन में समस्या यह थी कि इसमें कई कालखंड गैर साहित्यिक आधारों पर स्थापित किए गए थे, यथा—'कंपनी के शासन में हिंदुस्तान', 'विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान', '18वीं शताब्दी; कुछ काल व्यक्ति विशेष पर आधृत हो गए, यथा 'जायसी की प्रेम कविता', तुलसीदास इत्यादि। उन्होंने पहले काल अर्थात् चारणकाल का निश्चित समय 700 से 1300 ई. तो बताया किंतु शेष कालों का निश्चित विभाजन न कर सके। कुल मिलाकर यह विभाजन अव्यवस्थित ही रहा। काल विभाजन का अगला प्रयास मिश्रबंधुओं ने किया व मूलतः पाँच काल खंडों को स्वीकृत किया। पुनः पहले तीन खंडों के दो-दो उपखंड बनाए जिससे कुल आठ काल निर्धारित हुए, जो इस प्रकार हैं—

1. पूर्व आरंभिक काल	643-1286 ई.	आरंभिक काल
2. उत्तर आरंभिक काल	1287-1387 ई.	
3. पूर्व माध्यमिक काल	1388-1503 ई.	माध्यमिक काल
4. प्रौढ़ माध्यमिक काल	1504-1624 ई.	
5. पूर्व अलंकृत काल	1624-1733 ई.	अलंकृत काल
6. उत्तर अलंकृत काल	1734-1832 ई.	
7. परिवर्तन काल	1833-1868 ई.	
8. वर्तमान काल	1869-अद्यतन	

इस काल-विभाजन की मूल समस्या यह है कि यह अत्यंत जटिल है व इसका पर्याप्त तार्किक व वैज्ञानिक आधार नहीं है।



नोट्स

हिंदी साहित्य के काल विभाजन का सबसे ठोस प्रयास आचार्य शुक्ल ने किया।

हिंदी साहित्य के काल विभाजन का सबसे ठोस प्रयास आचार्य शुक्ल ने किया व 900 वर्षों की परंपरा को, उन्होंने चार कालों में विभाजित किया—

नोट

1. वीरगाथाकाल	1050-1375 संवत्
2. भक्तिकाल	1375-1700 संवत्
3. रीतिकाल	1700-1900 संवत्
4. आधुनिक काल	1900 संवत्-अद्यतन

यह काल-विभाजन न केवल वैज्ञानिक है बल्कि जटिलताओं से मुक्त भी है। इसमें समस्या मात्र यह आती है कि भक्तिकाल के अंत में रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ दिखने लगती हैं व भारतेंदु काल में भी रीतिकाल की छाप दिखती है। इसकी व्याख्या शुक्ल जी ने इन्हें गौण प्रवृत्तियाँ कहकर की।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

1. काल विभाजन का अगला प्रयास ने किया।
2. हिंदी साहित्य के का सबसे ठोस प्रयास आचार्य शुक्ल ने किया।
3. हिंदी साहित्येतिहास लेखन परंपरा काल विभाजन की समस्या का पर्याप्त कर चुकी है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सामान्यतः शुक्ल जी के ढाँचे को स्वीकार किया किंतु काल विभाजन में थोड़ा परिवर्तन किया। उन्होंने आदिकाल की सीमा को कुछ आगे तक बढ़ाया व इससे भक्तिकाल व रीतिकाल की सीमा स्वतः आगे बढ़ गई। इनका काल विभाजन इस प्रकार है-

1. आदिकाल	1000-1400 ई.
2. पूर्व मध्यकाल	1400-1700 ई.
3. उत्तर मध्यकाल	1700-1900 ई.
4. आधुनिक काल	1900-अद्यतन

वर्तमान समय में सामान्यतः आचार्यद्वय के मतों के समन्वय पर लगभग सहमति कायम हो चुकी है।

आज के समय में समस्या यह है कि विगत 150 वर्षों के आधुनिक काल को कैसे उपखंडों में विभाजित किया जाए? चूँकि साहित्यिक चेतना का तीव्र विकास हुआ है, अतः काल-परिवर्तन अब 300-400 वर्षों के स्थान पर 8-10 वर्षों में होने लगा है; किंतु अब सामान्य सहमति कायम हो चुकी है जिसके अनुसार विभाजन इस प्रकार है-

1. भारतेंदु युग	1850-1900 ई.
2. द्विवेदी युग	1900-1918 ई.
3. छायावाद	1918-1936 ई.
4. प्रगतिवाद	1936-1943 ई.
5. प्रयोगवाद	1943-1951 ई.
6. नई कविता	1951-1960 ई.
7. साठोत्तरी कविता	1960 से अद्यतन

ध्यान से देखें तो 1918 ई. के बाद पूरा विभाजन कविता को केंद्र में रखकर किया गया है, जबकि अब गद्य का महत्त्व अधिक है। इसलिए गद्य-विधाओं का विभाजन अलग से किया गया, जो इस प्रकार है।

1. उपन्यास	(i) प्रेमचंद पूर्व युग	(ii) प्रेमचंद युग
	(iii) प्रेमचंदोत्तर युग	(iv) स्वातंत्र्योत्तर युग
2. कहानी	(i) प्रेमचंदपूर्व युग	(ii) प्रेमचंद युग

नोट

- (iii) प्रेमचंदोत्तर युग
- (क) नई कहानी (ख) अकहानी
- (ग) सहज कहानी (घ) सक्रिय कहानी
- (ङ) समांतर कहानी (च) सचेतन कहानी
- (छ) समकालीन कहानी
3. नाटक (i) प्रसाद पूर्व युग (ii) प्रसाद युग
- (iii) प्रसादोत्तर आलोचना
4. आलोचना (i) शुक्ल-पूर्व युग (ii) शुक्ल युग
- (iii) शुक्लोत्तर आलोचना
- (क) स्वच्छंदतावादी आलोचना (ख) ऐतिहासिक आलोचना
- (ग) मनोविश्लेषणात्मक आलोचना (घ) नई समीक्षा
- (ङ) समकालीन समीक्षा
5. निबंध (i) शुक्ल-पूर्व युग (ii) शुक्ल युग
- (iii) शुक्लोत्तर युग

स्पष्ट है कि हिंदी साहित्येतिहास लेखन परंपरा काल विभाजन की समस्या का पर्याप्त समाधान कर चुकी है। कुछ विवाद अभी भी शेष हैं किंतु समय के साथ उनके भी सुलझ जाने की संभावना मानी जा सकती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न-

4. काल विभाजन का अगला प्रयास मिश्रबंधुओं ने मूलतः कितने काल खंडों में स्वीकृत किया है?
- (क) आठ (ख) पंद्रह
- (ग) तीन (घ) पाँच
5. भारतेंदु काल में भी की छाप दिखती है।
- (क) रीतिकाल (ख) आधुनिक काल
- (ग) आदिकाल (घ) मध्यकाल
6. वर्तमान समय में सामान्यतः आचार्यद्वय के मतों के समन्वय पर लगभग क्या स्थापित हो चुकी है?
- (क) असहमति (ख) असहजता
- (ग) सहमति (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

2.1.2 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन परंपरा में नामकरण की समस्या

किसी भी इतिहास में प्रथम समस्या कालविभाजन की होती है व द्वितीय उन कालखंडों के सही नामकरण की। कालखंडों का नाम यादृच्छिक आधार पर नहीं रखा जा सकता अतः प्रयास यह किया जाता है कि जहाँ तक संभव हो, नामकरण साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर हो और यदि एकदम संभव न हो तो उस कारण के आधार पर हो जिसने तत्कालीन साहित्य के स्वरूप के निर्धारण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हो। ऐसी स्थिति में नाम का आधार राजनीतिक भी हो सकता है, जैसे 'विक्टोरिया युग', सामाजिक भी, जैसे 'पुनर्जागरण काल', व्यक्तिमूलक भी, जैसे 'भारतेंदु युग' और निर्विशेष भी, जैसे 'आदिकाल'।



क्या आप जानते हैं किसी भी इतिहास में प्रथम समस्या काल विभाजन की होती है व द्वितीय समस्या उन कालखंडों के सही नामकरण की।

नोट

हिंदी साहित्येतिहास लेखन में नामकरण की समस्या सामान्यतः प्रारंभिक काल (या आदिकाल) तथा उत्तरमध्यकाल (अथवा रीतिकाल) के संदर्भ में उठती है। जहाँ तक भक्तिकाल का प्रश्न है, तत्कालीन भक्ति आंदोलन की व्यापकता व साहित्य पर उसके प्रभाव को देखते हुए वह सर्वसम्मति बन चुकी है कि उसका नाम भक्तिकाल ही माना जाए। इसी प्रकार, जिसे हम आधुनिक काल कहते हैं, उसका समय भी ठीक वहीं है जो आधुनिकता के उद्भव का है और चूँकि आधुनिकता साहित्य व सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाली अति महत्वपूर्ण शक्ति रही है, इसलिए इसे आधुनिक काल कहने की सहमति रही है।

प्रथम समस्या 'आदिकाल' की है। इसे जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'चारणकाल', मिश्रबंधुओं ने 'प्रारंभिक काल', शुक्ल जी ने 'वीरगाथाकाल', पं. राहुल सांकृत्यायन ने 'सिद्ध सामंत काल' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'बीजवपन काल', आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'वीरकाल', रामकुमार वर्मा ने 'संधिकाल एवं चारणकाल', बच्चन सिंह 'अपभ्रंश काल जातीय साहित्य' तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'आदिकाल' कहा। इनमें 'आदिकाल' व 'प्रारंभिक काल' के अतिरिक्त जितने भी नामकरण हैं, वे किसी न किसी साहित्य की प्रवृत्ति को आधार बनाकर रखे गए हैं किंतु वर्तमान खोजों से स्पष्ट है कि उक्त काल में किसी भी प्रवृत्ति को केंद्रीय नहीं माना जा सकता। अतः धीरे-धीरे सहमति बनी कि प्रवृत्ति विशेष के स्थान पर निर्विशेष नामकरण ही इस काल हेतु उचित होगा। 'आदिकाल' नामकरण में आरंभिक होने के साथ-साथ पूर्वज होने का अहसास भी शामिल है, अतः अब 'आदिकाल' नाम पर सहमति बन चुकी है।

उत्तर मध्य काल के संदर्भ में भी एक सीमित विवाद है। इस काल में उत्पन्न होने वाली विशेष प्रवृत्तियों को देखते हुए मिश्रबंधुओं ने इसे 'अलंकृतकाल', रमाशंकर शुक्ल रसाल ने 'कलाकाल' आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'शृंगारकाल' तथा आचार्य शुक्ल ने 'रीतिकाल' कहा। चूँकि इस काल में विशेष साहित्यिक प्रवृत्ति मिलती है। अतः इसमें उत्तर मध्यकाल जैसे निर्विशेष, कालबोधक नाम की आवश्यकता नहीं है। शेष तीनों प्रवृत्तियाँ इस काल के केंद्र में हैं किंतु ध्यानपूर्वक देखें तो रीतिकाव्य परंपरा न केवल इस काल की व्यावर्तक विशेषता है, बल्कि इस काल की बहुव्याप्त विशेषता भी है। इसका अर्थ हुआ कि इस काल की 'अलंकृति' एवं 'शृंगार' भी अपने आप में रीतिबद्ध हैं। अतः अब यह सर्वसम्मति बन चुकी है कि उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल ही कहा जाए।



टास्क हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन परंपरा में नामकरण की समस्या से क्या अभिप्राय है? समझाइए।

नामकरण की अगली समस्या आधुनिक काल के कुछ उपखंडों को लेकर है। 1850 ईस्वी से अभी तक के कालखंड को समग्रता में आधुनिक काल कहना तो सर्वस्वीकृत है किंतु इस काल के भीतर जो साहित्यिक आंदोलन पैदा हुए हैं, उनके नामकरण पर कुछ विवाद हैं। 'भारतेंदु काल' नामकरण पर यद्यपि सर्वसम्मति बन चुकी है तथापि ध्यातव्य है कि इसे शुक्ल जी ने 'प्रथम उत्थान' कहा था व गणपतिचंद्र गुप्त ने 'स्वच्छंदताकाल' कहना उचित समझा है। इसी प्रकार 'द्विवेदी युग' नाम भी स्वीकृत है किंतु इसे शुक्ल जी ने 'द्वितीय उत्थान' व गणपतिचंद्र गुप्त ने 'पुनर्जागरण काल' कहा। 'छायावाद' नामकरण स्वीकृत तो है किंतु छायावादी कवियों को सदैव शिकायत रही कि यह नाम आलोचना करता हुआ सा प्रतीत होता है। 'प्रगतिवाद' पर भी सहमति है किंतु 'प्रगतिवाद' व 'प्रगतिशील' के अंदर की समस्या अब तक अनसुलझी है। इसी प्रकार 'प्रयोगवाद' नाम अति प्रचलित होने के कारण चल तो पड़ा किंतु स्वयं इस आंदोलन के प्रवर्तक अज्ञेय को यह शिकायत रही कि आलोचकों ने उनके 'प्रयोगशील' को जबर्दस्ती 'प्रयोगवाद' बना दिया। 'नई कविता' पर ऐसा कोई विवाद नहीं है किंतु यह समस्या अवश्य है कि इसमें 'नई' शब्द 'विशेषण' है या संज्ञा का ही अंश। इसी प्रकार 'अकविता'

नोट

में यह समस्या सदैव रही कि 'अ' उपसर्ग का अर्थ 'अभाव' है, 'विरुद्ध' है या कुछ और। कुल मिलाकर आधुनिक काल की कविता के इतिहास के कालखंडों के नामकरण लगभग तय हो चुके हैं किंतु कहीं न कहीं विरोध की अनुगुंज सुनाई जरूर देती है।

आधुनिककालीन गद्य विधाओं के कालखंडों का नामकरण प्रायः एक सरलीकरण का शिकार हुआ है। इसमें साहित्यिक प्रवृत्तियों को आधार बनाने के स्थान प्रायः एक केंद्रीय रचनाकार को चुनकर उसी के भूत, वर्तमान व भविष्य को कालविभाजन व नामकरण का आधार बनाया गया। इस कारण उपन्यास व कहानी प्रेमचंदपूर्व प्रेमचंदयुगीन व प्रेमचंदोत्तर हो गए; निबंध व आलोचना शुक्ल पूर्व, शुक्ल युगीन व शुक्लोत्तर हो गए व नाटक प्रसादपूर्व, प्रसादयुगीन व प्रसादोत्तर हो गए।

किंतु इस सरलीकरण की समस्याओं को समझते हुए कुछ इतिहासकारों ने विशेषतः स्वतंत्रता के बाद, प्रत्येक विधा का विभाजन साहित्यिक आधार पर किया। ऐसा करने पर प्रेमचंदोत्तर उपन्यास कई धाराओं में बँट गया, यथा—जैनेंद्र आदि की 'मनोवैज्ञानिक धारा', यशपाल आदि की 'प्रगतिवादी धारा' भगवतीचरण वर्मा आदि की 'सामाजिक धारा', रेणु आदिक की 'आंचलिक धारा', कृष्णा सोबती आदि की 'महिला लेखन की धारा', राजेंद्र यादव आदि का 'नया उपन्यास' एवं मनोहर श्याम जोशी आदि का 'उत्तर आधुनिक उपन्यास'। इसी प्रकार प्रेमचंदोत्तर कहानी भी कई भागों में विभाजित हो गई इन हिस्सों में राजेंद्र यादव व कमलेश्वर की 'नई कहानी', कमलेश्वर की 'समांतर कहानी', महीप सिंह की 'सचेतन कहानी' राकेश वत्स की 'सक्रिय कहानी', श्रीकांत वर्मा आदि की 'अकहानी', अमृतराय की 'सहज कहानी' आदि परिगण्य हैं। आलोचना के क्षेत्र में शुक्लोत्तर आलोचना कई धाराओं में बँटी, यथा शांतिप्रिय द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी व डॉ. नगेंद्र की 'स्वच्छंदतावादी समीक्षा', आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की 'ऐतिहासिक आलोचना', प्रकाश चंद्र गुप्त व राम विलास शर्मा की 'प्रगतिवादी समीक्षा', डॉ. देवराज व (आरंभिक) नगेंद्र की 'मनोविश्लेषणवादी समीक्षा', लक्ष्मीकांत वर्मा, अज्ञेय व रघुवंश आदि की 'नई समीक्षा' व समकालीन समय में अशोक वाजपेयी आदि की 'भाववादी समीक्षा' प्रसिद्ध नामकरण हैं। इसी प्रकार नाटक को 'समस्या नाटक' तथा 'विसंगत (Absurd) नाटक' आदि धाराओं में बाँटा गया तथा शुक्लोत्तर निबंध को 'ललित निबंध' तथा 'व्यंग्यात्मक निबंध' जैसी धाराओं में वर्गीकृत किया गया। यह अवश्य कहा जा सकता है कि गद्य विधाओं में नामकरण अब प्रायः सुसंगत हो गए हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

- उत्तर मध्यकाल के संदर्भ में भी एक सीमित विवाद है।
- नामकरण की अगली समस्या आधुनिक काल के कुछ उपखंडों को लेकर नहीं है।
- आधुनिककालीन गद्य विधाओं के कालखंडों का नामकरण प्रायः एक सरलीकरण का शिकार हुआ।

2.2 सारांश (Summary)

- हिंदी साहित्येतिहास लेखन में नामकरण की समस्या सामान्यतः प्रारंभिक काल (या आदिकाल) तथा उत्तरमध्यकाल अथवा रीतिकाल के संदर्भ में उठती हैं। नामकरण की अगली समस्या आधुनिक काल के कुछ उपखंडों को लेकर है।
- हिंदी साहित्येतिहास लेखन परंपरा काल विभाजन की समस्या का पर्याप्त समाधान कर चुकी है। कुछ विवाद अभी भी शेष हैं किंतु समय के साथ उनके भी सुलझ जाने की संभावना मानी जा सकती है।
- आधुनिककालीन गद्य विधाओं के कालखंडों का नामकरण प्रायः एक सरलीकरण का शिकार हुआ है। इसमें साहित्यिक प्रवृत्तियों को आधार बनाने के स्थान पर प्रायः एक केंद्रीय रचनाकार को चुनकर उसी के भूत, वर्तमान व भविष्य को कालविभाजन व नामकरण का आधार बनाया गया। इस कारण उपन्यास व कहानी प्रेमचंदपूर्व प्रेमचंदयुगीन व प्रेमचंदोत्तर हो गए; निबंध व आलोचना शुक्ल पूर्व, शुक्ल युगीन व शुक्लोत्तर हो गए व नाटक प्रसादपूर्व, प्रसादयुगीन व प्रसादोत्तर हो गए।

2.3 शब्दकोश (Keywords)

नोट

1. विभाजन : बँटवारा
2. जटिल : मुश्किल, कठिन
3. नामकरण : नाम रखना

2.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. हिंदी साहित्य इतिहास लेखन में काल विभाजन की समस्या से क्या अभिप्राय है? समझाइए।
2. हिंदी साहित्य इतिहास लेखन परंपरा में नामकरण की समस्या को विस्तारपूर्वक समझाइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

- | | | |
|----------------|---------------|-----------|
| 1. मिश्रबंधुओं | 2. काल विभाजन | 3. समाधान |
| 4. (घ) | 5. (क) | 6. (ग) |
| 7. सत्य | 8. असत्य | 9. सत्य। |

2.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—ध्वन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।
3. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास—शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—वाण्य डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।

नोट

इकाई-3 : आदिकालीन परिस्थितियाँ

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 3.1 आदिकालीन साहित्य: परिस्थितियाँ
 - 3.1.1 राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ
 - 3.1.2 सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
- 3.2 सारांश (Summary)
- 3.3 शब्दकोश (Keywords)
- 3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- आदिकालीन साहित्य की परिस्थितियाँ जानने में।
- आदिकाल की धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ जानने में।
- आदिकाल की सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

साहित्य मानव-समाज के विविध भावों एवं नित नवीन रहने वाली चेतना की अभिव्यक्ति है। किसी काल विशेष के साहित्य की जानकारी से तद्युगीन मानव-समाज को समग्रतः जाना जा सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी काल विशेष के साहित्य में पाई जाने वाली प्रवृत्तियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के सापेक्ष होती हैं। यह सिद्धांत इस बात की आवश्यकता पर बल देता है कि साहित्य के प्रेरक तत्व के रूप में हम युगीन परिवेश को अवश्य जान लें। आदिकालीन साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है।

3.1 आदिकालीन साहित्य : परिस्थितियाँ

इस काल के साहित्य में जो प्रमुख विशेषताएँ उपलब्ध हो रही हैं, वे तद्युगीन परिस्थितियों से विकसित हुई हैं, अतः आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों से परिचित होने से पूर्व कारण, स्वरूप, तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का आकलन कर लेना चाहिए। इस काल की विभिन्न परिस्थितियों का आकलन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

3.1.1 राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ

नोट

1. **राजनीतिक परिस्थितियाँ**—राजनीतिक दृष्टि से यह युद्ध और अशांति का काल था। सम्राट हर्षवर्द्धन की मृत्यु (संवत् 704 वि.) के उपरांत उत्तर भारत खंड-खंड राज्यों में विभक्त हो गया था। गहरवार, परमार, चौहान और चंदेल वंशों के राजपूत राजाओं ने अपने-अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए थे। राजपूत राजा निरंतर युद्धों की आग में जलते-जलते अंततः शक्तिक्षीण हो गए थे और विदेशी आक्रांताओं का डटकर मुकाबला करने की स्थिति में नहीं रह गए थे। राजपूत शासकों में परस्पर युद्ध किसी आवश्यकतावश नहीं होते थे, कभी-कभी तो शौर्य प्रदर्शन मात्र के लिए भी युद्ध किए जाते थे।

भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर विदेशी आक्रमणों का भय बराबर बना रहता था। 10वीं शताब्दी में महमूद गजनवी ने और 12वीं शती में मुहम्मद गोरी ने भारत को पदाक्रांत किया। जनता विदेशी आक्रमणकारियों से तो त्रस्त थी ही, साथ ही युद्धकामी देशी राजाओं के अत्याचारों को भी सहन करने को विवश थी। यवन शक्तियों के आक्रमण का प्रभाव मुख्यतः पश्चिम एवं मध्य देश पर ही पड़ा, इन्हीं क्षेत्रों की जनता युद्धों एवं अत्याचारों से आक्रांत हुई। धीरे-धीरे समस्त हिंदी प्रदेश में स्थित राज्यों—दिल्ली, कन्नौज, अजमेर आदि पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 8वीं शती से 14वीं शती तक का यह काल खंड युद्ध, संघर्ष एवं अशांति से ग्रस्त रहा। राजाओं में संकुचित राष्ट्रीयता थी। व्यापक रूप से समूचे भारत को एक राष्ट्र के रूप में नहीं देखा गया। अराजकता, गृह-कलह, विद्रोह एवं युद्ध के इस वातावरण में कवियों ने एक ओर तो तलवार के गीत गाए तो दूसरी ओर आध्यात्मिकता की प्रवृत्ति के कारण हठयोग, उपदेशवृत्ति एवं आध्यात्मिकता की बात कही गई।

2. **धार्मिक परिस्थिति**—इस काल में अनेक प्रकार के धार्मिक मत-मतांतरों का अस्तित्व था। भारतीय धर्म साधना में उथल-पुथल मची हुई थी। वैदिक एवं पौराणिक धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म भी इस काल में अपना प्रभाव जमाने के लिए प्रयासरत थे। राजपूत राजा अहिंसामूलक जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म में विश्वास नहीं करते थे। उन पर शैव मत का प्रभाव अधिक था। गाहड़वार राजा स्मार्त मतावलंबी थे। मालवा नरेश वैदिक धर्म के अनुयायी थे तथा कलचुरी नरेश शैव धर्मावलंबी थे। वस्तुतः समस्त उत्तर भारत में धीरे-धीरे शैव मत बौद्धों एवं स्मार्तों के प्रभाव को ग्रहण करता हुआ एक नए रूप नाथ संप्रदाय के रूप में विकसित हो रहा था।



नोट्स साहित्य मानव-समाज के विविध भावों एवं नित नवीन रहने वाली चेतना की अभिव्यक्ति है।

आदिकाल में धार्मिक दृष्टि से तीन संप्रदायों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है—सिद्ध संप्रदाय, नाथ संप्रदाय एवं जैन संप्रदाय। बौद्ध धर्म कालांतर में विकृत होकर वज्रयान बन गया था। इन वज्रयानियों को ही सिद्ध कहते थे। धर्म की यह विकृत अवस्था थी। धर्म के वास्तविक आदर्शों के स्थान पर आचारविहीनता, चमत्कार प्रदर्शन एवं भोग विलास को प्रमुखता मिल गई थी। सिद्धों का प्रभाव निम्न वर्ग की अशिक्षित जनता पर अधिक था। वे तंत्र-मंत्र, जादू-टोना एवं चमत्कार प्रदर्शन द्वारा सामान्य जनता में अपना प्रभाव जमा रहे थे।

भारत के पश्चिमी प्रदेशों विशेषकर गुजरात में जैन-मत का बहुत अधिक प्रचार था। जैन मुनि धार्मिक तत्वों का निरूपण अपभ्रंश भाषा में कर रहे थे। स्वयंभू, पुष्पदंत, हेमचंद्र, धनपाल जैसे अनेक कवियों ने अपनी रचनाएँ जैन राजाओं के संरक्षण में लिखीं। बौद्ध धर्म की विकृति का प्रभाव जैन धर्म पर पड़ रहा था और यह भी अपने आदर्शों से दूर हट रहा था।

नोट



क्या आप जानते हैं

विक्रम की 12वीं शताब्दी में बौद्ध सिद्धों की प्रतिक्रिया स्वरूप नाथ संप्रदाय का उदय हुआ। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर परमसत्ता का साक्षात्कार घट (हृदय) के भीतर किया जा सकता है, नाथ पंथ के प्रवर्तक गोरखनाथ ने इसी का प्रचार-प्रसार किया। नाथ पंथ में योग पर विशेष बल दिया गया है साथ ही वर्ण-व्यवस्था का विरोध एवं बाह्याडंबरों का खंडन किया गया है।

बौद्ध और जैन धर्म में आई विकृति से वैदिक एवं पौराणिक धर्म में भी विकृति आ गई थी। वैष्णवों के पंचरात्र, शैवों के पाशुपत और शाक्तों के त्रिपुर-सुंदरी संप्रदायों में बौद्ध धर्म की पूजा पद्धति एवं वामाचार का प्रभाव परिलक्षित हो रहा था। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इस काल में विभिन्न धर्मों के मूलभूत आधार लुप्त हो चले थे और उनमें विकृतियों का समावेश हो गया था। जनता के समक्ष अनेक धार्मिक राहें बनती जा रही थीं। देशव्यापी इस धार्मिक अशांति के समय इस्लाम धर्म भी भारत के द्वार खटखटा रहा था। यद्यपि भारत में मुसलमानों का आगमन हो चुका था, किंतु इसका धर्म अभी अपने जड़ें नहीं जमा पाया था।

इन धार्मिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में यह कहना समीचीन है कि धार्मिक दृष्टि से आदिकाल का वातावरण अत्यंत दूषित था। जनता असंतोष, क्षोभ एवं भ्रम से ग्रस्त थी। आदिकालीन साहित्य में इसी मानसिकता के अनुरूप खंडन-मंडन, हठयोग, वीरता एवं श्रृंगारपरक रचनाओं को देखा जा सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

1. से समूचे भारत को एक राष्ट्र के रूप में नहीं देखा गया।
2. मालवा नरेश वैदिक धर्म के अनुयायी थे तथा कलचुरी नरेश शैव थे।
3. जनता के समक्ष अनेक धार्मिक बनती जा रही थीं।

3.1.2 सामाजिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

1. **सामाजिक परिस्थिति**-राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के कारण समाज में विशृंखलता आ गई थी। जनता शासन तथा धर्म दोनों ओर से निराश्रित होती जा रही थी। सामान्य जनता अशिक्षित थी, जो साधु संन्यासियों के शापों और वरदानों की ओर दृष्टि लगाए रहती थी। पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र और जप-तप करके लोग दुर्भिक्ष महामारी एवं युद्ध के संकटों को टालना चाहते थे। ब्राह्मणों के प्रति पूज्यभाव में कमी आ गई थी तथा वर्ण-व्यवस्था के प्रति लोगों का सम्मान नहीं रह गया था। निम्न समझी जानेवाली जातियों में से अनेक 'सिद्ध' हो जाते थे, जो वेद विरोधी थे। समाज में क्षत्रियों का प्राधान्य था। राजपूतों में शौर्य तो था परंतु वे उसका उपयोग पारस्परिक प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष में ही करते थे। वे वंशगौरव एवं अभिमान को लेकर गृह-कलह में ही उलझे रहते थे।

समाज में स्त्रियों के प्रति पूज्यभाव नहीं था, वे मात्र भोग्या बनकर रह गई थीं। सती प्रथा इस काल का एक भयंकर कोढ़ था। तत्कालीन भारत में स्वयंवर प्रथा भी थी, जो प्रायः युद्ध का कारण बन जाती थी। सुंदर राजकुमारियों से बलपूर्वक विवाह करने के लिए राजपूतों में युद्ध छिड़ जाना एक सामान्य बात हो गई थी। राजा और सामंत अंतःमुखी रंगरेलियों में व्यस्त रहते थे।

जीवन-यापन के साधन दुर्लभ थे तथा निर्धनता, युद्ध, अशांति के कारण जनता सदैव आतंकित रहती थी। तत्कालीन रासो काव्यों में समाज की इस हासोन्मुख स्थिति का पूरा-पूरा चित्र उपलब्ध होता है।

नोट

2. **साहित्यिक परिस्थिति**—आदिकाल में साहित्य रचना की तीन धाराएँ बह रही थीं। एक ओर तो परंपरागत संस्कृत साहित्य की रचना हो रही थी, तो दूसरी ओर प्राकृत अपभ्रंश भाषा में प्रभूत साहित्य का सृजन, जैसे कवियों के द्वारा किया जा रहा था। तीसरी धारा हिंदी में लिखे जाने वाले साहित्य की थी।

इस काल में संस्कृत साहित्य के अंतर्गत पुराणों एवं स्मृतियों पर टीकाएँ लिखी गईं तथा ज्योतिष एवं काव्यशास्त्र पर अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना की गई। 9वीं से 11वीं शती तक कन्नौज एवं कश्मीर संस्कृत साहित्य के केंद्र रहे हैं। आनंदवर्द्धन, मम्मट, भोज, क्षेमेंद्र, कुंतक, राजशेखर, विश्वनाथ, भवभूति एवं श्रीहर्ष जैसी प्रतिभाएँ इसी युग की देन हैं।

इस काल में अपभ्रंश प्रमुखतः धर्म की भाषा बन गई थी। जैन कवियों ने गुजरात में रहकर अनेक पुराणों को अपभ्रंश में नए रूपों में प्रस्तुत किया। स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल, हेमचंद्र जैसे जैन कवियों ने जो साहित्य प्रस्तुत किया है, वह अपनी मौलिकता एवं साहित्यिक के कारण उच्चकोटि का है।

देशभाषा हिंदी में भी जनता की मानसिक एवं भावात्मक दशाओं की अभिव्यक्ति एक वर्ग कर रहा था जिसे भाट या चारण कवि कहा गया। चारण कवियों की सामयिक आवश्यकता पर बल देते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, “उस समय तो जो भाट या चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय, शत्रु-कन्या-हरण का अत्युक्ति पूर्ण आलाप करता या रणक्षेत्रों में जाकर वीरों के हृदय में उत्साह की उमंगें भरा करता था, वही सम्मान पाता था।” निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने वाले एक वर्ग की आवश्यकता थी। चारण इसी श्रेणी के कवि थे। जिस प्रकार योरोप में वीरगाथाओं का विषय युद्ध और प्रेम रहा है, उसी प्रकार इन रचनाओं में भी वीर एवं शृंगार रसों की प्रधानता रही है। हिंदी भाषा में रचित इन काव्य ग्रंथों में एक ओर अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की गई है तो दूसरी ओर उनके युद्धोन्माद को व्यक्त करने वाली घटनाओं की योजना भी की गई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

- पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र और जप-तप करके लोग दुर्भिक्ष महामारी एवं युद्ध के को दालना चाहते थे।
(क) परिणाम (ख) स्वपनों
(ग) संकटों (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
- से शदी तक कन्नौज एवं कश्मीर संस्कृत साहित्य के केंद्र रहे हैं।
(क) 9वीं/11वीं (ख) 10वीं/15वीं (ग) 5वीं/7वीं (घ) 18वीं/20वीं
- हिंदी भाषा में रचित इन काव्य ग्रंथों में एक ओर अपने आश्रय दाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण की गई है।
(क) अनुकम्पा (ख) प्रशंसा
(ग) व्याख्या (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं



टास्क आदिकालीन साहित्य से क्या तात्पर्य है? विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

3. **सांस्कृतिक परिस्थिति**—सम्राट हर्षवर्द्धन के समय भारत सांस्कृतिक दृष्टि से अपने शिखर पर था हिंदू धर्म एवं संस्कृति राष्ट्रव्यापी एकता का आधार था। किंतु कालांतर में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अपने संकीर्ण दृष्टिकोण एवं धर्मान्धता की भावना से प्रेरित होकर भारतीय संस्कृतिक के मूल केंद्रों मंदिरों, मठों एवं विद्यालयों को नष्ट करने का पूरा-पूरा प्रयास किया।

नोट

हिंदुओं की स्थापत्य कला धार्मिक भावना से ओतप्रोत थी तथा अत्यंत उच्चकोटि की थी। प्रसिद्ध इतिहासकार **अलबरूनी** के अनुसार, “हिंदू कला के अत्यंत उच्च सोपान पर पहुँच चुके हैं। मुसलमान जब उनके मंदिर आदि को देखते हैं तो आश्चर्य चकित हो जाते हैं। वे न तो उनका वर्णन कर सकते हैं और न वैसा निर्माण ही कर सकते हैं।” संपूर्ण भारत में ऐसे अनेक मंदिरों का निर्माण आदिकाल में ही हुआ—आबू का जैन मंदिर, खजुराहों का कंदर्पेश्वर, पुरी, भुवनेश्वर, वेलोर, कांची आदि के मंदिर इसी काल की देन हैं।

मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव आदिकालीन हिंदू संस्कृति पर अनेक क्षेत्रों में पड़ने लगा था। उत्सव, मेले, परिधान, आहार, मनोरंजन आदि अनेक बातों में मुस्लिम रंग चढ़ने लगा था। दूसरी ओर हिंदू संगीतकला, वास्तुकला, आयुर्वेद एवं गणित का प्रभाव मुस्लिम संस्कृति पर पड़ने लगा। यह निष्कर्ष निकाल लेना इस दशा में असंगत न होगा कि आदिकालीन भारतीय संस्कृति परंपरा से विच्छिन्न होकर मुस्लिम संस्कृति के गहरे प्रभाव को स्वीकार करती जा रही थी।

संगीत के क्षेत्र में दोनों संस्कृतियों ने परस्पर आदान-प्रदान पर्याप्त मात्रा में किया है। गायन-वादन और नृत्य पर मुस्लिम प्रभाव पड़ रहा था तथा अनेक वाद्ययंत्रों सारंगी, तबला, अलगोजा से हिंदू परिचित हो रहे थे। आदिकालीन भारतीय संस्कृति निश्चित रूप से ह्रासोन्मुख थी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. हिंदू धर्म एवं संस्कृति राष्ट्रव्यापी एकता का आधार था।
8. मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव आदिकालीन हिंदू संस्कृति पर अनेक क्षेत्रों में नहीं पड़ने लगा था।
9. आदिकालीन भारतीय संस्कृति निश्चित रूप से ह्रासोन्मुख थी।

3.2 सारांश (Summary)

- राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 8वीं शती से 14वीं शती तक का यह काल खंड युद्ध, संघर्ष एवं अशांति से ग्रस्त रहा। राजाओं में संकुचित राष्ट्रीयता थी। व्यापक रूप से समूचे भारत को एक राष्ट्र के रूप में नहीं देखा गया। अराजकता, गृह-कलह, विद्रोह एवं युद्ध के इस वातावरण में कवियों ने एक ओर तो तलवार के गीत गाए तो दूसरी ओर आध्यात्मिकता की प्रवृत्ति के कारण हठयोग, उपदेशवृत्ति एवं आध्यात्मिकता की बात कही गई।
- इन धार्मिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में यह कहना समीचीन है कि धार्मिक दृष्टि से आदिकाल का वातावरण अत्यंत दूषित था। जनता असंतोष, क्षोभ एवं भ्रम से ग्रस्त थी। आदिकालीन साहित्य में इसी मानसिकता के अनुरूप खंडन-मंडन, हठयोग, वीरता एवं श्रृंगारपरक रचनाओं को देखा जा सकता है।
- संगीत के क्षेत्र में दोनों संस्कृतियों ने परस्पर आदान-प्रदान पर्याप्त मात्रा में किया है। गायन-वादन और नृत्य पर मुस्लिम प्रभाव पड़ रहा था तथा अनेक वाद्ययंत्रों सारंगी, तबला, अलगोजा से हिंदू परिचित हो रहे थे। आदिकालीन भारतीय संस्कृति निश्चित रूप से ह्रासोन्मुख थी।

3.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **विविध**—विभिन्न प्रकार का
2. **बलपूर्वक**—जबरदस्ती, ताकत के बल पर
3. **भावात्मक**—जज़बाती होना, भावुक होना

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. आदिकाल में राजनीतिक और धार्मिक परिस्थिति का उल्लेख कीजिए।
2. आदिकाल में सामाजिक, साहित्यिक परिस्थिति का वर्णन कीजिए।
3. सांस्कृतिक परिस्थिति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

- | | | |
|---------------|---------------|----------|
| 1. व्यापक रूप | 2. धर्मावलंबी | 3. राहें |
| 4. (ग) | 5. (क) | 6. (ख) |
| 7. सत्य | 8. असत्य | 9. सत्य |

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—नगेंद्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

नोट

इकाई-4 : आदिकालीन साहित्य परंपरा : जैन, सिद्ध एवं नाथ साहित्य, रासो साहित्य

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 4.1 आदिकालीन साहित्य परंपरा
 - 4.1.1 सिद्ध-साहित्य
 - 4.1.2 जैन-साहित्य
 - 4.1.3 नाथ-साहित्य
 - 4.1.4 रासो-साहित्य
- 4.2 सारांश (Summary)
- 4.3 शब्दकोश (Keywords)
- 4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- आदिकालीन साहित्य परंपरा के विषय में जानने हेतु।
- सिद्ध साहित्य तथा जैन साहित्य को समझने हेतु।
- नाथ साहित्य और रासो साहित्य के संदर्भ में जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

आदिकालीन साहित्य परंपरा सिद्ध-साहित्य, जैन-साहित्य, नाथ साहित्य, रासो साहित्य तथा रासो साहित्य का प्रचार करने के लिए एक विशेष काल माना जाता है। इस काल में इन साहित्य का खूब प्रचार-प्रसार किया गया। सिद्धों ने बौद्ध-काल के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जन-भाषा में लिखा, वह हिंदी के सिद्ध-साहित्य की सीमा में आता है। पश्चिमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने भी अपने मत का प्रचार हिंदी-कविता के माध्यम से किया। इसी प्रकार नाथपंथी रचनाओं की अनेक विशेषताएँ संत-काव्य में यथावत, विद्यमान हैं रासो काव्यों की रचना आदिकाल में हुई थी। कुछ रासो ग्रंथ हैं, खुमाण रासो, बिसलदेव रासो, हम्मीर रासो, परमाल रासो, पृथ्वीराज रासो।

4.1 आदिकालीन साहित्य परंपरा

नोट

4.1.1 सिद्ध-साहित्य

सिद्धों ने बौद्ध-धर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जन-भाषा में लिखा, वह हिंदी के सिद्ध-साहित्य की सीमा में आता है। राहुल सांकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जिनसे सिद्ध सरहपा से यह साहित्य आरंभ होता है। इन सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कणहपा एवं कुक्कुरिपा हिंदी के मुख्य सिद्ध कवि हैं। यहाँ संक्षेप में इनके व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय देकर हम साहित्य के विकास में इनकी भूमिका को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे।

सरहपा—ये सरहपाद, सरोजवज्र, राहुलभद्र आदि कई नामों से प्रख्यात हैं। जाति से ये ब्राह्मण थे। इनके रचना-काल के विषय में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। राहुल जी ने इनका समय 761 ई. माना है, जिससे अधिकांश विद्वान् सहमत हैं। इनके द्वारा रचित बत्तीस ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमें से 'दोहाकोश' हिंदी की रचनाओं में प्रसिद्ध है। इन्होंने पाखंड और आडंबर का विरोध किया है तथा गुरु-सेवा को महत्त्व दिया है। ये सहज भोग-मार्ग से जीव को महासुख की ओर ले जाते हैं। इनकी भाषा सरल तथा गेय है एवं काव्य में भावों का सहज प्रवाह मिलता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

नाद न बिंदु न रवि न शशि मण्डल,
चिअराअ सहाबे मूकल।
अजुरे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक,
निअहि बोहिमा जाहु रे लांक।
हाथरे कांकाण मा लोउ दापण,
अपणे अपा बुझतु निअन्मण।

सरहपा की इस कविता से स्पष्ट है कि उनकी भाषा तो हिंदी ही है, केवल उस पर यत्र-तत्र अपभ्रंश का प्रभाव है। भाव और शिल्प की जो परंपरा संत-साहित्य में जाकर नए रूप में उभरी, उसका बीज-रूप सरहपा के काव्य में द्रष्टव्य है।

शबरपा—इनका जन्म क्षत्रिय कुल में 780 ई. में हुआ था। सरहपा से इन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। शबरों का-सा जीवन व्यतीत करने के कारण ये शबरपा कहे जाने लगे। 'चर्यापद' इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। ये माया-मोह का विरोध करके सहज जीवन पर बल देते हैं और उसी को महासुख की प्राप्ति का मार्ग बतलाते हैं। इनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

हेरि ये मेरि तइला बाड़ी खसमे समतुला
षुकड़ए सेरे कपासु फुटिला।
तइला वाड़िर पासेर जोहणा वाड़ी ताएला
फिटेल अंधारि रे आकाश फुलिआ।

लुइपा—ये राजा धर्मपाल के शासन-काल में कायस्थ-परिवार में उत्पन्न हुए थे। शबरपा ने इन्हें अपना शिष्य बनाया था इनकी साधना का प्रभाव देखकर उड़ीसा के तत्कालीन राजा तथा मंत्री इनके शिष्य हो गए थे। चौरासी सिद्धों में इनका सबसे ऊँचा स्थान माना जाता है। इनकी कविता में रहस्य-भावना की प्रधानता है। एक उदाहरण देखिए—

क्राआ तरुवर पंच विडाल, चंचल चीए पड़ो काल।
दिट करिअ महासुह परिमाण, लुइ भरमई गुरु पूछि अजाण॥

डोम्भिपा—मगध के क्षत्रिय-वंश में 840 ई. के लगभग इनका जन्म हुआ था। विरूपा से इन्होंने दीक्षा ली थी। इनके द्वारा रचित इक्कीस ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमें 'डोम्बि-गीतिका', 'योगचर्या', 'अक्षरद्विकोपदेश' आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है—

नोट

गंगा जउना माझरे बहर नाइ।
ताहि बुड़िली मातंगि पोइआली ले पार करई।
बाहतु डोम्बी बाह लो डोम्बी वाटत भइल उछारा।
सद्गुरु पाऊ पए जाइब पुणु जिणउरा॥

कण्हाप—इनका जन्म कर्नाटक के ब्राह्मण-वंश में 820 ई. में हुआ था। बिहार के सोमपुरी स्थान पर ये रहते थे। जालंधरपा को इन्होंने अपना गुरु बनाया था। कई सिद्धों ने इनकी शिष्यता स्वीकार की थी। इनके लिखे चौहत्तर ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमें अधिकांश दार्शनिक विषयों पर हैं। रहस्यात्मक भावनाओं से परिपूर्ण गीतों की रचना करके ये हिंदी के कवियों में प्रसिद्ध हुए। इन्होंने शास्त्रीय रूढ़ियों का भी खंडन किया है। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए—

आगम वेअ पुराणे, पंडित मान बहति।
पक्क सिरिफल अलि, जिस वाहेरित भ्रमयति॥

कुक्कुरिपा—इनका जन्म कपिलवस्तु के एक ब्राह्मण-वंश में माना जाता है। इनके जन्म-काल का पता नहीं चल सका है। चर्पटीया इनके गुरु थे। इनके द्वारा रचित सोलह-ग्रंथ माने जाते हैं। ये भी सहज जीवन के समर्थक थे। इनकी कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है—

हांड निवासी खमण भतारे, मोहोर विगोआ कहण न जाइ।
फेटलिउ गो माए अंत उड़ि चाहि, जा एथु बाहाम सो एथु नाहिं।

इन प्रमुख सिद्ध कवियों के अतिरिक्त अन्य सिद्ध कवि भी जन-भाषा में अपनी वाणी का प्रचार पद्य में करते थे; किंतु उसमें कवित्व का उतना अंश नहीं, जिसके आधार पर उसे साहित्य के विकास में योगदाता माना जा सके जिन कवियों की पहले चर्चा की गई है, उनका साहित्य ही हिंदी के सिद्ध-साहित्य के लिए गौरव का विषय है। इन कवियों ने हिंदी-साहित्य में कविता की जो प्रवृत्तियाँ आरंभ कीं, उनका प्रभाव भक्तिकाल तक चलता रहा। रूढ़ियों के विरोध का अक्खड़पन, जो कबीर आदि की कविता में मिलता है, इन सिद्ध कवियों की देन है। योग-साधना के क्षेत्र में भी इनका प्रभाव पहुँचा। सामाजिक जीवन के जो चित्र इन्होंने उभारे, वे भक्तिकालीन काव्य के लिए सामाजिक चेतना की पीठिका बन गए। कृष्ण-भक्ति के मूल में जो प्रवृत्ति-मार्ग है, उसकी प्रेरणा के सूत्र भी हमें इनके साहित्य में मिलते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. राहुल जी ने सरहपा का समय 761 ई. माना है, जिससे अधिकांश सहमत हैं।
2. सिद्धों में लुइपा सबसे ऊँचा स्थान माना जाता है।
3. कृष्ण-भक्ति के मूल में जो प्रवृत्ति-मार्ग है, उसकी प्रेरणा के सूत्र भी इनके में मिलते हैं।

4.1.2 जैन-साहित्य

जिस प्रकार हिंदी के पूर्वी क्षेत्र में सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान मत का प्रचार हिंदी-कविता के माध्यम से किया, उसी प्रकार पश्चिमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने भी अपने मत का प्रचार हिंदी-कविता के माध्यम से किया। इन कवियों की रचनाएँ आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती हैं। आचार-शैली के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है। फागु और चरित-काव्य शैली की समानता के लिए प्रसिद्ध है। 'रस' शब्द संस्कृत-साहित्य में ब्रीड़ा और नृत्य से संबंधित था। भरत मुनि ने इसे 'क्रीडनीयक' कहा है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' के रचना-काल तक 'रास' में गायन का भी समावेश हो गया था। अभिनवगुप्त ने 'रास' को एक प्रकार का रूपक माना है। लोक-जीवन में श्री कृष्ण की लीलाओं के लिए 'रास' शब्द रूढ़ हो गया था और आज भी सामान्य जनता उसी अर्थ में इसका प्रयोग करती है। जैन-साधुओं ने रास को एक

नोट

प्रभावशाली रचना-शैली का रूप दिया। जैन-तीर्थंकरों के जीवन-चरित तथा वैष्णव अवतारों की कथाएँ जैन-आदर्शों के आवरण में 'रास' नाम से पद्यबद्ध की गई। जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात्रि के समय ताल देकर 'रास' का गायन करते थे। चौदहवीं शताब्दी तक इस पद्धति का प्रचार रहा। अतः जैन-साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ बन गए। वीर गाथाओं में 'रास' को ही 'रासो' कहा गया है, किंतु उनकी विषय-भूमि जैन रास-ग्रंथों से भिन्न हो गई है।

पूर्वोक्त प्रमुख शैलियों में लिखित आदिकालीन हिंदी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

श्रावकाचार—देवसेन नामक प्रसिद्ध आचार्य ने 933 ई. में इस काव्य की रचना की थी। ये एक अच्छे कवि तथा उच्च कोटि के चिंतक थे। इन्होंने अपभ्रंश में भी 'दब्ब-सहाव-पयास' नामक काव्य लिखा था। हिंदी में लिखित इनकी अन्य रचनाएँ 'लघुनयचक्र' तथा 'दर्शनसार' हैं, जो काव्य की सीमा में नहीं आती। 'श्रावकाचार' में 250 दोहों में श्रावक-धर्म का प्रतिपादन किया गया है। कवि ने गृहस्थ के कर्तव्यों पर भी विस्तार से विचार किया है। इसकी रचना दोहा छंद में हुई है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

जो जिण सासण भाषियउ, सो मइ कहिमउ सारु।

जो पालइ सइ भाउ करि, सो सरि पावइ पारु॥

भरतेश्वर-बाहुबली रास—मुनि जिनविजय ने इस ग्रंथ को जैन-साहित्य की रास-परंपरा का प्रथम ग्रंथ माना है। इसकी रचना 1184 ई. में शालिभद्र सूरि ने की थी। ये अपने समय के प्रसिद्ध जैन आचार्य तथा अच्छे कवि थे। इस ग्रंथ में भरतेश्वर तथा बाहुबली का चरित-वर्णन है। ये दोनों चरित-नायक संस्कृत, प्राकृत, तथा अपभ्रंश में भी काव्य-रचना का विषय रहे हैं। प्रस्तुत कृति में इनकी जो कथा वर्णित है, उसमें इन्हें अयोध्यावासी ऋषभ जिनेश्वर के यहाँ सुनंदा और सुमंगला से उत्पन्न बताया गया है। भरत आयु में बड़े थे एवं पराक्रमी भी अधिक थे। वे अयोध्या के राजा बनाए गए और बाहुबली को तक्षशिला का राज्य मिला। कवि ने दोनों राजाओं की वीरता, युद्धों आदि का विस्तार से वर्णन किया है, किंतु हिंसा और वीरता के पश्चात् विरक्ति और मोक्ष के भाव प्रतिपादित करना कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है। अतः वीर और श्रृंगार रसों का निर्वेद में अंत हुआ है। २०५ छंदों में रचित यह एक सुंदर खंडकाव्य है। इसकी भाषा में नाटकीयता, उक्ति-वैचित्र्य तथा रसात्मकता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। आगे की 'रास' या 'रासो' रचनाओं को इस ग्रंथ ने अनेक रूपों में प्रभावित किया है। इसकी कविता का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

बोलह बाहुबली बलवंत। लोह खण्डि तउ गरवीउ हंत।

चक्र सरीसउ चूनउ करिउ। सयलहं गोत्रह कुल सहरउ॥

चंदनबालारास—यह पैंतीस छंदों का एक लघु खंडकाव्य है, जिसकी रचना 1200 ई. के लगभग आसगु नामक कवि ने जालौर में की थी। इसकी कथा-नायिका चंदनबाला चंपा नगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री थी। एक बार कौशांबी के राजा शतानीक ने चंपा नगरी पर आक्रमण किया, जिसमें उसका सेनापति चंदनबाला का अपहरण कर ले गया और एक सेठ को बेच दिया। सेठ की स्त्री ने उसे अपार कष्ट दिया। चंदनबाला अपने सतीत्व पर अटल रहकर सब दुःख सहती रही और अंत में महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुई। इस लघु कथानक पर आधारित यह जैन-रचना करुण रस की गंभीर व्यंजना करती है। भाव-सौंदर्य के जितने चित्र इसके रचयिता ने अंकित किए हैं, सभी ने उसकी काव्य-निष्ठा व्यंजित है।

स्थूलिभद्ररास—1209 ई. में रचित इस काव्य को जिनधर्मसूरि की कृति माना जाता है। स्थूलिभद्र और कोशा वेश्या के विषय में अन्य रचनाएँ भी मिलती हैं, किंतु इस कृति की सभी घटनाओं से उनका प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। अवांतर घटनाओं के माध्यम से लौहघट के रूप में स्थूलिभद्र का संयम चित्रित करके कवि ने काव्य को विशिष्ट बना दिया है। कोशा वेश्या के पास भोग-लिप्त रहने वाले स्थूलिभद्र को कवि ने जैन धर्म की दीक्षा लेने के बाद मोक्ष का अधिकारी सिद्ध किया है। काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है, फिर भी इसकी भाषा का मूल रूप हिंदी है। धार्मिक दृष्टि से प्रेरित होने पर भी इसका भाव-भूमि और अभिव्यंजना काव्यानुकूल है।

रोवंतगिरिरास—यह विजयसेन सूरि की काव्य-कृति है। 1231 ई. के लगभग लिखित इस काव्य में तीर्थंकर नेभिनाथ की प्रतिमा तथा रवंतगिरि तीर्थ का वर्णन है। यात्रा तथा मूर्ति-स्थापना की घटनाओं पर आधारित यह

नोट

‘रास’ वास्तुकलात्मक सौंदर्य का भी आकर्षण प्रस्तुत करता है। प्रकृति के रमणीक चित्र इस काव्य के भाव तथा कलापक्षों का शृंगार करते हैं। एक उदाहरण देखिए—

कोयल कलयलो मोर केकारओ
सम्मए महुयर महुर गुंजारवो।
जलद जाल बंबाले नीझरणि रमाउलू रेहइ,
उज्जिल सिहरू अलि कज्जल सामलु॥

नेमिनाथरास—इस काव्य की रचना सुमति गणि ने 1213 ई. में की थी। अट्ठावन छंदों की इस रचना में कवि ने नेमिनाथ का चरित्र सरस शैली में प्रस्तुत किया है। नेमिनाथ के प्रसंग में श्रीकृष्ण का वर्णन इस काव्य का विषय है और इन दोनों के माध्यम से विभिन्न भावों की व्यंजना हुई है। रचना की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी हिंदी है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है।
(क) फागु-शैली (ख) रास-शैली (ग) चरित्र शैली (घ) आचार-शैली
5. श्रावकाचार में कितने दोहों में भावका-धर्म का प्रतिपादन किया गया है?
(क) 300 (ख) 250 (ग) 800 (घ) 600
6. काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है, फिर भी इसकी भाषा का मूल रूप है।
(क) संस्कृत (ख) मैथिली (ग) ब्रज (घ) हिंदी

4.1.3 नाथ-साहित्य

सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान योग-साधना की प्रतिक्रिया के रूप में आदिकाल में नाथपंथियों की हठयोग-साधना आरंभ हुई। राहुल जी ने नाथ-पंथ को सिद्धों की परंपरा का ही विकसित रूप माना है। इस पंथ को चलाने वाले मत्स्येन्द्रनाथ (मछंदरनाथ) तथा गोरखनाथ माने गए हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने नाथ-पंथ के चरमोत्कर्ष का समय बारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अंत तक माना है। उनका मत है कि नाथ-पंथ से ही भक्तिकाल के संत-मत का विकास हुआ था, जिसके प्रथम कवि कबीर थे। इस मतव्य का समर्थन कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से हो जाता है—नाथपंथी रचनाओं की अनेक विशेषताएँ संत-काव्य में यथावत् विद्यमान हैं।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, “नाथ-पंथ या नाथ-संप्रदाय के सिद्ध-मत, सिद्ध-मार्ग, योग-मार्ग, योग-संप्रदाय, अवधूत-मत एवं अवधूत संप्रदाय नाम भी प्रसिद्ध हैं।” उनके इस कथन का यह अर्थ नहीं कि सिद्ध-मत और नाथ-मत एक ही हैं। उन्होंने तो नाम ख्याति की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिसका आशय इतना ही है कि इन दोनों मार्गों को एक ही नाम से पुकारा जाता था और उसका कारण यह था कि मत्स्येन्द्रनाथ (मछंदरनाथ) तथा गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) सिद्धों में भी गिने जाते थे। यह प्रसिद्ध है कि मत्स्येन्द्रनाथ नारी-साहचर्य के आचार में जा फंसे थे; जिससे उनके शिष्य गोरखनाथ ने उद्धार किया था। वस्तुतः इस लोक-चर्चा के मूल में ही सिद्ध-मत एवं नाथ-मत का अंतर छिपा हुआ है। सिद्ध-गण नारी-भोग में विश्वास करते थे, किंतु नाथपंथी उसके विरोधी थे। सिद्धों की रचनाओं पर पीछे विचार किया जा चुका है। यहाँ हम नाथ-साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

गोरखनाथ—गोरखनाथ नाथ-साहित्य के आरंभकर्ता माने जाते हैं। वे सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। किंतु उन्होंने सिद्धों के मार्ग का विरोध किया था। गोरखपंथी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे। उनके पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथ हुए। जिनके आचरण का विरोध उनके शिष्य गोरखनाथ ने किया। राहुल सांकृत्यायन ने गोरखनाथ का समय 845 ई. माना है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी उन्हें नवीं शती का मानते हैं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल तेरहवीं शती

नोट

का बतलाते हैं। डॉ. पीतांबर दत्त बड़थवाल ग्यारहवीं शती का मानते हैं तथा डॉ. रामकुमार वर्मा शुक्ल जी के मत से सहमत है। नवीन खोजों के अनुसार यही धारणा अधिक प्रबल हुई है कि गोरखनाथ ने ईसा की तेरहवीं शती के आरंभ में अपना साहित्य लिखा था। उनके ग्रंथों की संख्या चालीस मानी जाती है। किंतु डॉ. बड़थवाल ने केवल चौदह रचनाएँ ही उनके द्वारा रचित मानी हैं, जिनके नाम हैं—सबदी, पद, प्राण संकली, सिष्यादरसन नरवै बोध, अभैमात्रा, जोग, आतम-बोध, पंद्रह तिथि, सप्तवार, मछींद्र गोरखबोध रोमावली, ग्यानतिलक, ग्यानचौंतीसा एवं पंचमात्रा। डॉ. बड़थवाल ने 'गौरखबानी' नाम से उनकी रचनाओं का एक संकलन भी संपादित किया है, जिसकी कई रचनाएँ साहित्य की सीमा में आती हैं।



नोट्स गोरखपंथी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे।

गोरखनाथ से पहले अनेक संप्रदाय थे, जिन सबका उनके नाथ-पंथ में विलय हो गया था। शैव एवं शाक्त के अतिरिक्त बौद्ध, जैन तथा वैष्णव योगमार्गी भी उनके संप्रदाय में आ मिले थे। गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में गुरु-महत्मा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मनःसाधना, कुंडलिनी-जागरण, शून्य-समाधि आदि का वर्णन किया है। इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता मिलती है। यही कारण है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन रचनाओं को साहित्य में सम्मिलित नहीं किया था। किंतु डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी इस पक्ष में नहीं हैं। पूर्वोक्त विषयों के साथ जीवन की अनुभूतियों का सघन चित्रण होने के कारण इन रचनाओं को साहित्य में सम्मिलित करना ही उचित है। इसी साहित्य का विकास भक्तिकाल में ज्ञानमार्गी संत-काव्य के रूप में हुआ। अतः उसकी साहित्यिकता स्वीकार करना ही अधिक न्यायसंगत है।



क्या आप जानते हैं? गोरखनाथ नाथ-साहित्य के आरंभकर्ता माने जाते हैं। वे सिद्ध मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य थे।

गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। हठयोगियों के 'सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। इन दोनों के योग को ही 'हठयोग' कहते हैं। गोरखनाथ ने ही षट्चक्रोंवाला योग-मार्ग हिंदी-साहित्य में चलाया था। इस मार्ग में विश्वास करनेवाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था। गोरखनाथ ने लिखा है कि धीरे-धीरे वह है, जिसका चित्त विकार-साधन होने पर भी विकृत नहीं होता—

नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा॥

मूर्त जगत् में अमूर्त के स्पर्श को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—

अंजन माहि निरंजन भेट्या, तिल मुख भेट्या तेल।
मूरति माहि अमूरति परस्या, भया निरंतरि खेल।॥

गोरखनाथ की कविताओं से स्पष्ट है कि भक्तिकालीन संत-मार्ग के भावपक्ष पर ही उनका प्रभाव नहीं पड़ा, भाषा और छंद भी प्रभावित हुए हैं। इस प्रकार उनकी रचनाओं में हमें आदिकाल की वह शक्ति छिपी मिलती है, जिसने भक्तिकाल की कई प्रवृत्तियों को जन्म दिया।

अन्य कवि—नाथ-साहित्य के विकास में जिन अन्य कवियों ने योग दिया, उनमें चौरंगीनाथ, गोपीचंद, चुणकरनाथ, मरथरी, जलंध्रीपाव आदि प्रसिद्ध हैं। इन कवियों की रचनाओं में उपदेशात्मकता तथा खंडन-मंडन का प्राधान्य है। तेरहवीं शती में इन सबने अपनी वाणी का प्रचार किया था। ये सभी हठयोगी प्रायः गोरखनाथ के भावों का अनुकरण करते थे, अतः इनकी रचनाओं में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं मिलती। गोरखनाथ की

ही हठयोग-साधना में ईश्वरवाद व्याप्त था। इन हठयोगियों ने भी उसका प्रचार किया, जो रहस्यवाद के रूप में प्रतिफलित हुआ और जिसका भक्तिकाल में कबीर आदि ने अनुकरण किया।



टास्क

जैन साहित्य का संक्षिप्त में उल्लेख कीजिए।

4.1.4 रासो-साहित्य

जैन साहित्य के संदर्भ में यह संकेत किया जा चुका है कि हिंदी-साहित्य के आदिकाल में रचित जैन 'रास-काव्य' वीरगाथाओं के रूप में लिखित रासो-काव्यों से भिन्न है। दोनों की रचना-शैलियों का अलग-अलग भूमियों पर विकास हुआ है। जैन रास-काव्यों में धार्मिक दृष्टि के प्रधान होने से वर्णन की वह पद्धति प्रयुक्त नहीं हुई, जो वीरगाथापरक रासो-ग्रंथों में मिलती है। इन काव्यों की विषयवस्तु का मूल संबंध राजाओं के चरित तथा प्रशंसा से है। फलतः इनका आकार रचनाकारों की मृत्यु के पश्चात् भी बढ़ता रहा है। रासो-काव्यों को देखने से पता चलता है कि उनके रचयिता जिस राजा के चरित्र का वर्णन करते थे, उसके उत्तराधिकारी राजगण अपने आश्रित अन्य कवियों से उसमें अपने चरित्र भी सम्मिलित करा देते थे। यही कारण है कि इन ग्रंथों में मध्यकालीन राजाओं का भी वर्णन मिलता है तथा भाषा में भी उत्तरवर्ती भाषा-रूपों की झलक पाई जाती है। राजस्थान के कतिपय वृत्त-संग्रहकर्ताओं ने अधिकांश रासो-काव्यों को इन्हीं बातों के कारण अप्रामाणिक रचनाएँ माना है। भाषा वैज्ञानिकों से उन्हें समर्थन भी मिल गया है। परंतु इतिहास के मर्म को समझने वाले विद्वान उन वृत्त-संग्रहकों के कथनों में विश्वास नहीं करते। सत्य यही है कि रासो-काव्यों की रचना आदिकाल में ही हुई थी। उनमें जो अंश उत्तरवर्ती राजाओं से संबंधित हैं, वे प्रक्षिप्त हैं। इसी मान्यता के आधार पर हम रासो-ग्रंथों को आदिकाल का साहित्य स्वीकार करके यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे।

खुमाण रासो—आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसको नवीं शताब्दी की रचना माना है, क्योंकि इसमें नवीं शती के चित्तौड़-नरेश खुमाण के युद्धों का चित्रण है। राजस्थान के वृत्त-संग्रहकों ने इसको सत्रहवीं शताब्दी की रचना बताया है, क्योंकि इसमें सत्रहवीं शताब्दी के चित्तौड़-नरेश राजसिंह तक के राजाओं का वर्णन मिलता है और इसी आधार पर वे इसको आदिकाल की रचना नहीं मानना चाहते। वास्तविकता यह है कि इस काव्य का मूल रूप नवीं शताब्दी में ही लिखा गया था। तत्कालीन राजाओं के सजीव वर्णन, उस समय की परिस्थितियों के यथार्थ ज्ञान तथा भाषा के 'आरंभिक हिंदी-रूप' के प्रयोग से इसी तथ्य के प्रमाण मिलते हैं।

वृत्त-संग्रहकों के पास इतिहास को समझने की पैनी दृष्टि नहीं थी, इसलिए राजस्थान में रहते हुए भी वे आदिकाल की संपत्ति को भक्तिकाल और रीतिकाल के भंडार में डालने का दुराग्रह करके यश अर्जित करते रहे हैं, जबकि वह संपत्ति उन कालों की प्रवृत्तियों से किसी भी रूप में मेल नहीं खाती। इन लोगों ने रचनाकारों के नामों के संबंध में भी भ्रम पैदा किया है। अधिकांश विद्वानों ने नवीं शती के खुमाण नरेश के समकालीन दलपत विजय को 'खुमाण रासो' का रचयिता माना है जबकि वृत्त-संग्रहकर्ताओं ने यह सिद्ध करने की असफल चेष्टा की है कि उसका रचयिता सत्रहवीं शती ईस्वी का दलपत विजय नाम का कोई जैन साधु था। रचना-शैली तथा विषय-वस्तु से सिद्ध है कि यह काव्य किसी जैन साधु की रचना नहीं हो सकता। यदि जैन साधु ने इसे लिखा होता तो निश्चय ही इसमें धर्म-भावना किसी-न-किसी रूप में व्याप्त मिलती।

इस ग्रंथ की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति पूना के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह पाँच हजार छंदों का विशाल काव्य-ग्रंथ है। राजाओं के युद्धों और विवाहों के सरल वर्णनों से इस काव्य की भाव भूमि का विस्तार हुआ है। संदर्भानुसार नायिकाभेद, षट्क्रतु आदि के चित्रण भी मिलते हैं। राजाओं की प्रशंसा काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य है। वीर रस के साथ-साथ शृंगार की धारा भी आदि से अंत तक चली है। वस्तु-वर्णनों में पर्याप्त रमणीयता है। इसमें दोहा, सवैया, कवित्त आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं तथा इसकी भाषा राजस्थानी हिंदी है। राजाओं के वर्णनों पर आधारित होने पर भी इसमें काव्यात्मक सरस वर्णनों का प्राचुर्य है। एक उदाहरण देखिए—

पिउ चित्तौड़ न आविऊ, सावण पहिली तीज।
जोवै बाट बिरहिणी खिण-खिण अणवै खीज॥

नोट

संदेसो पिण साहिबा, पाछो फिरिय न देह।
पंछी घाल्या पिंजरे, छूटण रो संदेह॥

प्राचीन काल में मुद्रण के अभाव के कारण लिपिकर्ता जैसा लिखते थे, वैसा ही ग्रंथ की भाषा का रूप हो जाता था। धार्मिक साहित्य में धार्मिक भावना के कारण शब्दों के मूल रूप की रक्षा का प्रयत्न किया जाता था, किंतु रासो-काव्यों के प्रति वैसा कोई आग्रह नहीं होता था। अतः उनकी भाषा पर लिपिकर्ताओं की भाषा के रूपों के प्रभाव पड़ते रहते थे। इस काव्य की भाषा के साथ भी यही हुआ है। वस्तुतः इस ग्रंथ के मूल रूप तक पहुँचने के लिए प्रमाणिक पाठ-संपादन की आवश्यकता है।

बीसलदेव रासो—इस ग्रंथ की रचना नरपति नाल्ह कवि ने 1155 ई. में की थी, जैसा कि निम्नांकित उद्धरण से स्पष्ट है—

बारह सै बहोतराहां मंझारि। जेठ वदी नवमी बुधवारि।
नाल्ह रसायण आरंभई। सारदा तूठी ब्रह्म कुमारि।
कासमीरां मुख मंडनी। रास प्रसागों बीसलदेराइ।

प्रथम पंक्ति से संवत् 1272 वर्ष भी माना गया है, किंतु अधिकांश विद्वान् 1292 वि. ही स्वीकार करते हैं। कुछ वृत्त-संग्रहकर्ताओं ने इस ग्रंथ को भी आदिकाल की रचना नहीं माना। यह संभव है कि इसमें भी कुछ परिवर्तन होते रहे हों, किंतु उससे इसकी प्राचीनता समाप्त नहीं हो जाती। डॉ. मोतीलाल मेनारिया सोलहवीं शताब्दी के नरपति नामक एक गुजराती कवि को इसका रचयिता बतलाते हैं, किंतु डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने कई प्राचीन प्रतियों के आधार पर सिद्ध किया है कि यह कृति चौदहवीं शताब्दी ईस्वी में लिखी गई थी। नवीन खोजों में एक प्राचीन प्रति मिली है, जिससे इस काव्य की रचना-काल 1016 ई. सिद्ध होता है। उसमें यह पंक्ति मिलती है—“संवत् सहस्र तिहत्तर जानि, नाल्ह कबीसर सरसीय वाणि।”

‘बीसलदेव रासो’ मूलतः गेय काव्य था, अतः इसके रूप में परिवर्तन होता रहा है। डॉ. मेनारिया का मत है कि वह काव्य गेय नहीं था। शायद वे गेयता का अर्थ ‘लोकगीतों की तरह गाया जाना’ लगाते हैं और इसी आधार पर यह कहते हैं कि राजस्थान में कभी भी यह गेय नहीं रहा। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 128 छंदों की एक प्रति का संपादन किया है। यह पाठ ‘बीसलदेव रासो’ का मूल रूप बताया जाता है। इसकी भाषा आदिकालीन आरंभिक हिंदी का सहज स्वरूप सिद्ध होती है।

‘बीसलदेव रासो’ हिंदी के आदिकाल की एक श्रेष्ठ काव्य-कृति है। इसमें भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव तृतीय के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा सरस शैली में प्रस्तुत की गई है। राजमती की बातों से रुष्ट होकर स्वाभिमानी राजा उड़ीसा चला जाता है। बारह वर्ष तक राजमती उसके विरह में दुःखी रहती है। वह राजभवन की दीवारों को कोसती हुई वन में रहने की कामना करती है। सामंती जीवन के प्रति गहरी अरुचि का सजीव चित्र इस काव्य में मिलता है। ‘संदेशरासक’ के समान ही ‘बीसलदेव रासो’ की भाव-भूमि प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति से सरस है। ‘मेघदूत’ और ‘संदेशरासक’ की संदेश-परंपरा भी इसमें मिलती है। राजमती एक पंडित के द्वारा अपने पति के पास संदेश भेजती है। जब वह लौट आता है तब राजमती शृंगार करके उससे मिलती है। शृंगार के वियोग और संयोग पक्षों के अत्यंत मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किए हैं। राजमती में एक कुलीना गृहिणी का स्वाभिमान है, जो विरह के चित्रों को कांतिमय बनाता है। संयोग के समय भी यही कांति काव्य-सौंदर्य की वृद्धि करती है। राजमती की वाणी व्यंग्यमयी हो उठती है, जिससे उसके पति का हृदय हिल जाता है। पति के हृदय को बेधनेवाला राजमती का एक कुलीनता-संस्कार ही उसकी समस्त विरह-वेदना का आधार है, वही उसे इस विवशता तक पहुँचाता है—

अस्त्रीय जनम काई दीधउ महेस।
अवर जनम थारई घणा रे नटेस।
राणि न सिरजीय धउलीय गाइ।
वणषण्ड काली कोइली।
हउं बइसती अंबा नइ चंपा कीं डाल।

इस प्रकार इस काव्य के वर्णनों में एक संस्कार-दृष्टि मिलती है, जो नारी-गरिमा की स्थापना करती है। कवि ने प्रकृति के रमणीय चित्रों से भी भाव-चित्रण को सौंदर्य दिया है। बारह मासों तथा ऋतुओं के प्राकृतिक चित्र संयोग और वियोग में उद्दीपन का काम करते हैं। विरह की विभिन्न दशाओं के वर्णन में समस्त प्रकृति सहायक हुई है तथा अनुभूतियों को भी उसने सुकुमारता प्रदान की है।

‘बीसलदेव रासो’ की शृंगार-परंपरा का आदिकाल में ही अंत नहीं हो जाता। विद्यापति से होती हुई यही परंपरा भक्तिकाल में प्रेमाख्यानक काव्यों तक पहुँची, कृष्ण-भक्तों को भी उसने प्रभावित किया तथा रीतिकाल में जाकर उसका सरस शृंगार-काव्य के रूप में चरम विकास हुआ।

हम्मीर रासो—‘प्राकृत-पैंगलम’ में इस काव्य के कुछ छंद मिले थे और उन्हीं के आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसके अस्तित्व की कल्पना की थी। उनका अनुमान था कि इसमें हम्मीर और अलाउद्दीन के युद्धों का वर्णन तथा हम्मीर की प्रशंसा चित्रित होगी। किंतु राहुल जी ने उन पद्यों को जज्जल नामक किसी कवि की रचना घोषित किया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि ‘हम्मीर’ शब्द अमीर का विकृत रूप है, जो किसी पात्र का नाम न होकर एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। अतः शाङ्गधर-कृत इस ‘हम्मीर रासो’ का अस्तित्व संकट में पड़ा हुआ है। अभी तक इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी है।

परमाल रासो—उत्तर प्रदेश में ‘आल्हखंड’ के नाम से जो काव्य प्रचलित है, वही ‘परमाल रासो’ के मूल रूप का विकसित रूप माना जाता है। यह रासो लोक-गेय काव्य था, अतः इसके मूल की सुरक्षा नहीं हो सकी। इसमें अनेक अंश बाद में जोड़े गए हैं तथा अनेक अंशों में वर्णन और भाषा संबंधी परिवर्तन किए गए हैं। धीरे-धीरे ‘आल्हा’ लोकगीत की एक शैली ही बन गया है। अतः आधुनिक विषयों पर भी ‘आल्हा’ लिखे जाने लगे हैं। प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में मौखिक रूप में उपलब्ध ‘आल्हखंड’ के आधार पर ‘परमाल रासो’ के साहित्यिक स्वरूप के विषय में कुछ भी कहना कठिन है। 1865 ई. में चार्ल्स इलियट ने जिस ‘आल्हखंड’ का प्रकाशन कराया था, वह मौखिक परंपरा पर ही आधारित है। इसी प्रति के आधार पर डॉ. श्यामसुंदर दास ने ‘परमाल रासो’ का पाठ-निर्धारित किया और उसे नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित कराया। इस नए रूप में उपलब्ध ‘परमाल रासो’ यद्यपि सर्वथा प्रमाणिक कृति तो नहीं है, तथापि आदिकाल में रचित मूल ‘परमाल रासो’ के ऐतिहासिक अस्तित्व को समझने में सहायक अवश्य है।



नोट्स

परमाल रासो लोक-गेय काव्य था, किंतु इसके मूल अंशों की सुरक्षा नहीं की जा सकी, अतः भाषा की दृष्टि से इसका मूल्यांकन संभव नहीं।

‘परमाल रासो’ का रचयिता जगनिक नामक कवि माना जाता है, जो महोबा के राजा परमर्दिदेव का आश्रित था। उसने इस काव्य में आल्हा और ऊदल नामक दो वीर सरदारों की वीरतापूर्ण लड़ाइयों का वर्णन किया है। इसी आधार पर इसका रचना-काल तेरहवीं शती का आरंभ माना जाता है। इसमें वीर-भावना का जितना प्रौढ़ रूप मिलता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। आज भी जब इसे गायक संगीत के साथ गाते हैं, तब दुर्बलों में भी तलवार चलाने की स्फूर्ति आ जाती है। विवाह और शत्रु-प्रतिशोध वीरता के प्रदर्शन का आधार रहे हैं। युद्धों के अत्यंत प्रभावशाली वर्णनों की इस काव्य में भरमार है। भावों के अनुसार ही भाषा भी चली है और उसमें एक विशेष शब्द-ध्वनि सर्वत्र व्याप्त हो गई है। गेयता का गुण इस काव्य को विकासशील लोकगाथा-काव्य की श्रेणी में ले जाता है, किंतु इसकी रचना लोक-गाथा के रूप में न होकर शुद्ध काव्य के रूप में ही हुई है।

भाषा की दृष्टि से इस काव्य का मूल्यांकन कर पाना संभव नहीं, क्योंकि मूल रूप का कोई भी अंश अब शुद्ध रूप में सुरक्षित नहीं है। उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। छंद-विधान की दृष्टि से इस काव्य की

एक विशेष शैली है, जिसे आल्ह-शैली कहना ही उचित है। इसकी वर्णन-शक्ति और प्रभावोत्पादकता को समझाने में निम्नांकित पंक्तियाँ कुछ सहायक हो सकती हैं—

बारह बरस लौ कूकर जीवै, अरु तेरह लौ जियै सयार।

बरस अठारह क्षत्रिय जीवै, आगे जीवन कौ धिक्कार।।

पृथ्वीराज रासो—आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि “(चंद) हिंदी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं और इनका ‘पृथ्वीराज रासो’ हिंदी का प्रथम महाकाव्य है।” उन्होंने चंदबरदायी को दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान का सामंत और राजकवि माना है। महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार चंदबरदायी का जन्म लाहौर में हुआ था। इनके जन्म-काल के संबंध में कई धारणाएँ हैं। शुक्ल जी ने इनका जन्म-वर्ष 1168 ई. माना है तथा लिखा है कि “रासो के अनुसार ये भट्ट जाति के जगात नामक गोत्र के थे। इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब थी, जहाँ लाहौर में इनका जन्म हुआ था। इनका और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही दिन यह संसार भी छोड़ा था।” शुक्ल जी ने हरप्रसाद शास्त्री द्वारा प्राप्त चंद का एक वंश-वृक्ष भी प्रस्तुत किया है। वह वंश-वृक्ष शास्त्री जी को नानूराम भाट से प्राप्त हुआ था, जो स्वयं को चंद का वंशज मानता था। उसके कथनानुसार चंद के चार पुत्र थे, जिनमें से चतुर्थ पुत्र जल्ल था। जिस समय पृथ्वीराज को मुहम्मद गोरी बंदी बनाकर अपने देश ले जा रहा था, उस समय चंद भी महाराज के साथ गया था तथा अपने पुत्र जल्ल को ‘पृथ्वीराज रासो’ सौंप गया था। इस संबंध में यह उक्ति प्रसिद्ध है—“पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चलि गज्जन नृप काज।” कहा जाता है कि जल्ल ने चंद के अधूरे महाकाव्य को पूर्ण किया था—

रघुनाथ चरित हनुमंत कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।

प्रथिराज सुजस कवि चंद कृत, चंद नंद उद्धरिय तिमि।।

यह प्रसिद्ध है कि चंद ने स्वामी के हितार्थ अपना बलिदान किया था। वह बहुत प्रतिभाशाली, दूरदर्शी, वीर तथा स्वामिभक्त कवि था। पृथ्वीराज उसे सदा अपने सखा के समान साथ रखते थे एवं उसकी हर बात मानते थे।



क्या आप जानते हैं?

‘पृथ्वीराज रासो’ के चार संस्करण प्रसिद्ध हैं। सबसे बड़ा संस्करण वह है, जिसका प्रकाशन नागरीप्रचारिणी सभा काशी से हुआ है तथा जिसकी हस्तलिखित प्रतियाँ उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

पृथ्वीराज रासो के संस्करण—सभा ने 1584 ई. में लिखित प्रति के आधार पर ‘रासो’ का संपादन कराया था। इस संस्करण में 69 समय (खंड) तथा 16306 छंद हैं। द्वितीय रूप में उपलब्ध ‘पृथ्वीराज रासो’ 7000 छंदों का काव्य माना जाता है। इसका प्रकाशन नहीं हुआ, किंतु अबोहर एवं बीकानेर में इसकी प्रतियाँ सुरक्षित हैं, जो सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी में लिखी गई हैं। तीसरा लघु संस्करण 3500 छंदों का है, जिसमें केवल 19 समय हैं। इस संस्करण की हस्तलिखित प्रतियाँ भी बीकानेर में सुरक्षित हैं। चौथा संस्करण सबसे छोटा है, जिसमें केवल 1300 छंद हैं। इसी को डॉ. दशरथ शर्मा आदि कुछ विद्वान मूल रासो मानते हैं।

प्रामाणिकता—इन चारों संस्करणों को देखकर यह प्रश्न सहज रूप में उत्पन्न होता है कि इनमें से प्रामाणिक संस्करण कौन-सा है? और इसी से लगा हुआ वह विवाद भी बढ़ जाता है। जिसके अनुसार ‘पृथ्वीराज रासो’ को एक जाली ग्रंथ माना गया है। हिंदी-साहित्य के इतिहास में यह ग्रंथ इस दृष्टि से सर्वाधिक विवादास्पद रहा है। विद्वानों में कई वर्ग बन गए हैं। डॉ. श्यामसुंदरदास, मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, मिश्रबंधु, कर्नल टॉड आदि विद्वानों ने यह माना है कि ‘पृथ्वीराज रासो’ का जो संस्करण सभा से प्रकाशित हुआ है, वही प्रामाणिक है। दूसरा वर्ग रामचंद्र शुक्ल, कविराजा, श्यामलदान, गौरीशंकर, हीराचंद ओझा, डॉ. बूलर, मुंशी देवीप्रसाद आदि विद्वानों का है, जो ‘रासो’ को सर्वथा अप्रामाणिक ग्रंथ घोषित करते हैं। आश्चर्य है कि शुक्ल जी अप्रामाणिक मानते हुए भी उसे अपने इतिहास में आदिकाल के अंतर्गत स्थान देते हैं। तृतीय वर्ग के विद्वान—मुनि जिनविजय, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि—यह मानते हैं कि पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चंदबरदायी ने ही ‘पृथ्वीराज रासो’ लिखा था, किंतु मूल रूप आजकल उपलब्ध नहीं है। चौथा मत नरोत्तमदास स्वामी का है। उन्होंने सबसे अलग

नोट

यह बात कही है कि चंद ने पृथ्वीराज के दरबार में रहकर मुक्तक रूप में 'रासो' की रचना की थी। उनके इस मत से की 'रासो' मूलतः प्रबंधकाव्य नहीं था—अन्य कई विद्वान सहमत नहीं हैं।

वस्तुतः आरंभ में यह ग्रंथ विवादास्पद नहीं था। कर्नल टॉड ने इसकी वर्णन-शैली तथा काव्य-सौंदर्य पर रीझकर इसके लगभग 30 हजार छंदों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया था। तासी भी इसकी प्रामाणिकता में संदेह नहीं करते थे। बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ने इस ग्रंथ का मुद्रण भी आरंभ कराया था। सन् 1875 में डॉ. बूलर ने 'पृथ्वीराज विजय' ग्रंथ के आधार पर इसे अप्रामाणिक रचना घोषित किया। फलतः राजस्थान के कुछ इतिवृत्त-खोजियों—कविराजा, मुरारिदान, श्यामलदान, गौरीशंकर, हीराचंद ओझा आदि ने इस काव्य को अप्रामाणिक सिद्ध करने के सायास तर्क जुटाए। इन विद्वानों के तर्कों को निराधार सिद्ध करने का प्रयत्न किया डॉ. दशरथ शर्मा ने। वस्तुतः यह विवाद इतना उलझ गया है कि अब तक कुछ विद्वान इसे अप्रामाणिक कृति सिद्ध करने में जुटे हुए हैं। वे एतदर्थ नए-नए तर्क खोजते रहते हैं। कुछ विद्वान ऐसे भी हैं, जो उनके द्वारा खोजे गए तर्कों को निराधार सिद्ध करने के लिए सामग्री जुटाते रहते हैं।

अप्रामाणिकता के लिए तर्क—जो लोग 'रासो' को अप्रामाणिक रचना मानते हैं, उनके तर्क निम्नलिखित हैं—

1. 'रासो' में उल्लिखित घटनाएँ और नाम इतिहास से मेल नहीं खाते। इसमें परमार चालुक्य और चौहान क्षत्रियों को अग्निवंशी माना गया है, जबकि वे सूर्यवंशी प्रमाणित हुए हैं।
2. पृथ्वीराज का दिल्ली जाना, संयोगिता-स्वयंवर आदि घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खाती।
3. अनंगपाल, पृथ्वीराज तथा बीसलदेव के राज्यों के संदर्भ भी अशुद्ध हैं।
4. पृथ्वीराज की माँ का नाम कर्पूरी था, जो 'रासो' में कमला बताया गया है।
5. पृथ्वीराज की बहिन पृथा का विवाह मेवाड़ के राणा समरसिंह के साथ बताया गया है, जो अशुद्ध है।
6. पृथ्वीराज द्वारा गुजरात के राजा भीमसिंह का वध भी इतिहास-सम्मत नहीं है।
7. 'रासो' में पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का वर्णन है, जो इतिहास से मेल नहीं खाता।
8. पृथ्वीराज के हाथों गोरी की मृत्यु की सूचना भी इतिहास-सम्मत नहीं है।
9. पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर का वध भी इतिहास-सम्मत नहीं है।
10. 'रासो' में दी गई तिथियाँ अशुद्ध हैं। सभी तिथियों में इतिहास की तिथियों से प्रायः 90-100 वर्षों का अंतर है।

यदि उपर्युक्त तथ्यों को ही अंतिम प्रमाण मान लिया जाए, तब तो 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक रचना कहा ही जा सकता है। किंतु दूसरे पक्ष के तर्क भी इस संबंध में विचारणीय हैं—

1. डॉ. दशरथ शर्मा का मत है कि इसका मूल रूप प्रक्षेपों में छिपा हुआ है। इधर जो लघुतम प्रतियाँ मिली हैं, उनमें इतिहास संबंधी अशुद्धियाँ नहीं हैं।
2. घटनाओं में 90-100 वर्षों का जो अंतर है, वह संवत् की भिन्नता के कारण है। मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने 'अनंद संवत्' की कल्पना की है और उसके अनुसार तिथियाँ भी शुद्ध सिद्ध होती हैं।
3. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि 'पृथ्वीराज रासो' में बारहवीं शताब्दी की भाषा की संयुक्ताक्षरमयी अनुस्वारांत प्रवृत्ति मिलती है, जिससे यह बारहवीं शताब्दी का ग्रंथ सिद्ध होता है।
4. 'रासो' इतिहास-ग्रंथ न होकर काव्य-रचना है अतः उसमें इतिहास का सत्य खोजना और उसके न मिलने पर उसे अप्रामाणिक घोषित करना अनुचित है।
5. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह मत भी है कि 'पृथ्वीराज रासो' की रचना शुक-शुकी-संवाद के रूप में हुई थी। अतः जिन सर्गों में यह शैली नहीं मिलती, उन्हें प्रक्षिप्त मानना चाहिए। यदि यह तर्क मान लिया जाए, तो वे ही अंश प्रायः प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं, जिनमें इतिहास-विरुद्ध तथ्य हैं।
6. जिन लोगों ने 'रासो' में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग देखकर उसे जाली ग्रंथ माना है उसके विरुद्ध यह तर्क दिया जाता है, कि चंद लाहौर का निवासी था। वहाँ उस समय मुसलमानों का प्रभाव आ चुका था, अतः उसकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का मिश्रण होना सहज है।

नोट

वस्तुतः विद्वानों ने बाल की खाल खींचने की चेष्टा में अनेक ऐसे तर्क प्रस्तुत किए हैं, जो इस काव्य की प्रमाणिकता के लिए उचित कसौटी नहीं बन सकते। 'पृथ्वीराज रासो' ही नहीं, 'रामचरितमानस', 'सूरसागर', 'बीजक' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों पर भी यदि अनेक प्रकार के तर्क दिए जाएँ तो उनकी प्रमाणिकता भी किसी-न-किसी सीमा तक संदेह का विषय बन सकती है। 'रामचरितमानस' में तो प्रक्षिप्त अंश स्वीकार किए भी जाते हैं। कई ऐसे पद भी मिलते हैं, जो सूर और मीरा दोनों के नाम से प्रसिद्ध हैं। अतः प्रक्षिप्तांशों या इतिहास-विरोधी कथनों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक मानना उचित नहीं है। चंद ने पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं का जैसा सजीव वर्णन किया है, उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि वह पृथ्वीराज का समकालीन कवि था। अतः 'रासो' को अप्रामाणिक मानना उचित नहीं है। यदि इस विवाद में कोई सत्यांश झलकता भी है, तो वह इतना ही कि 'पृथ्वीराज रासो' में पर्याप्त प्रक्षिप्त अंशों का भी समावेश हुआ है।

'पृथ्वीराज रासो' में वस्तु-वर्णन का भी आधिक्य है। कवि ने बड़ी तन्मयता के साथ नगरों, वनों, सरोवरों, किलों आदि का वर्णन किया है। युद्ध-क्षेत्र के दृश्य तो अद्भुत प्रतिभा का परिचय देते ही हैं, कवि ने समय और क्रिया को एक साथ बिंबों में बाँधकर रंग और ध्वनियों को भी रूपायित कर दिया है। भाव, वस्तु और ध्वनि की सम्मिलित प्रभावान्विति के उदाहरण 'पृथ्वीराज रासो' में भरे पड़े हैं।

काव्योत्कर्ष—चंदबरदायी ने इस ग्रंथ में अनेक घटनाओं का समावेश किया है तथा कुछ घटनाएँ बाद में भी चारणों ने जोड़ी हैं, जिससे ऐसा लगता है कि यह काव्य एक घटना-कोश है। परंतु समस्त घटना-चक्र के भीतर कवि ने अपनी रस-दृष्टि का नियोजित रूप में विस्तार किया है। अतः इसे 'महाभारत' की तरह एक विशाल महाकाव्य मान सकते हैं। इस काव्य में दो रस प्रमुख हैं—शृंगार और वीर। ये दोनों रस पृथ्वीराज चौहान के चरित्र के दो पार्श्व उन्मुक्त करते हैं। वह जितना वीर है, उतना ही शृंगार-प्रेमी भी है। कवि ने एक ओर तो युद्धों के वर्णन में वीरता और पराक्रम की अद्भुत सृष्टि की है, दूसरी ओर रूप-सौंदर्य और प्रेम के भी सरस चित्र उतारे हैं। नारी दोनों रसों के केंद्र में हैं। उसे पाने के लिए युद्ध होते हैं और पा लेने पर जीवन का विलास-पक्ष अपनी पूरी रमणीयता के साथ उभरता है। ध्यान देने की बात यह है कि प्रेम और शौर्य के सभी चित्रों में कवि ने कुछ नैतिक मर्यादाओं का निर्वाह किया है, जिनके कारण रस की सात्विकता सुरक्षित रही है।

एक उदाहरण देखिए—

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहुँ दिसि।
सकल सूर सामंत समर बल जंत्र-मंत्र तिसि।
उटिठ राज प्रथिराज बाग लग्न मनहु वीर नट।
कढ़त तेग मन बेग लगत मनहु बीजु झट्ट घट्ट॥

नारी सौंदर्य का भी एक चित्र देखिए—

मनहुं कला ससिभान कला सोलह सो बनिय।
बाल बैस ससि ता समीप अमृत रस पिन्निय।
बिगसि कमल स्निग्ध भ्रमर नैनु खंजन म्रिग लुटिटय।
हीर कीर अरु बिम्ब मोती नख सिख अहिघुटिटय।
छत्रपति गयंद हरि हंस गति बिह बनाय सचै सचिय।
पद्मिनी रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रचिय॥

वीर और शृंगार रसों के पोषण के लिए आवश्यकतानुसार अन्य रसों की भी योजना की गई है और उनके वर्णन में भी कवि ने उतनी ही तन्मयता दिखलायी है।

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के संबंध में भी विवाद रहा है। वस्तुतः यह काव्य पिंगल शैली में लिखा गया है जो ब्रजभाषा का वह रूप है जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है। कवि ने तत्कालीन सभी प्रचलित शब्दों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है। शब्द-चयन रसानुकूल है, अतः वीर रस के चित्रणों में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। जहाँ तक भाषा की शक्ति का प्रश्न है, कवि ने अभिधेय भाषा को भी पर्याप्त

नोट

प्रभावशाली रूप दिया है। लाक्षणिक तथा ध्वन्यात्मक शब्दावली ने भी प्रायः भाषा-सौंदर्य की वृद्धि की है। अलंकारों का चंद ने सहज प्रयोग किया है। शायद ही कोई अलंकार ऐसा हो जिसे उन्होंने छोड़ा हो। लगभग अड़सठ प्रकार के छंदों में लिखा गया यह महाकाव्य सभी दृष्टियों से आदिकाल की एक श्रेष्ठ कृति सिद्ध होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. गोरखपंथी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे।
8. युद्धों के अत्यंत प्रभावशाली वर्णनों की परमाल रासो काव्य में भरमार नहीं है।
9. पृथ्वीराज रासो में वस्तु-वर्णन का भी वर्णन है।

4.2 सारांश (Summary)

- जैन-तीर्थंकरों के जीवन-चरित तथा वैष्णव अवतारों की कथाएँ जैन-आदर्शों के आवरण में 'रास' नाम से पद्यबद्ध की गई। जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात्रि के समय ताल देकर 'रास' का गायन करते थे। चौदहवीं शताब्दी तक इस पद्धति का प्रचार रहा। अतः जैन-साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ बन गए। वीर गाथाओं में 'रास' को ही 'रासो' कहा गया है, किंतु उनकी विषय-भूमि जैन रास-ग्रंथों से भिन्न हो गई है।
- नाथ-पंथ से ही भक्तिकाल के संत-मत का विकास हुआ था, जिसके प्रथम कवि कबीर थे। इस मंतव्य का समर्थन कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से हो जाता है—नाथपंथी रचनाओं की अनेक विशेषताएँ संत-काव्य में यथावत् विद्यमान हैं।
- गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। हठयोगियों के 'सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। इन दोनों के योग को ही 'हठयोग' कहते हैं। गोरखनाथ ने ही षट्चक्रोंवाला योग-मार्ग हिंदी-साहित्य में चलाया था। इस मार्ग में विश्वास करनेवाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था।
- 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के संबंध में भी विवाद रहा है। वस्तुतः यह काव्य पिंगल शैली में लिखा गया है जो ब्रजभाषा का वह रूप है जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है। कवि ने तत्कालीन सभी प्रचलित शब्दों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है। शब्द-चयन रसानुकूल है, अतः वीर रस के चित्रणों में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं।

4.3 शब्दकोश (Keywords)

1. विद्वान—अधिक ज्ञान रखने वाला व्यक्ति, बुद्धिमान
2. विवाद—झगड़ा, कलह
3. रचयिता—रचने वाला, बनाने वाला

4.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सिद्ध-साहित्य के मुख्य सिद्धों के विषय में उल्लेख कीजिए।
2. जैन-साहित्य से क्या तात्पर्य है? विस्तार से बताइए।
3. रासो-साहित्य से क्या अभिप्राय है? विस्तार से उल्लेख कीजिए।

उत्तर: स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

नोट

- | | | |
|------------------|------------|--------------|
| 1. विद्वान | 2. चौरासी | 3. साहित्य |
| 4. (घ) आचार-शैली | 5. (ख) 250 | 6. (घ) हिंदी |
| 7. सत्य | 8. असत्य | 9. सत्य |

4.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।
2. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।
3. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—ध्वन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।

नोट

इकाई-5 : आदिकालीन साहित्य परंपरा : खुसरो, चंदबरदाई, विद्यापति एवं अब्दुल रहीम

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 5.1 अमीर खुसरो की कृतियाँ
 - 5.1.1 अमीर खुसरो की कृतियों के उदाहरण
- 5.2 चंदबरदाई—जीवन परिचय
 - 5.2.1 चंदबरदाई की कविता
- 5.3 विद्यापति—परिचय
 - 5.3.1 प्रमुख रचनाएँ
 - 5.3.2 विद्यापति की कविता
- 5.4 अब्दुल रहीम—परिचय
 - 5.4.1 रहीम के दोहे
- 5.5 सारांश (Summary)
- 5.6 शब्दकोश (Keywords)
- 5.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 5.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- अमीर खुसरो की कृतियों से परिचित होंगे।
- विद्यापति और चंदबरदाई की कविता को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

खुसरो को हिंदी खड़ीबोली का पहला लोकप्रिय कवि माना जाता है। अमीर खुसरो खड़ी बोली हिंदी के प्रथम कवि हैं। वे अपनी पहेलियों और मुकरियों के लिए जाने जाते हैं। सबसे पहले उन्होंने हिंदी भाषा (हिन्दवी) का उल्लेख किया था। वे फारसी के कवि भी थे। उनको दिल्ली सल्तनत का आश्रय मिला हुआ था। उनके ग्रंथों की सूची लंबी है। साथ ही इनका इतिहास स्रोत के रूप में महत्व है।

मध्य एशिया की लाचन जाति के तुर्क सैफुद्दीन के पुत्र अमीर खुसरो का जन्म सन् (652 हि.) में एटा उत्तर प्रदेश के पटियाली नामक कस्बे में हुआ था। लाचन जाति के तुर्क चंगेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर

नोट

बलबन (1266-1286 ई.) के राज्यकाल में शरणार्थी के रूप में भारत में आ बसे थे। खुसरो की माँ बलबन के युद्धमंत्री इमादुल मुल्क की लड़की, एक भारतीय मुसलमान महिला थी। सात वर्ष की अवस्था में खुसरो के पिता का देहांत हो गया। किशोरावस्था में उन्होंने कविता लिखना प्रारंभ किया और 20 वर्ष के होते-होते वे कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गए। खुसरो में व्यावहारिक बुद्धि की कमी नहीं थी। सामाजिक जीवन की खुसरो ने कभी अवहेलना नहीं की। खुसरो ने अपना सारा जीवन राज्याश्रय में ही बिताया। राजदरबार में रहते हुए भी खुसरो हमेशा कवि, कलाकार, संगीतज्ञ और सैनिक ही बने रहे।

5.1 अमीर खुसरो की कृतियाँ

अमीर खुसरो ने फारसी कवि निजामी गंजवी के खम्स के जवाब में अपना पंचगंज 698 हिजरी से 701 हिजरी के बीच लिखा यानि सन् 1298 ई. से 1301 ई. तक। इसमें पाँच मसनवियाँ हैं। इन्हें खुसरो की पंचपदी भी कहते हैं। ये इस प्रकार हैं—

1. **मतला-उल-अनवार**—निजामी के मखजनुल असरार का जवाब है। (698 हि./सन् 1298 ई.) अर्थात् रोशनी निकलने की जगह। उम्र 45 कवि जामी ने इसी के अनुकरण पर अपना 'तोहफतुल अबरार' (अच्छे लोगों का तोहफा) लिखा था। इसमें खुसरो ने अपनी इकलौती लड़की को सीख दी है जो बहुत सुंदर थी। विवाह के पश्चात् जब बेटी विदा होने लगी तो खुसरो ने उसे उपदेश दिया था—खबरदार चर्खा कातना कभी न छोड़ना। झरोखे के पास बैठकर इधर-उधर न झाँकना।
2. **शीरी व खुसरो**—यह कवि निजामी की खुसरो व शीरी का जवाब है। यह 698 हिजरी/सन् 1298 ई., उम्र 45 वर्ष में लिखी गई। खुसरो ने इसमें प्रेम की पीर को तीव्रतर बना दिया है। इसमें बड़े बेटे को सीख दी है। इस रोमांटिक अभिव्यक्ति में भावात्मक तन्मयता की प्रधानता है। मुल्ला अब्दुल कादिर बादयूनी, फैजी लिखते हैं कि ऐसी मसनवी इन तीन सौ वर्षों में अन्य किसी ने नहीं लिखी। डॉ. असद अली के अनुसार यह रचना अब उपलब्ध नहीं तथा इसकी खोज की जानी चाहिए।
3. **मजनूँ व लैला**—निजामी के लैला-मजनूँ का जवाब 699 हिजरी, सन् 1299 ई. उम्र 46 वर्ष। प्रेम तथा शृंगार की भावनाओं का चित्रण। इसमें 2660 पद हैं। लैला-मजनूँ का प्रत्येक शेर गागर में सागर के समान है। यह पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। कुछ विद्वान इसका काल 698 हिजरी भी मानते हैं। कलात्मक दृष्टि से जो विशेषताएँ 'मजनूँ व लैला' में पाई जाती हैं, वे और किसी मसनवी में नहीं हैं। शैव्या पर फँस जाना, लैला की बीमारी का समाचार सुनकर मजनूँ का उसके पुर्से को आना और उसकी अर्थी देखना, मजनूँ का मस्त होकर गीत गाना, लैला के अंतिम संस्कार के समय मजनूँ का दम तोड़ देना और साथ ही दफन होना।
4. **आइने-सिकंदरी या सिकंदर नामा**—निजामी के सिकंदरनामा का जवाब (699 हिजरी/सन् 1299 ई.) इसमें सिकंदरे आजम और खाकाने चीन की लड़ाई का वर्णन है। इसमें अमीर खुसरो ने अपने छोटे लड़के को सीख दी है। इसमें रोजी-रोटी कमाने व कुवते बाजू की रोटी को प्राथमिकता, हुनर (कला) सीखने, मजहब की पाबंदी करने और सच बोलने की वह तरकीब है जो उन्होंने अपने बड़े बेटे को अपनी मसनवी शीरी खुसरो में दी है। इस रचना के द्वारा खुसरो यह दिखाना चाहते थे कि वे भी निजामी की तरह वीर रस प्रधान मसनवी लिख सकते हैं।



क्या आप जानते हैं 'लैला-मजनूँ' कृति में 2660 पद हैं। इसका प्रत्येक शेर गागर में सागर के समान है।

5. **हशव-बहिश्त**—निजामी के हफ्त पैकर का जवाब (701 हिजरी/सन् 1301 ई.) फारसी की सर्वश्रेष्ठ कृति। इसमें ईरान के बहराम गोर और एक चीनी हसीना (सुंदरी) की काल्पनिक प्रेम-गाथा का बेहद ही

नोट

मार्मिक चित्रण है, जो दिल को छू जाने वाली है। इसमें खुसरो ने मानो अपना व्यक्तिगत दर्द पिरो दिया है। कहानी मूलतः विदेशी है अतः भारत से संबंधित बातें कम हैं। इसका वह भाग बेहद ही महत्वपूर्ण है जिसमें खुसरो ने अपनी बेटी को संबंधित कर उपदेशजनक बातें लिखी हैं। मौलाना शिबली (आजमगढ़) के अनुसार इसमें खुसरो की लेखन कला व शैली चरमोत्कर्ष को पहुँच गई है। घटनाओं के चित्रण की दृष्टि से फारसी की कोई भी मसनवी, चाहे वह किसी भी काल की हो, इसका मुकाबला नहीं कर सकती।

आज के संदर्भ में खुसरो की कविता का अनुशीलन भावात्मक एकता के पुरस्कर्ताओं के लिए भी लाभकारी होगा। खुसरो वतनपरस्तों अर्थात् देशप्रेमियों के सरताज कहलाए जाने योग्य हैं। उनका संपूर्ण जीवन देश भक्तों के लिए एक संदेश है। देशवासियों के दिलों को जीतने के लिए जाति, धर्म, आदि की एकता की कोई आवश्यकता नहीं। अपितु धार्मिक सहिष्णुता, विचारों की उदारता, मानव मात्र के साथ प्रेम का व्यवहार, सबकी भलाई (कल्याण) की कामना तथा राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता होती है।

यद्यपि अमीर खुसरो दरबारों से संबंधित थे और उसी तरह का जीवन भी व्यतीत करते थे जो साधारणतया दरबारी का होता था। इसके अतिरिक्त वे सेना के कमांडर जैसे बड़े-बड़े पदों पर भी रहे किंतु यह उनके स्वभाव के विरुद्ध था। अमीर खुसरो को दरबारदारी और चाटुकारिता आदि से बहुत चिढ़ व नफरत थी। वह समय-समय पर इसके विरुद्ध विचार भी व्यक्त किया करते थे। उनके स्वयं के लिखे ग्रंथों के अलावा उनके समकालीन तथा बाद के साहित्यकारों के ग्रंथ इसका जीता-जागता प्रमाण है।



नोट्स खुसरो का संपूर्ण जीवन तत्कालीन नौजवान देशभक्तों के लिए एक संदेश था।

5.1.1 खुसरो की कृतियों के उदाहरण

दोहा

खुसरो दरिया प्रेम का, सो उलटी वा की धार,
जो उबरो सो डूब गया, जो डूबा हुवा पार।
सेज वो सूनी देख के रोवूँ मैं दिन रैन,
पिया पिया मैं करत हूँ पहरों, पल भर सुख ना चैन।

पद

छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाइके
छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाइके
प्रेम बटी का मदवा पिलाइके
मतवाली कर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
गोरी गोरी बईयाँ, हरी हरी चूड़ियाँ
बईयाँ पकड़ धर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
बल बल जाऊँ मैं तोरे रंग रजवा
अपनी सी कर लीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
खुसरो निजाम के बल बल जाए
मोहे सुहागन कीन्ही रे मोसे नैना मिलाइके
छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाइके

गजल

नोट

जिहाल-ए-मिस्कीं मकुन तगाफुल,
 दुराये नैना बनाये बतियाँ।
 कि ताब-ए-हिजरां नदारम ऐ जान,
 न लेहो काहे लगाये छतियाँ।।
 शबां-ए-हिजरां दरज चूं जुल्फ
 वा रोज-ए-वस्लत चो उम्र कोताह,
 सखि पिया को जो मैं न देखूं
 तो कैसे काटूं अँधेरी रतियाँ।।

5.2 चंदबरदाई-जीवन परिचय

चंदबरदाई (सितंबर 1149-1200 ई.) एक हिंदू ब्राह्मण थे। वे पृथ्वीराज चौहान, जिन्होंने (1165 से 1192 तक) अजमेर और दिल्ली में शासन किया, के दरबारी कवि थे। चंदबरदाई न केवल राजकवि थे बल्कि पृथ्वीराज के मंत्रिपरिषद् के अहम् सदस्य भी थे। चंदबरदाई ने कई लड़ाईयों में पृथ्वीराज चौहान का साथ दिया। चंदबरदाई का दो बार विवाह हुआ था। कमला और गौरन नामक दो पत्नियों से कवि की दस संतानें थीं। पृथ्वीराज रासो चंदबरदाई की प्रसिद्ध रचना है। यह काव्य रूप में है इसमें दस हजार से भी ज्यादा पद हैं। कवि ने इस ग्रंथ में पृथ्वीराज चौहान के शासन व व्यक्तित्व का बखान किया है। इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्त्व है। ग्रंथ ब्रज भाषा में लिखा गया है।

5.2.1 चंदबरदाई की कविता

पद्मसेन कूँवर सुघर ताघर नारि सुजान।
 ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुँ कला ससभान॥
 मनहुँ कला ससभान कला सोलह सो बन्निय।
 बाल वैस, ससि ता समीप अमित रस पिन्निय॥
 बिगसि कमल-स्निग, भ्रमर, बेनु, खंजन, म्रिग लुट्टिय।
 हीर, कीर, अरु बिंब मोति, नष सिष अहि घुट्टिय॥
 छप्पति गयंद हरि हंस गति, बिह बनाय संचै सँचिय।
 पदमिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुँ काम-कामिनि रचिय॥
 मनहुँ काम-कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
 पसु पंछी मृग मोहिनी, सुर नर, मुनियर पास॥
 सामुद्रिक लच्छिन सकल, चौंसठि कला सुजान।
 जानि चतुर्दस अंग खट, रति बसंत परमान॥
 सषियन संग खेलत फिरत, महलनि बग्न निवास।
 कीर इक्क दिषिय नयन, तब मन भयो हुलास॥
 मन अति भयौ हुलास, बिगसि जनु कोक किरन-रबि।
 अरुन अधर तिय सुघर, बिंबफल जानि कीर छबि॥
 यह चाहत चष चकित, उह जु तक्किय झरपि झर।
 चंचु चहुट्टिय लोभ, लियो तब गहित अप्प कर॥

नोट

हरषत अनंद मन मैंहु हलस, लै जु महल भीतर गइय।
पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मैंहु रषत भइय॥
तिहि महल रषत भइय, गइय खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुँटयो कीर सों, राम पदावत फुल्ल॥
कीर कुंवरि तन निरषि दिषि, नष सिष लौं यह रूप।
करता करी बनाय कै, यह पद्मिनी सरूप॥
कुटिल केस सुदेस पोहप रचयित पिक्क सद।
कमल-गंध, वय-संध, हंसगति चलत मंद मंद॥
सेत वस्त्र सोहे सरीर, नष स्वाति बूँद जस।
भमर-भमहिं भुल्लहिं सुभाव मकरंद वास रस॥
नैन निरषि सुष पाय सुक, यह सुदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय॥

5.3 विद्यापति-परिचय

विद्यापति भारतीय साहित्य की भक्ति परंपरा के प्रमुख स्तंभों में से एक और मैथिली के सर्वोपरि कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनके काव्यों में मध्यकालीन मैथिली भाषा के स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है। इन्हें वैष्णव और शैव भक्ति के सेतु के रूप में भी स्वीकार किया गया है। मिथिला के लोगों को 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' का सूत्र देकर इन्होंने उत्तरी-बिहार में लोकभाषा की जनचेतना को जीवित करने का महती प्रयास किया है।

मिथिलांचल के लोकव्यवहार में प्रयोग किए जाने वाले गीतों में आज भी विद्यापति की शृंगार और भक्ति रस में पगी रचनाएँ जीवित हैं। पदावली और कीर्तिलता इनकी अमर रचनाएँ हैं।

5.3.1 प्रमुख रचनाएँ

महाकवि विद्यापति संस्कृत, अबहट्ट, मैथिली आदि अनेक भाषाओं के प्रकांड पंडित थे। शास्त्र और लोक दोनों ही संसार में उनका असाधारण अधिकार था। कर्मकांड हो या धर्म, दर्शन हो या न्याय, सौंदर्य शास्त्र हो या भक्ति रचना, विरह व्यथा हो या अभिसार, राजा का कृतित्व गान हो या सामान्य जनता के लिए गया में पिण्डदान, सभी क्षेत्रों में विद्यापति अपनी कालजयी रचनाओं के बदौलत जाने जाते हैं। महाकवि के रूप में ओईनवार राजवंश के अनेक राजाओं के शासनकाल में विराजमान रहकर अपने वैदुष्य एवं दूरदर्शिता से उनका मार्गदर्शन करते रहे।



टास्क

महाकवि विद्यापति मैथिली भाषा के प्रकांड पंडित थे। मैथिली भाषा के अन्य कवियों व उनकी कृतियों का पता लगाइए।

5.3.2 विद्यापति की कविता

सखि हे, कि पुछसि अनुभव मोय।
सेह पिरित अनुराग बखानिय तिल-तिल नूतन होय।
जनम अबधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनही सूनल स्तुति पथ परस न गेल।

नोट

कत मधु-जामिनी रभस गमाओलि न बूझल कइसन केलि।
लाख लाख जुग हिय हिय राखल तइयो हिय जरनि न गेल।
कत बिदगध जन रस अनुमोदए अनुभव काहू न पेख।
विद्यापति कह प्रान जुड़ाइते लाखे न मिलल एक।

व्याख्या—सखी, अनुभव की बातें मुझसे क्या पूछती हो?

उस प्रीति और अनुराग का बखान कैसे करूंगी। वह तो तिल-तिल करके नया होता जाता है, पुराना पड़ ही नहीं सकता।

जीवन भर हमने उस रूप को निहारा, आँखें नहीं भरीं और वे मीठे बोल कानों से सुनती रही, मगर कान प्यासे ही बने रहे।

बसंत की कितनी रातें रंगरेलियों में गुजार दी, फिर भी पता नहीं चला कि काम-केलि क्या होती है। लाख-लाख युग उसे हृदय के अंदर रखा, फिर भी हृदय की जलन न गई। कितने ही रसिक जन रस का उपयोग करते हैं, परंतु वे उसको समझ नहीं पाते, न देख पाते हैं।

विद्यापति का कहना है—“प्राणों को जुड़ाने के लिए लाख में एक भी नहीं मिला।”

कि कहब हे सखि आजुक रंग। सपनहि सूतल कुपुरुष संग।
बड सुपुरुष बलि आएल धाई। सूति रहल मोर आँचल झंपाई।
कांचुली खोलि आलिंगन देल। मोहि जगाए आपतु निंद गेल।
हे बिहि हे बिहि बड़ दुःख देल। से दुःख रे सखि अबहु न गेल।
भनई विद्यापति एह रस धन्द। भेक कि जान कुसुम-मकरंद।

व्याख्या—सखी, आज रात अच्छा खिलवाड़ रहा। जाने कैसा भुच्चड़ मर्द सपने में मेरे साथ सोया।

अच्छे-भले आदमी की तरह पास आया और मेरे आँचल में अपना मुँह छुपाकर मेरे पास लेट गया। पहले तो उसने मेरी आँगिया खोली फिर वह मुझसे चिपट गया। वह मूर्ख मुझे जगाकर खुद सो गया। हाय रे दैव, हाय रे दैव। उसने मुझे कितना दुःख दिया। सखी वह दुःख मैं अब भी भूल नहीं पाई हूँ। विद्यापति कहते हैं—“यह तो रस नहीं, रसाभास हुआ। कुसुम के मकरंद की असलियत मेंढक क्या जाने।”

जुगल सैल-सिम हिमकर देखल एक कमल दुई जोति रे।
फुललि मधुर फुल सिंदुर लोटा इलि पाँति बईसलि गज-मोति रे।
आज देखल जत के पतिआएत अपूरब बिहि निरमान रे।
बिपरित कनक-कदलि-तर सोभित थल-पंकज अपरूप रे।
तथहु मनोहर बाजन बाजए जागए मनसिज भूप रे।
भनइ विद्यापति पुरबक पुन तह ऐसनि भजए रसमंत रे।
बुझए सकल रस राजा सिवसिंह लखिमा देइ केन कन्त रे।

व्याख्या—दो पर्वतों की सीमा पर मैंने चाँद देखा है। कमल के एक ही फूल में मैंने दो आलोक देखे हैं।

खिले हुए लाल फूल सिंदूर में सन गए। गजमुक्ता के दाने दो पंक्तियों में जमे बैठे हैं...

आज जितना जो कुछ देखा, भला किसे विश्वास होगा? विधाता की अनूठी सृष्टि थी वह...

कनक-रचित कदली स्तंभ उल्टे शोभित थे (उनका पतला हिस्सा नीचे था, मोटा ऊपर)। नीचे दो थल-कमल (चरण) थे। वहाँ मनोहर वाद्य बज रहा था (पायल छमक रही थी)। यह आवाज मानो महाराज कामदेव को जगाने के लिए थी...

नोट

विद्यापति कहते हैं—“पूर्व जन्म का संचित पुण्य हो, तभी रसिक व्यक्ति इस प्रकार की युवती पा सकता है... लखिमा देवी (रानी) के पति राजा सिवसिंह ही इन गीतों का मर्म जानते हैं...”

ससन-परस खसु अम्बर रे देखल धनि देह।
नव जलधर-तर चमकए रे जनि बिजुरी-देह।
आज देखलि धनि जाइते रे मोहि उपजल रंग।
कनक-लता जनि संचर रे महि निर अवलंब।
ता पुन अपरुब देखल रे कुच-जुग अरबिंद।
बिगसित निह किछु करन रे सोभाँ मुख-चंद।
विद्यापति कवि गाओल रे रस बुझ रसमंत।
देवसिंह नृप नागर रे हासिनी देइ कान्त।

व्याख्या— हवा लगी तो कपड़े सरक गए। मैंने सुंदरी की देह देख ली। ऐसा लगा कि नए बादल की ओट में बिजली की लकीरें जगमगा उठी हैं।

मैंने आज उसे राह में देखा। मेरे अंदर अनुराग उमड़ आया। मुझे लगा, बिना किसी सहारे के धरती पर कनकलता टहल-बूझ रही है। फिर एक बात यह भी अनोखी देखी कि दोनों उरोज, उरोज नहीं थे, कमल थे। मगर वे खिले क्यों नहीं थे?

इसलिए नहीं खिल पा रहे थे कि सामने पूरा चाँद-मुखड़ा था।

विद्यापति ने गाया—“रसिक जन ही इसका मर्म समझेंगे। हासिनी देवी के प्राणवल्लभ राजा देव सिंह बड़े रसिक हैं।”

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

1. अमीर खुसरो खड़ी बोली के पहले लोकप्रिय कवि माने जाते हैं।
2. कवि चंदबरदाई ने ‘पृथ्वीराज रासो’ की रचना फारसी भाषा और मसनवी शैली में की।
3. विद्यापति ब्रज भाषा के कवि और प्रकांड पंडित थे।
4. लैला-मजनू की रचना चंदबरदाई ने की है।
5. अमीर खुसरो को दरबारदारी और चाटुकारिता से चिढ़ व नफरत थी।

5.4 अब्दुल रहीम-परिचय

अब्दुल रहीम खान-ए-खाना (17 दिसम्बर, 1550-1627), जिन्हें हम रहीम के नाम से जानते हैं, मुगल काल के चरमोत्कर्ष काल में अकबर के दरबार में कवि थे। रहीम बादशाह अकबर के दरबार के ‘नौ रत्नों’ में से एक थे। रहीम के लिखे दोहे तथा ज्योतिषशास्त्र पर लिखी पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं।

रहीम के पिता बैरम खान थे। जिन्होंने हुमायूँ की मृत्यु के बाद अकबर का पालन-पोषण किया तथा साम्राज्य का संरक्षण किया।

रहीम का जन्म लाहौर के एक मुस्लिम परिवार में हुआ था, लेकिन वे धार्मिक रूप से उदार और सहिष्णु थे। उनकी दानशीलता की प्रसिद्धि सुन कर तुलसीदास जी ने एक दोहा लिख कर पूछा—

‘ऐसी देनी देंन ज्यूँ, कित सीखे हो सैन
ज्यों-ज्यों कर ऊँचों करो, त्यों-त्यों निचे नैन’

यह जानते हुए कि तुलसीदास जी सब कुछ भली-भाँति जानते हैं। रहीम ने यह दोहा लिख कर अपना जवाब स्नेहपूर्वक भिजवाया—

नोट

‘देनहार कोई और है, भेजत जो दिन-रैन
लोग भरम हम पर करै, तासौ निचे नैन’

रहीम को संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। मुस्लिम संप्रदाय का होने के बावजूद उनका झुकाव सगुण भक्तिधारा की कृष्णधारा की ओर था। श्रीकृष्ण को रहीम अपना आराध्य मानते थे। ज्योतिषशास्त्र के उच्च विद्वान थे। ज्योतिषशास्त्र पर लिखी उनकी पुस्तकें ‘खेतीकौतुकम्’ तथा द्वाविशद् योगावली है।

उनके लिखे दोहे जगप्रसिद्ध हैं। इसके अलावा रहीम ने बाबर की आत्मकथा ‘बाबरनामा’ का फारसी में अनुवाद किया।

5.4.1 रहीम के दोहे

बड़े बड़ाई न करें, बड़े न बोले बोल,
रहिमन हीरा कब कहे, लखटका मेरो मोल।
रहिमन देखि बड़ेन को, लगहू न दीजे दारी,
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारी।
रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय,
टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ पड़ जाए।
खीरा मुख ते काटिये, मलिय तलों लगाये।
रहिमन कड़वे मुख कों, चाहियत इही सजाय।
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करी सकत कुसंग,
चंदन विष व्यापत नहीं, लिप्तात रहत भुजंग।
कही रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहुरीत,
बिपति कसौटी जे कसे, तेही सांचे मीत।

5.5 सारांश (Summary)

- खुसरो में व्यावहारिक बुद्धि की कमी नहीं थी। सामाजिक जीवन की खुसरो ने कभी अवहेलना नहीं की। खुसरो ने अपना सारा जीवन राज्याश्रय में ही बिताया। राजदरबार में रहते हुए भी खुसरो हमेशा कवि, कलाकार, संगीतज्ञ और सैनिक ही बने रहे।
- लैला-मजनूँ का प्रत्येक शेर गागर में सागर के समान है। यह पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। कुछ विद्वान इसका काल 698 हिजरी भी मानते हैं। कलात्मक दृष्टि से जो विशेषताएँ ‘मजनूँ व लैला’ में पाई जाती हैं, वे और किसी मसनवी में नहीं हैं।
- यद्यपि अमीर खुसरो दरबारों से संबंधित थे लेकिन उसी तरह का जीवन भी व्यतीत करते थे जो साधारणतया दरबारी का होता था।
- विद्यापति भारतीय साहित्य की भक्ति परंपरा के प्रमुख स्तंभों में से एक और मैथिली के सर्वोपरि कवि के रूप में जाने जाते हैं।

5.6 शब्दकोश (Keywords)

1. अनुशीलन—बार-बार किया जाने वाला अध्ययन या अभ्यास
2. मकरन्द—फूलों का रस, फूलों का केसर
3. पुर्सी—किसी की मृत्यु के समय शोक व्यक्त करना, सांत्वना

5.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अमीर खुसरो की प्रमुख कृतियों का परिचय दें।
2. 'ससन परस खसु अम्बर रे देखल धनि देह
नव जलधर-तर चमकए रे जनि बिजुरी-देह'
उपरोक्त पंक्तियों की व्याख्या कीजिए।
3. अब्दुल रहीम का जीवन परिचय दीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

- | | | |
|----------|----------|----------|
| 1. सत्य | 2. असत्य | 3. असत्य |
| 4. असत्य | 5. सत्य | |

5.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास—शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—वाष्णीय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।

नोट

इकाई-6 : आदिकालीन साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 6.1 आदिकालीन साहित्य में उपलब्ध होने वाली प्रमुख प्रवृत्तियाँ/विशेषताएँ
 - 6.1.1 काव्य ग्रंथों में ऐतिहासिकता, युद्ध वर्णन में सजीवता तथा प्रमाणिकता में संदेह
 - 6.1.2 रासो काव्य ग्रंथों में वीर एवं शृंगार रस की प्रधानता, आश्रयदाताओं की प्रशंसा, संकुचित राष्ट्रीयता तथा कल्पना की प्रचुरता
 - 6.1.3 रासो काव्य ग्रंथों में विविध छंदों का प्रयोग, डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग तथा अलंकारों का स्वाभाविक समावेश
- 6.2 सारांश (Summary)
- 6.3 शब्दकोश (Keywords)
- 6.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 6.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- आदिकालीन साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को जानने में।
- आदिकाल में रासो साहित्य की रचना की जानकारी प्राप्त करने में।
- ग्रंथों में पाई जाने वाली विभिन्न छंदों, भाषाओं एवं अलंकारों के स्वाभाविक समावेश को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आदिकालीन साहित्य में प्राप्त होने वाली प्रवृत्तियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में देखी जानी चाहिए। आदिकाल में मुख्य रूप से रासो साहित्य की रचना हुई। रासो ग्रंथों में भी बहुत सारे ग्रंथ कालांतर में परिवर्तित एवं परिवाचित हुए, तथापि उनका मूल रूप आदिकाल में ही रचा गया, यह प्रमाणित हो चुका है, अतः यह कहना उचित होगा कि रासो साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को ही आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कहना समीचीन प्रतीत होता है।

6.1 आदिकालीन साहित्य में उपलब्ध होने वाली प्रमुख प्रवृत्तियाँ/विशेषताएँ

आदिकालीन साहित्य में उपलब्ध होने वाली प्रवृत्तियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में देखी जानी चाहिए। इस काल में प्रमुख रूप से रासो साहित्य की रचना हुई, अतः आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ रासो साहित्य की

नोट

प्रवृत्तियाँ ही मानी जा सकती हैं आदिकालीन जैन साहित्य वस्तुतः अपभ्रंश भाषा में लिखा गया है, अतः उसे आधारभूत सामग्री के रूप में हम ग्रहण नहीं कर सकते। रासो ग्रंथों में भी बहुत सारे ग्रंथ कालांतर में परिवर्तित एवं परिवर्द्धित हुए, तथापि उनका मूल रूप आदिकाल में ही रचा गया, यह प्रमाणित हो चुका है, अतः रासो साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को ही आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कहना समीचीन प्रतीत होता है। इन ग्रंथों में पाई जाने वाली सामान्य प्रवृत्तियों का विवेचन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है—

6.1.1 काव्य ग्रंथों में ऐतिहासिकता, युद्ध वर्णन में सजीवता तथा प्रमाणिकता में संदेह

1. **ऐतिहासिकता का अभाव**—रासो साहित्य के चरित्र-नायक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, किंतु इन काव्य-ग्रंथों में ऐतिहासिकता की रक्षा नहीं की गई है। वस्तुतः इन ग्रंथों में तथ्य कम हैं, कल्पना अधिक है, परिणामतः अनेक ऐतिहासिक भ्रांतियाँ उत्पन्न होती हैं। इन ग्रंथों के रचयिताओं ने जो वर्णन किए हैं, वे तत्कालीन इतिहास से मेल नहीं खाते। घटनाओं, नामावली, तिथियों का जो विवरण रासो काव्यों में उपलब्ध होता है, वह इतिहाससम्मत नहीं है। ऐतिहासिक चरित्र-नायकों को लेकर लिखे गए काव्य ग्रंथों में जिस सावधानी की अपेक्षा की जाती है, उससे ये नितांत विमुख रहे हैं। परिणामतः इन ग्रंथों से किसी ऐतिहासिक तथ्य एवं सत्य का उद्घाटन नहीं होता। इतिहास में अतिशयोक्ति से बचा जाता है, जबकि चारण कवियों ने अतिशयोक्ति को प्रमुखता देते हुए काल्पनिक वर्णन किए हैं, यही कारण है कि इन ग्रंथों में ऐतिहासिकता का अभाव है।
2. **युद्ध-वर्णन में सजीवता**—रासो ग्रंथों में किए गए युद्ध वर्णन सजीव प्रतीत होते हैं। इन काव्य ग्रंथों में जहाँ-जहाँ युद्ध-वर्णन के प्रसंग हैं, वहाँ-वहाँ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कवि युद्ध का आँखों देखा हाल सुना रहा है। चारण कवि कलम के ही नहीं तलवार के भी धनी थे, अतः अवसर पड़ने पर अपने-अपने आश्रयदाता के साथ रणक्षेत्र में जाकर तलवार के हाथ भी दिखाते थे। युद्ध के दृश्यों को उन्होंने अपनी आँखों से देखा था, अतः इन युद्ध-वर्णनों में जो कुछ भी कहा गया है, वह उनकी अपनी वास्तविक अनुभूति है। इन कवियों ने केवल सैन्य बल का ही नहीं अपितु योद्धाओं की उमंगों, मनोदशाओं एवं क्रियाकलापों का सुंदर वर्णन किया है। इन युद्ध-प्रसंगों में कवि की कल्पना का चमत्कार न होकर वीर हृदय के उच्छ्वासों का स्पंदन है। तत्कालीन परिस्थितियों के कारण युद्ध एक अनिवार्य आवश्यकता थी, अतः एक ऐसे वर्ग की अपेक्षा राजाओं को रहती थी जो वीरों को युद्ध के लिए प्रोत्साहित कर सके। चारण कवि इसी आवश्यकता की पूर्ति करते थे। इनके योगदान की चर्चा करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, “देश पर सब ओर से आक्रमण की संभावना थी। निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी श्रेणी के लोग थे। उनका कार्य ही था हर प्रसंग में आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटना-योजना का आविष्कार।”



नोट्स पृथ्वीराज रासो अपने युद्ध वर्णनों के कारण भी एक सशक्त रचना मानी जाती है।

3. **प्रमाणिकता में संदेह**—आदिकाल के अधिकांश रासो कवियों की प्रमाणिकता संदिग्ध है। पृथ्वीराज रासो जो इस काल की प्रमुख रचना बताई गई है, भी अप्रमाणिक मानी गई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, “इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं है कि यह पूरा ग्रंथ वास्तव में जाली है।” इसी प्रकार खुमान रासो और परमाल रासो की प्रमाणिकता में भी संदेह है। मूल कवि की रचना में अन्य लोगों ने कब और कितना अंश प्रक्षिप्त रूप में जोड़ दिया है इसका निर्णय कर पाना कठिन है। भाषा-शैली और विषय सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये रासो काव्य समय-समय पर परिवर्तित एवं परिवर्द्धित होते रहे हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. आदिकालीन जैन साहित्य वस्तुतः भाषा में लिखा गया है।
2. में किए गए युद्ध वर्णन सजीव प्रतीत होते हैं।
3. पृथ्वीराज रासो अपने युद्ध वर्णनों के कारण भी एक रचना मानी जाती है।

6.1.2 रासो काव्य ग्रंथों में वीर एवं शृंगार रस की प्रधानता, आश्रयदाताओं की प्रशंसा, संकुचित राष्ट्रीयता तथा कल्पना की प्रचुरता

1. **वीर एवं शृंगार रस की प्रधानता**—रासो ग्रंथों में यद्यपि सभी रसों का समावेश हुआ है, तथापि वीर एवं शृंगार रस की प्रधानता इनमें परिलक्षित होती है। युद्धों का वर्णन होने से वीर रस की योजना इनमें अनायास ही हो गई है। वीरों के मनोभाव एवं अदम्य उत्साह का जैसा हृदयग्राही वर्णन रासो काव्यों में किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। पृथ्वीराज रासो में ऐसे अनेक मर्मस्पर्शी स्थल हैं जहाँ वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। युद्ध, शौर्य-प्रदर्शन के लिए तथा सुंदर राजकुमारियों से विवाह करने के निमित्त लड़े जाते थे, अतः शृंगार रस के भावपूर्ण वर्णनों का समावेश भी इन काव्य ग्रंथों में हो गया है। राजकुमारियों के स्वप्निल सौंदर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन नख-शिख परिपाटी पर किया गया है। नायिका के रूप-सौंदर्य के साथ-साथ वयःसंधि और षट्क्रतु वर्णन का सम्यक समावेश भी रासो ग्रंथों में किया गया है।



क्या आप जानते हैं वीरों के मनोभाव एवं अदम्य उत्साह का जैसा हृदयग्राही वर्णन रासो काव्यों में किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

2. **आश्रयदाताओं की प्रशंसा**—रासो ग्रंथों के रचयिता चारण कहे जाते थे और अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में काव्य रचना करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। अपने चरित्र नायक की श्रेष्ठता एवं प्रतिपक्षी राजा की हीनता का वर्णन अतिशयोक्ति में करना इन चारणों की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। दरबारी कवि होने के कारण इन कवियों ने आश्रयदाता के शौर्य, यश, वैभव का काल्पनिक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। पृथ्वीराज रासो एवं खुमान रासो इसी कोटि की प्रशंसापरक काव्य रचनाएँ हैं, जिनमें कवि ने अपने चरित नायक को राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन और हरिश्चंद्र से भी श्रेष्ठ बताते हुए प्रत्येक दृष्टि से उनकी महत्ता प्रतिपादित की है।
3. **संकुचित राष्ट्रीयता**—इस काल में वीरता का वर्णन तो बहुत हुआ, परंतु स्वदेशाभिमान एवं राष्ट्रीयता की भावना का अभाव है। उस समय देश खंड-खंड राज्यों में विभक्त था और इन छोटे-छोटे राज्यों के शासक परस्पर कलह और संघर्ष में रत रहते थे। वे दस-बीस गाँवों के छोटे से राज्य को ही राष्ट्र समझते थे, अतः उनमें संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने की भावना का अभाव था। परिणामतः विदेशी आक्रांताओं के विरुद्ध संगठित होकर युद्ध करने में वे कभी सफल नहीं हुए। पड़ोसी राज्य पर विदेशी आक्रमण होने पर ये रंचमात्र भी विचलित नहीं होते थे। इसी संकुचित राष्ट्रीयता के कारण धीरे-धीरे सभी देशी साम्राज्य विदेशी आक्रांताओं द्वारा पददलित किए जाते रहे। यदि इन शासकों ने अपने क्षुद्र अहंभाव का परित्याग करके संगठित होकर विदेशियों का सामना किया होता तो देश को दीर्घ अवधि तक विदेशी शासन झेलने हुए परतंत्र न रहना पड़ता।
4. **कल्पना की प्रचुरता**—चारण कवियों की रचनाएँ तथ्यपरक न होकर कल्पना प्रधान हैं। ऐतिहासिक पात्र तो इन रचनाओं में हैं, पर इतिहास नाममात्र को ही है। कवियों ने कल्पना का सहारा लेते हुए घटनाओं, नामावलियों एवं तिथियों तक की कल्पना कर ली है। वस्तुतः इन रासो काव्यों में संभावना और कल्पना पर अधिक बल दिया गया है, तथ्यों पर कम। अपने आश्रयदाता की वीरता का काल्पनिक वर्णन करने में

इन्होंने अतिशयोक्ति का सहारा लिया है और इसी क्रम में इतिहास-सत्य की अवहेलना भी कर दी है। इन वीरगाथाओं को इसी कारण से काल्पनिक कथा युक्त रचनाएँ कहना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न-

4. किसका वर्णन होने से वीर रस की योजना इनमें अनायास ही हो गई है?

(क) काव्यों	(ख) मुहावरों
(ग) लोकोक्तियों	(घ) युद्धों
5. छोटे शासक पड़ोसी राज्य पर विदेशी आक्रमण होने पर रंचमात्र भी नहीं होते थे।

(क) परेशान	(ख) क्रोधित
(ग) विचलित	(घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
6. ने कल्पना का सहारा लेते हुए घटनाओं, नामावलियों एवं तिथियों तक की कल्पना कर ली है।

(क) सूफियों	(ख) कवियों
(ग) संतों	(घ) बुद्धिजीवियों

6.1.3 रासो काव्य ग्रंथों में विविध छंदों का प्रयोग, डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग तथा अलंकारों का स्वाभाविक समावेश

1. **विविध छंदों का प्रयोग**—रासो ग्रंथों में छंदों की विविधता परिलक्षित होती है। छंदों की यह विविधता हिंदी के न तो परवर्ती साहित्य में मिलती है, न पूर्ववर्ती साहित्य में। पृथ्वीराज रासो में अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है, यथा—दोहा, गाथा, तोमर, तोटक, रोला, उल्लाला, साटक कुंडलिया आदि। यह छंद परिवर्तन मात्र कलात्मकता या चमत्कार प्रदर्शन के लिए न होकर भाव-प्रकाशन के लिए किया गया है। छंदों की विविधता के कारण ही चंदबरदाई को छंदों का सम्राट और उनकी रचना पृथ्वीराज रासो को 'छंदों का अजायबघर' कहा जाता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रासो के छंदों की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "रासो के छंद जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल नवीन कंपन उत्पन्न करते हैं।"
2. **डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग**—आदिकालीन रासो साहित्य में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह आधुनिक हिंदी से बहुत भिन्न है। अपभ्रंश और राजस्थानी भाषा के जिस मिले-जुले रूप का प्रयोग चारण कवियों ने रासो ग्रंथों में किया है, उसे डिंगल नाम दिया गया है। इसी प्रकार तत्कालीन अपभ्रंश और ब्रजभाषा के मेल से बनी भाषा को पिंगल कहा जाता है, जिसका प्रयोग भी इन ग्रंथों में किया गया है। वीर रस के भावों को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता डिंगल-पिंगल भाषा में विद्यमान है। अनुस्वारांत प्रवृत्ति एवं द्वित्व वर्णों की प्रधानता भी रासो की भाषा में उपलब्ध होती है। संस्कृति की तत्सम शब्दावली के साथ-साथ तद्भव शब्दों का प्रयोग भी इन काव्य ग्रंथों में प्रचुरता से किया गया है।
3. **अलंकारों का स्वाभाविक समावेश**—रासो साहित्य में अलंकारों का स्वाभाविक समावेश हुआ है। चारण कवियों ने अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए अलंकारों का सहारा लिया है, कहीं भी चमत्कार प्रदर्शन के लिए अलंकार योजना नहीं की गई है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का जैसा हृदयग्राही चित्रण इन काव्य ग्रंथों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। सौंदर्य चित्रण में उत्प्रेक्षाओं से काम लिया गया है। यद्यपि रासो के विशाल कलेवर में प्रायः सभी अलंकार खोजने से प्राप्त हो जाते हैं तथापि अनुप्रास, वक्रोक्ति, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति जैसे अलंकारों की प्रधानता रही है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आदिकालीन रासो साहित्य की प्रवृत्तियाँ तद्गुणीन परिस्थितियों की

देन है। जहाँ तक चारण कवियों की काव्य प्रतिभा का प्रश्न है, वह अपने में बेजोड़ है। कथा प्रसंगों की योजना, वर्णनात्मकता, भाव-व्यंजना, रस योजना आदि दृष्टियों से रासो साहित्य अनुपम कहा जा सकता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. रासो ग्रंथों में छंदों की विविधता परिलक्षित नहीं होती है।
8. अनुस्वारांत प्रवृत्ति एवं द्वित्व वर्णों की प्रधानता भी रासो की भाषा में उपलब्ध होती है।
9. सौंदर्य चित्रण में उत्प्रेक्षाओं से काम लिया गया है।

6.2 सारांश (Summary)

- रासो ग्रंथों में भी बहुत सारे ग्रंथ कालांतर में परिवर्तित एवं परिवर्द्धित हुए, तथापि उनका मूल रूप आदिकाल में ही रचा गया, यह प्रमाणित हो चुका है, अतः रासो साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को ही आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कहना समीचीन प्रतीत होता है।
- आदिकालीन रासो साहित्य की प्रवृत्तियाँ तद्युगीन परिस्थितियों की देन हैं। जहाँ तक चारण कवियों की काव्य प्रतिभा का प्रश्न है, वह अपने में बेजोड़ हैं। कथा प्रसंगों की योजना, वर्णनात्मकता, भाव-व्यंजना, रस योजना आदि दृष्टियों से रासो साहित्य अनुपम कहा जा सकता है।

6.3 शब्दकोश (Keywords)

1. वीरता—बहादुरी, साहस
2. व्यंग्यमयी—व्यंगभरी तीखी आलोचना

6.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
2. आदिकाल में प्रमुख रूप से रासो साहित्य की रचना हुई, उल्लेख कीजिए।
3. रासो ग्रंथों से क्या तात्पर्य है? विवेचना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

- | | | |
|------------|---------------|----------|
| 1. अपभ्रंश | 2. रासो ग्रंथ | 3. सशक्त |
| 4. (घ) | 5. (ग) | 6. (ख) |
| 7. असत्य | 8. सत्य | 9. सत्य |

6.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—नगेंद्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।
4. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।

नोट

इकाई-7 : आदिकालीन साहित्य का परवर्ती काव्य पर प्रभाव

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 7.1 आदिकालीन साहित्य का प्रारंभ और परवर्ती काव्य पर इसका प्रभाव
- 7.2 आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत आने वाले कुछ प्रमुख साहित्य
 - 7.2.1 आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत जैन साहित्य
 - 7.2.2 आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत नाथ साहित्य
 - 7.2.3 आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत रासो साहित्य
- 7.3 सारांश (Summary)
- 7.4 शब्दकोश (Keywords)
- 7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- आदिकालीन साहित्य का परवर्ती काव्य पर प्रभाव को जानने में।
- आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत आने वाले साहित्यों को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आदिकालीन साहित्य का परवर्ती काव्य पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। आदिकाल जिसकी सीमा सं. 1050 से 1375 तक मानी जाती है, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे आदिकाल की संज्ञा दी थी। इस काल के प्रमुख साहित्य हैं—सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाथ साहित्य, लौकिक साहित्य, रासो साहित्य। सभी कवियों के काव्यों में इन सभी का प्रभाव दिखाई देता है।

7.1 आदिकालीन साहित्य का प्रारंभ और परवर्ती काव्य पर इसका प्रभाव

हिंदी साहित्य का आदिकाल जिसकी समय सीमा सं. 1050 से 1375 तक मानी जाती है। आदिकाल के बाद जिस काव्य धारा का जन्म हुआ उसे भक्ति काल कहा गया। भक्ति काल को चार भागों में विभक्त किया गया। निर्गुण काव्यधारा, सूफी काव्यधारा, राम काव्यधारा, कृष्ण काव्यधारा। निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवि कबीर दास थे। आदिकालीन साहित्य जिसमें सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाथ साहित्य, लौकिक साहित्य, रासो साहित्य आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन सभी का प्रभाव भक्ति के लगभग सभी कवियों के साहित्य में दिखाई

देता है। किंतु मुख्य रूप से यह प्रभाव कबीर के काव्य में दिखाई देता है। जिसे निम्नलिखित बिंदुओं के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

नोट

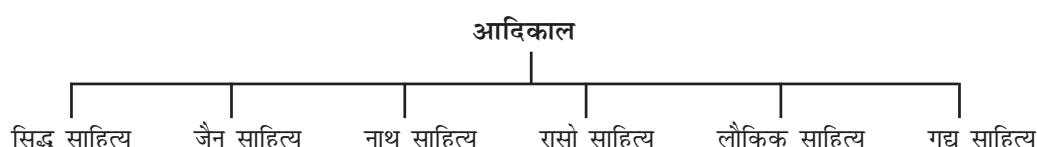
1. सिद्धों की उलझी उक्तियों को कबीर की उलटवासियों का प्रेरक समझना चाहिए।
2. संत साहित्य का आरंभिक बीज सिद्धों में ही मिलता है।
3. संतों के यहाँ जाति का खंडन भी यहीं से प्रभावित है।
4. संतों के काव्य में (कबीर) बाह्याडंबरों का विरोध भी इन्हीं से प्रभावित है।
5. कबीर के काव्य में गुरु का महत्त्व भी इन्हीं के प्रभाव से है।
6. नारी निंदा पर भी आदिकालीन साहित्य का प्रभाव है।
7. सदाचरण का प्रभाव भी आदिकालीन है।
8. कबीर द्वारा प्रयुक्त हठयोग की शब्दावली भी नाथ पंथ से ले ली गई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. आदिकाल के बाद जिस काव्यधारा का जन्म हुआ उसे कहा गया।
2. निर्गुण काव्य धारा के प्रमुख कवि थे।
3. संत साहित्य का आरंभिक बीज में ही मिलता है।

आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत आने वाले साहित्य



ये सभी साहित्य आदिकाल के अंतर्गत आते हैं। इन सभी साहित्यों का परिवर्ती काव्य पर प्रभाव निम्नलिखित प्रकार से देखा जा सकता है—

सिद्धों ने अपने परिवर्ती हिंदी कवियों को जो सबसे महत्वपूर्ण देन प्रदान की, वह है उसकी बेलौस मस्ती और निर्द्वन्द्व अकखड़ता। वे अपनी अनुभूतिजनित तन्मयता को बड़े सहज भाव से अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य रखते थे। उनमें कथन की ऐसी सहजता निश्छलता और ईमानदारी रहती थी जो प्रभावित करती थी। रूढ़ियों और उच्च वर्ग पर उनके प्रहार निर्द्वन्द्व, तीखे और व्यंग्यात्मक होते थे। अपनी बात को बिना किसी प्रकार की लाग लपेट के कह देना उनका सहज स्वभाव था। सिद्धों का बहुत कुछ प्रभाव कबीर आदि संत कवियों के काव्य पर दिखाई पड़ता है। सिद्धों की उलझी उक्तियों को कबीर की उलटवासियों का प्रेरक समझना चाहिए। वस्तुतः संत साहित्य का प्रारंभिक बीज सिद्धों में ही मिलता है। कबीर ने जाति-पाँति का खंडन, बाह्याडंबरों का विरोध, गुरु का महत्त्व आदि बातें सिद्धों से ग्रहण की हैं।

नाथ साहित्य का भी परिवर्ती काव्य पर पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। कबीर आदि संत कवियों के काव्य में उपलब्ध गुरु की महत्ता, नारी निंदा, सदाचरण, इन्द्रिय निग्रह और उलटवासियों के विचित्र रूपक नाथ साहित्य के प्रभाव का बोध कराते हैं। कबीर द्वारा प्रयुक्त हठयोग की शब्दावली भी नाथ पंथ से ली गयी है।



नोट्स

सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, लौकिक साहित्य, गद्य साहित्य, जैन साहित्य तथा रासो साहित्य आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत आते हैं।

नोट

तथापि हिंदी के परवर्ती साहित्य को अनेक रूपों में इस साहित्य ने प्रभावित किया है। नवीन सामाजिक चेतना का सूत्रपात भी इसी साहित्य से हुआ है। क्योंकि जनता को पहली बार जाति और वर्ण के नाम पर शोषित किए जाने की बात समझ में आयी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न-

4. कौन अपनी अनुभूतिजनित तन्मयता को बड़े सहज भाव से अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य रखते थे?
(क) जैन (ख) नाथ
(ग) सिद्ध (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
5. ने जाति पाति का खंडन, बाहरी आडम्बरों का विरोध, गुरु का महत्त्व आदि बातें सिद्धों से ग्रहण की हैं।
(क) शुक्ल जी ने (ख) द्विवेदी जी (ग) गोरखनाथ (घ) कबीर
6. कबीर द्वारा प्रयुक्त हठयोग की शब्दावली भी से ली गयी है।
(क) सिद्ध पंथ (ख) जैन पंथ (ग) नाथ पंथ (घ) कबीर पंथ

7.2 आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत आने वाले कुछ प्रमुख साहित्य

7.2.1 आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत जैन साहित्य

आचार-शैली के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है। जैन-साधुओं ने रास को एक प्रभावशाली रचना-शैली का रूप दिया। जैन-तीर्थंकरों के जीवन-चरित्र तथा वैष्णव अवतारों की कथाएँ जैन-आदर्शों के आवरण में रास नाम से पद्यबद्ध की गई। अतः जैन-साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ बन गए। वीर गाथाओं में रास को ही रासो कहा गया है, किंतु उनकी विषय-भूमि जैन रास-ग्रंथों से भिन्न हो गई है।

आदिकालीन हिंदी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त परिचय

चंदनबालारास-पैंतीस छंदों का एक लघु खंडकाव्य है, जिसकी रचना 1200 ई. के लगभग आसगु नामक कवि ने जालौर में की थी।

श्रावकाचार-देवसेन नामक प्रसिद्ध आचार्य ने 933 ई. में इस काव्य की रचना की थी। ये एक अच्छे कवि तथा उच्च कोटि के चिंतक थे। इन्होंने अपभ्रंश में भी दब्ब-सहाव-पपास नामक काव्य लिखा था।

रोवंतगिरिरास-यह विजयसेन सूरि की काव्य-कृति है। 1231 ई. के लगभग लिखित इस काव्य में तीर्थंकर त्रिनाथ की प्रतिमा तथा खतगिरि तीर्थ का वर्णन है।

7.2.2 आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत नाथ साहित्य

राहुल जी ने नाथ-पंथ को सिद्धों की परंपरा का ही विकसित रूप माना है। इस पंथ के चलाने वाले मत्स्येंद्रनाथ (मछंदरनाथ) तथा गोरखनाथ माने गए हैं। द्विवेदी जी के अनुसार नाथ-पंथ नाथ-संप्रदाय के सिद्ध मत, सिद्ध-मार्ग, योग-मार्ग, योग-संप्रदाय, अवधूत-मत एवं अवधूत संप्रदाय नाम भी प्रसिद्ध है।

नाथ-साहित्य संक्षेप में-

गोरखनाथ-गोरखनाथ नाथ-साहित्य के आरंभकर्ता माने जाते हैं। वे सिद्ध मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य थे। किंतु उन्होंने सिद्धों के मार्ग का विरोध किया था। गोरखपंथी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे। गोरखनाथ से पहले

नोट

अनेक सिद्ध थे, जिन सबका उनके नाथ-पंथ में विलय हो गया था। गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में गुरु-महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मनःसाधना, कुंडलिनी-जागरण, शून्य-समाधि आदि का वर्णन किया है। गोरखनाथ ने हठ-योग का उपदेश दिया था। हठयोगियों के सिद्ध-सिद्धांत पद्धति ग्रंथ के अनुसार ह का अर्थ है 'सूर्य' तथा ठ का अर्थ है 'चंद्र'। इन दोनों के योग को ही हठ कहते हैं। गोरखनाथ ने ही षट्चक्रोंवाला योग-मार्ग हिंदी-साहित्य में चलाया था।



क्या आप जानते हैं नाथ पंथ को चलाने वाले मत्स्येंद्रनाथ माने गए हैं।

7.2.3 आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत रासो साहित्य

रासो काव्यों को देखने से पता चलता है कि उनके रचयिता जिस राजा के चरित्र का वर्णन करते थे, उसके उत्तराधिकारी राजगण अपने आश्रित अन्य कवियों से उसमें अपने चरित्र भी सम्मिलित करा देते थे। यही कारण है कि इन ग्रंथों में मध्यकालीन राजाओं का भी वर्णन मिलता है तथा भाषा में भी उत्तरवर्ती भाषा-रूपों की झलक पाई जाती है।

रासो-ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय-

पृथ्वीराज रासो के संस्करण-पृथ्वीराज रासो के चार संस्करण प्रसिद्ध हैं। सबसे बड़ा संस्करण वह है, जिसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी से हुआ है तथा जिसकी हस्तलिखित प्रतिमा उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है। सभा में 1584 ई. में लिखित प्रति के आधार पर रासो का संपादन कराया था।



टास्क पृथ्वीराज रासो पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

पृथ्वीराज रासो में वस्तु-वर्णन का भी आधिक्य है। इसमें कवि ने बड़ी तन्मयता के साथ नगरों, वनों, सरोवरों, किलों आदि का वर्णन किया है।

पृथ्वीराज रासो पिंगल शैली में लिखा गया है जो ब्रजभाषा का वह रूप है जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है। कवि ने तत्कालीन सभी प्रचलित शब्दों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है। शब्द-चयन रसानुकूल है, अतः वीर रस के चित्रणों में प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। जहाँ तक भाषा की शक्ति का प्रश्न है, कवि ने अभिधेय भाषा को भी पर्याप्त प्रभावशाली रूप दिया है। लगभग अड़सठ प्रकार के छंदों में लिखा गया यह महाकाव्य सभी दृष्टियों से आदिकाल की एक श्रेष्ठ कृति सिद्ध होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ-

7. पद्मावत विजयसेन सूरि की काव्य-कृति नहीं है।
8. गोरखनाथ सिद्ध मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य थे।
9. पृथ्वीराज रासो में वस्तु-वर्णन का भी आधिक्य है।

7.3 सारांश (Summary)

- आदिकालीन साहित्य जिसमें सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाथ साहित्य, लौकिक साहित्य, रासो साहित्य आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन सभी का प्रभाव भक्ति के लगभग सभी कवियों के साहित्य में दिखाई देता है।
- हिंदी के परवर्ती साहित्य को अनेक रूपों में इस साहित्य ने प्रभावित किया है। नवीन सामाजिक चेतना का सूत्रपात भी इसी साहित्य से हुआ है। क्योंकि जनता को पहली बार जाति और वर्ण के नाम पर शोषित किए जाने की बात समझ में आयी।

7.4 शब्दकोश (Keywords)

1. खंडन : अस्वीकार करना, असहमति जताना
2. सामाजिक चेतना : सामाजिक जागरूकता
3. हस्तलिखित : हाथ से लिखा हुआ।

7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आदिकालीन साहित्य का प्रारंभ और परवर्ती काव्य पर प्रभाव से क्या तात्पर्य है? वर्णन कीजिए।
2. आदिकालीन साहित्य के अंतर्गत आने वाले साहित्य को विस्तार से वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

- | | | |
|-------------|------------|------------|
| 1. भक्तिकाल | 2. कबीरदास | 3. सिद्धों |
| 4. (ग) | 5. (घ) | 6. (ग) |
| 7. असत्य | 8. सत्य | 9. सत्य |

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।
4. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।

नोट

इकाई-8 : पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) : भक्तिकालीन परिस्थितियाँ एवं भक्ति के उदय के कारण

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)

8.1.1 सीमांकन

8.1.2 परिवेश

8.1.3 भक्ति आंदोलन के उदय के कारण

8.2 सारांश (Summary)

8.3 शब्दकोश (Keywords)

8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- पूर्व मध्यकाल की परिस्थितियों को जानने में।
- भक्ति आंदोलन के उदय के कारण समझने में।
- सीमांकन के विषय को समझने में।
- परिवेश के विषय को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हिंदी-साहित्य के संदर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमें मुख्यतः भगवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति-आंदोलन का सूत्रपात हुआ था और उसका लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोक-प्रचलित भाषाएँ भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गई और कालांतर में भक्तिविषयक विपुल साहित्य की बाढ़-सी आ गई। परंतु यह भावना वैष्णव धर्म तक ही सीमित न थी—शैव, शाक्त आदि धर्मों के अतिरिक्त बौद्ध और जैन संप्रदाय भी इस प्रवाह से प्रभावित हुए बिना न रह सके। भक्तिकाल का विवेचन करने के पूर्व भक्ति-भावना की परंपरा और परिवेश का संक्षिप्त परिचय पा लेना विषय को बोधगम्य बनाने में सहायक होगा।

8.1 पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)

भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में भक्ति-मार्ग का विशिष्ट स्थान है, यद्यपि संहिता भाग के रचना-काल तक उसके अस्तित्व का कोई परिचय नहीं मिलता। वैदिक युग में यज्ञ अथवा कर्मकांड के माध्यम से धर्मानुष्ठान हुआ

नोट

करते थे। आगे लोग प्रायः प्राकृतिक वस्तुओं अथवा घटनाओं के मूल में किसी देवता की कल्पना कर लेते थे और उसे प्रसन्न रखने के लिए यज्ञादि का आयोजन करते थे। विनय अथवा प्रार्थना भी उनके दैनिक जीवन की उल्लासमयी अभिव्यक्ति थी। उनका ध्यान मुख्यतः ऐहिक सुखों की प्राप्ति कर केंद्रित था और वे अंतःकरण की साधना की अपेक्षा बाह्य विधानों का अनुसरण करने की ओर अधिक प्रवृत्त रहते थे। फिर भी, शुभाशुभ परिणामों में उनका विश्वास था, जिस कारण उनके यज्ञादि कर्मकांड श्रद्धा से अनुप्राणित रहते थे। श्रद्धाविहीन यज्ञ का कोई अर्थ न था। इसी से श्रद्धा-मूलक भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और आगे चलकर बहुदेववाद भी एकदेववाद में परिणत हो चला। भक्त के लिए यह स्वाभाविक हो गया कि वह बिखरी हुई शक्तियों में सामंजस्य लाकर अपनी दृष्टि किसी एक में निविष्ट करे। फलस्वरूप बहुदेवों की कल्पना सिमटकर धीरे-धीरे एक में ही समाहित होने लगी और कहा जाने लगा कि विद्वान् लोग उसी (सत्) को इंद्र, मित्र, वरुण या अग्नि के नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार सार्वभौम मौलिक एकता के प्रतिपादन द्वारा परमात्म-तत्त्व की प्रतिष्ठा हो गई। प्राकृतिक शक्तियों के दैवीकरण के बाद देवताओं का मानवीकरण होने लगा, जिसकी परिणति अवतारवाद में हुई। हिंसक तथा कठोर वृत्तियों का स्थान क्रमशः कोमल वृत्तियाँ लेने लगीं, जिसका प्रभाव भक्ति-साधना की विधियों पर पड़ना स्वाभाविक था। श्रमण-संस्कृति द्वारा इस प्रवृत्ति को पर्याप्त प्रश्रय प्रोत्साहन मिला।

आर्यों की अनेक सभाएँ तथा परिषदें हुआ करती थीं जिनमें उपस्थित किए गए तर्क-वितर्क एवं दार्शनिक विवेचन के परिणामस्वरूप 'ब्राह्मण', 'आरण्यक' तथा 'उपनिषद्' नामक भागों की रचना हुई। जीवात्मा तथा अव्यक्त प्रकृति की भावना का उदय संभवतः इसी अवधि में हुआ। कर्मफल तथा जन्मांतरवाद की कल्पना के आधार पर कर्म-बंधन से जीवात्मा को उन्मुक्त करने के उपाय सोचे जाने लगे। कर्म-जाल से पृथक् रहकर परमात्म-चिंतन में तल्लीन रहने के लिए तपादि की व्याख्या की गई वैदिकोपासना ध्यान-योग के रूप में परिणत हो चली, जिससे श्रद्धा-भक्ति का द्वार उन्मुक्त हो गया। मोनियर विलियम्स के अनुसार 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज्' से की जा सकती है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भक्ति-भावना आर्यों के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों के फलस्वरूप क्रमशः श्रद्धा-उपासना से विकसित होकर उपास्य भगवान् के ऐश्वर्य में भाग लेना (भज् = भाग लेना) जैसे व्यापक भाव में परिणत हुई। वैसे 'भक्ति' का सर्वप्रथम उल्लेख 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्' (6/33) में मिलता है। यह भी उल्लेखनीय है कि आर्यों के भारत आने पर उन्हें यहाँ की यक्ष, किन्नर, गंधर्व, असुर, ब्राह्म, विद्याधर आदि जातियों की नागर संस्कृति का परिचय मिला था। आर्य लोग मुख्यतः सैनिक जीवन के अभ्यर्थी थे और उनका जातीय जीवन ग्रामीण संस्कृति पर आधारित था। इन दोनों के मिलन और पारस्परिक आदान-प्रदान से भारतीय संस्कृति का विकास हुआ, जिसकी छत्रछाया में भक्ति-परंपरा का बीज विकसित हुआ।

वैदिक भक्ति-परंपरा के समानांतर दक्षिण भारत में द्रविड़-संस्कृतिगर्भित पृथक् भक्ति-परंपरा का सूत्रपात हो चुका था। यह परंपरा ईसा-पूर्व कई शताब्दियों से चली आ रही थी, जिसमें शरणागति और समर्पण की भावना प्रबल रूप में पाई जाती थी और जो कालांतर में दक्षिणात्य आचार्यों द्वारा उत्तर भारत में भी लोकप्रिय बनी। वास्तव में ईस्वी सन् के प्रारंभिक काल में ही उत्तर और दक्षिण की दोनों परंपराओं का मिलन हो गया था, जिसका निदर्शन आडियारों तथा अडियारों के भक्ति-साहित्य में सुलभ है। इसके अंतर्गत 'पूजा' को भक्ति का मुख्य साधन माना गया है, जिसे 'शिव' की भाँति तमिल भाषा का शब्द ठहराया गया है। 'मायोन' तथा 'तिरुमाल' को भी विष्णु का पर्याय बतलाया जाता है। स्वयं 'भागवत' को भी कन्नड़ प्रदेश में रचित कहा गया है। यह ग्रंथ मध्यकालीन भक्ति-परंपरा का मुख्य प्रेरणा-स्रोत बना।

भक्ति-भावना के संदर्भ में पांचरात्र भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं। उनका मुख्य उद्देश्य भक्ति-मार्ग के साधन निरूपण करना रहा है। संहिताओं ने देवालयों के निर्माण, उनमें आराध्य देवी की प्रतिष्ठा और विधिवत् पूजन-अर्चन की व्यवस्था दी थी। इससे अवतारवाद को प्रचुर प्रश्रय मिला। ईसाई मत और इस्लाम धर्म की देन के रूप में भक्ति की स्थापना बहुत पहले ही अप्रमाणित हो चुकी है। इधर श्रमण-संस्कृति और साहित्य के आधुनिक विद्वानों ने भी परंपरा से अपना प्राचीन संबंध-सूत्र दिखलाने के यत्न किए हैं, जिन्हें किसी एक ही उत्स के भिन्न-भिन्न स्रोत समझा जा सकता है। फिर भी, इनमें रोगात्मक शरणागति और समर्पण के वैसे विधितापूर्ण भाव विकसित नहीं हो पाए जिनके दर्शन एतद् विषयक साहित्य में अन्यत्र सुलभ हैं।

8.1.1 सीमांकन

नोट

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने समय तक के साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर भक्ति-काल का निर्धारण 1318 से 1643 ई. तक किया है। न तो आदिकाल में परिगणित सिद्ध, नाथ और जैन-साहित्य में विद्यमान भक्ति-तत्त्व के आधार पर इस अवधि का विस्तार उचित है और न रीतिकाल में स्फुट रूप में रचित भक्तिपरक छंदों के आधार पर काल-विस्तार तर्कसंगत। शुक्ल जी की स्थापना में हेर-फेर की अधिक गुंजाइश तक नहीं दिखाई देती, जब तक वैसी सामग्री क्रमबद्ध रूप में न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध न हो जाए। फिर भी, भक्ति-साहित्य में उन वैष्णवेतर रचनाओं को सम्मिलित करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए जो विषयवस्तु की दृष्टि से भी उक्त सीमा के अनुकूल पड़ती है। भक्तिकाव्य की परंपरा परवर्ती काल तक प्रवाहित रही है, किंतु उसमें जितनी मात्रा अनुकरण की रहती आयी है, उतनी भावना के नवोन्मेष की नहीं। इसलिए जब तक ऐसी सामग्री उपलब्ध न हो कि पुनर्विचार की आवश्यकता पड़े, तब तक सामान्यतः शुक्ल जी की स्थापना को चलते रहने देना चाहिए। फिर भी, अध्ययन की सुविधा के लिए भक्तिकाल को चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक मानना उचित होगा, क्योंकि आदिकाल की रचना-प्रवृत्तियाँ चौदहवीं शती के मध्य तक पर्याप्त बलवती रही थीं।

8.1.2 परिवेश

राजनीतिक स्थिति—पूर्व-मध्यकाल का आरंभ दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1351) के राज्यकाल में हुआ। उत्तर से दक्षिण तक के अपने राज्य-विस्तार को ध्यान में रखकर उसने दिल्ली की अपेक्षा देवगिरि को अपनी राजधानी बनाने का यत्न किया और उसका नाम दौलताबाद रखना चाहा। इस प्रयास में दिल्ली-प्रदेश एकदम उजाड़ हो गया। उसने एक बार तांबे के सिक्के चलाए और कई बार सुदूर चीन पर आक्रमण की योजना बनाई। मिन्न के खलीफा से उसने अपनी राज्यसत्ता के लिए धार्मिक स्वीकृति भी प्राप्त की। इन-जैसी बातों के अतिरिक्त उसके अपने विशिष्ट गुण भी थे; जिनके कारण वह कवि, विद्याव्यसनी तथा पक्षपात-रहित सुल्तान बन सका। उसके यहाँ विद्वानों को संरक्षण भी मिलता था। हिंदू प्रजा के प्रति वह उदारमना था, किंतु उसके उत्तराधिकारी फीरोज़ तुगलक में धार्मिक सहिष्णुता का अभाव था, इसलिए वह हिंदुओं के प्रति पक्षपात-रहित नहीं रह सका। उसमें वैसी योग्यता भी न थी। फलस्वरूप अवसर पाकर कई सूबेदारों ने विद्रोह कर दिया और दिल्ली-सल्तनत में बिखराव उत्पन्न हो गया। उसका उत्तराधिकारी 'जौनासाहि' (जूनाशाह) था, जिसका उल्लेख मुल्ला दाऊद ने 'चंदायन' में किया है। परवर्ती सुल्तानों में से कोई बिगड़ती हुई स्थिति को संभाल न सका और सुल्तान महमूद शाह की मृत्यु के उपरांत 1412 ई. तुगलक-वंश का आधिपत्य समाप्त हो गया। इसके बाद खिज़्र खाँ ने दिल्ली पर अधिकार कर सैयद-वंश का शासन स्थापित किया जो 1451 ई. तक चलता रहा। इस वंश के चार सुल्तानों में से किसी का भी नाम उल्लेखनीय नहीं है, इनसे अधिक योग्य लोदी-वंश के सुल्तान सिद्ध हुए, जिनमें से कई ने भीषण युद्धों में भाग लिया। अंतिम सुल्तान इब्राहिम लोदी (1487-1526) को शक्तिशाली मुगलों का सामना करना पड़ा और लोदी वंश की सल्तनत जाती रही। लोदी वंश के शासन-काल में ही केंद्रीय शासन शिथिल पड़ चुका था और मालवा आदि स्वतंत्र सूबे बनने लगे थे।

मालवा—मालवा विक्रम की दसवीं शताब्दी के लगभग प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था, जबकि यह परमार राजपूतों के अधीन आया था। राजा भोज के समय इसकी ख्याति और अधिक बढ़ गई। सुल्तान इल्तुतमिश द्वारा 1235 ई. में आक्रमण किए जाने पर महाकाल के मंदिर के ध्वस्त हो जाने के बाद यह श्रीहीन हो चला। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने 1310 ई. में इसे अपने शासन में ले लिया। 1401 ई. में मुहम्मद गोरी के वंशज दिलावर खाँ ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर धार नगरी को अपनी राजधानी बना लिया, परंतु उसके उत्तराधिकारी पुत्र अलप खाँ (हुशंगशाह) ने अपनी राजधानी मांडू में स्थापित की। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका वजीर महमूद खिलजी यहाँ का स्वामी बना। अपनी योग्यता से उसने अपने कई पड़ोसी राज्यों को पराजित कर दिया, परंतु उसके उत्तराधिकारी अपनी दुर्बलता के कारण मालवा की रक्षा करने में असमर्थ रहे। अंततोगत्वा गुजरात के बहादुरशाह ने मालवा को अपने अधीन कर लिया। बाद में मालवा दिल्ली केंद्र के अधीन चला गया और शेरशाह ने शुजात खाँ को यहाँ का शासक नियुक्त कर दिया। इसी का पुत्र मलिक वायाजी 'बाज बहादुर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसकी प्रेमिका रूपमती बतलाई जाती है। 1562 ई. में सम्राट अकबर ने इसे अपने राज्य में मिला लिया।

नोट

गुजरात—अपनी समृद्धि और सोमनाथ मंदिर के लिए गुजरात सुप्रसिद्ध रहता आया है। महमूद गजनवी ने संभवतः इसी से आकृष्ट होकर 1025 ई. में अफगानिस्तान से आकर यहाँ लूटपाट मचा दी थी। परंतु बहुत समय तक इस पर किसी का स्थायी आधिपत्य बना न रह सका। 1297 ई. में अलाउद्दीन खिलजी द्वारा इसे अपने शासनांतर्गत लिए जाने पर यहाँ दिल्ली द्वारा नियुक्त शासकों का शासन चलने लगा था। 1401 ई. में सूबेदार जफर खाँ ने तैमूरलंग द्वारा आक्रमण किए जाने पर अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। परंतु यहाँ का वास्तविक शासक पहले-पहल अहमदशाह बना, जिसने अहमदाबाद नगर की स्थापना की। वह कट्टर धर्मांध था, उसने हिंदुओं का धर्म-परिवर्तन तक कराया। फिर भी, उसकी प्रसिद्धि न्यायप्रिय शासक के रूप में रही है। उसके उत्तराधिकारियों में उसका पोता अहमदशाह (महमूद बेघरा) बड़ा प्रसिद्ध हुआ। कहा जाता है कि वह बड़ा पेटू था। जलपान के नाम पर वह एक प्याला शहद, एक प्याला घी और सौ-डेढ़ सौ केले ले लिया करता था। उसने 1507 ई. में तुर्कों की सहायता से पुर्तगालियों के विरुद्ध एक सेना समुद्र के पश्चिमी तट पर भेजी थी। गुजरात के शासकों में बहादुरशाह (1526-1539) भी प्रसिद्ध है, जिसने कई युद्धों में वीरता प्रदर्शित थी। कालांतर में आपसी वैमनस्य बहुत बढ़ गया और अंततोगत्वा अकबर ने गुजरात को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

जौनपुर—जौनपुर को फीरोजशाह तुगलक ने अपने चचेरे भाई जूनाशाह के स्मारक-स्वरूप गोमती नदी के किनारे बसाया था। फीरोजशाह की मृत्यु होने पर ख्वाजाजहाँ वहाँ का शासक नियुक्त हुआ। महमूद तुगलक ने उसे 'मलिक-उस-शर्क' की पदवी प्रदान की। इससे प्रोत्साहन पाकर उसने कई प्रमुख केंद्रों पर आक्रमण कर दिया। अंत में उसने विद्रोह कर अपने को 'अलावक-ए-आजम' कहना आरंभ कर दिया। शम्सुद्दीन इब्राहीम शाह शर्की उससे भी अधिक सफल शासक सिद्ध हुआ। महमूद तुगलक तक ने उससे सहायता की याचना की थी। वह कला और साहित्य का बड़ा अनुरागी था। हुसैन शाह शर्की भी यहाँ एक शासक हुआ, जिसने दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध परास्त होकर बिहार में आश्रय ग्रहण किया और फिर बंगाल जाकर सुल्तान हुसैन शाह की शरण ली। 'मृगावती' के सूफी कवि कुतुबन का वह आश्रयदाता भी रहा। इसके बाद जौनपुर के कई सूफी आश्रयविहीन होकर मालवा से बंगाल तक फैल गए। विद्यापति ने 'कीर्तिलता' में जौनपुर का रोचक वर्णन किया है।

बंगाल—दिल्ली से दूर होने के कारण कई बार आक्रमण करके भी मुस्लिम आक्रमणकारी बंगाल में टिक न सके थे। समय-समय पर केंद्र के प्रति यहाँ विद्रोहाग्नि भड़कती रहती थी। शासकों द्वारा अपने को स्वतंत्र घोषित किए जाने की दशा में उनका प्रजा से मिलकर रहना आवश्यक हो जाता है; फलस्वरूप इस प्रदेश में हिंदू-मुस्लिम-वैमनस्य फैलने के अवसर कम ही आ पाते थे। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के शासन-काल में कभी-कभी भेंट दिए जाने पर भी अपने यहाँ स्वतंत्र सुल्तान-जैसा व्यवहार करते थे। अलाउद्दीन हुसैन शाह (1493-1519) अपने शासन-काल में इतना लोकप्रिय हुआ कि भावी आधिपत्य जमाने में उसके वंशजों को कोई कठिनाई नहीं हुई। संगठनकर्ता के रूप में वह बहुत सफल रहा, जनता के लिए उसने कई संस्थाएँ स्थापित कीं तथा विद्वानों और धार्मिक पुरुषों को सहायता देनी आरंभ की। 'सत्य पीर' संप्रदाय चलाने का भी श्रेय उसे प्राप्त हुआ जिसका प्रधान उद्देश्य हिंदू-मुस्लिम-एकता स्थापित करना था। उसका पुत्र नुसरत शाह भी सफल शासक रहा, किंतु हुसैनशाही शासकों के बाद बंगाल में कोई टिक न सका। मुगलों पर विजय प्राप्त करने के बाद शेरशाह ने इस प्रदेश पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया।

बहमनी राज्य—मुहम्मद बिन तुगलक के शासन-काल में भड़की दक्षिण की विद्रोहाग्नि का एक परिणाम इस्माइल मख के सुल्तान बनने में लक्षित हुआ। शांत प्रकृति का होने के कारण उसने हसन गंगू के पक्ष में पद-त्याग कर दिया। हसन गंगू ने 'जफर खाँ' की पदवी ग्रहण कर राज्य की गद्दी संभाली और अब्दुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमनशाह कहलाकर दौलताबाद का सुल्तान बन बैठा। उसने अपनी राजधानी दौलताबाद से हटाकर गुलबर्गा में स्थापित की। उसके उत्तराधिकारियों में फीरोजशाह सबसे योग्य प्रमाणित हुआ। उसने साहित्य और विद्वानों को संरक्षण देकर कीर्ति-लाभ किया। उसके बाद उसके भाई अहमदशाह ने बीदर नगर की नींव डालकर 'वली' की उपाधि ग्रहण की और तदनंतर अपने पुत्र जाफर खाँ को राज्य का दायित्व सौंप दिया, जो अलाउद्दीन अहमदशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद हुमायूँ और निजामशाह गद्दीनशीन हुए। 'कदम राव व पदम' प्रेमगाथा के अनुसार अहमदशाह वहाँ 'बहमन वली' हो गए हैं। निजामशाह की अवस्था राज्यारोहण के अवसर पर केवल आठ वर्ष की थी। उसके अभिभावकों में महमूद गावाँ का नाम भी लिया जाता है। उसकी मृत्यु के बाद उसका भाई

नोट

मुहम्मदशाह शासक बना और उसने शत्रुओं का दमन कर राज्य को समृद्ध बनाने में योगदान दिया। कालांतर में उसे षड्यंत्र द्वारा मार डाला गया। 1518 ई. में यह राज्य बिखरकर नष्ट हो गया और पाँच स्वतंत्र मुस्लिम राज्यों की स्थापना हुई—बरार का इमादशाही, बीजापुर का आदिलशाही, अहमदनगर का निजामशाही, गोलकुंडा का कुतुबशाही और बीदर का वरीदशाही। अंत में ये सभी मुगल-साम्राज्य में अंतर्भुक्त हो गए। आदिलशाही और कुतुबशाही सुल्तान साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यों में रुचि लेकर यश के भागी बने।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. में सूबेदार जफर खाँ ने तैमूरलंग द्वारा आक्रमण किए जाने पर अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया।
2. 'कदम राव व पदम' प्रेमगाथा के अनुसार अहमदशाह हो गए हैं।
3. और सुल्तान साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यों में रुचि लेकर यश के भागी बने।

सूर-वंश—शेरशाह द्वारा स्थापित सूर-वंश का अपना पृथक् महत्त्व है। बचपन में शेरशाह का नाम फरीद खान था। उसके पिता सासाराम (बिहार) के जागीरदार थे, किंतु उसकी शिक्षा-दीक्षा जौनपुर में हुई। उसे एक बार शेर मारने के कारण 'शेर खाँ' की पदवी मिल गई। फिर बाबर के संपर्क में आकर उसने बंगाल जीतने में उसे बड़ी सहायता पहुँचाई। बाबर की मृत्यु के बाद उसने गौड़ देश को अधीन कर लिया, पठानों की सहायता से चौसा के पास हुमायूँ को हराया और 'शेरशाह' की उपाधि ग्रहण कर ली। बाद में कन्नौज के युद्ध में उसने हुमायूँ को फिर से हरा दिया, जिससे हुमायूँ को वर्षों तक फारस में पनाह लेनी पड़ी। शेरशाह ने शासन-सुधार की व्यवस्था इस रीति से की कि उसने सम्राट अकबर तक का पथ-प्रदर्शन किया। शेरशाह की मृत्यु 1554 ई. में हुई। उसके बाद उसका पुत्र जलाल-खाँ (सलीमशाह) उसका उत्तराधिकारी बना। उसे कई विद्रोहों का सामना करना पड़ा और 1558 ई. में उसका देहावसान हो गया। हुमायूँ ने बिगड़ती हुई दशा का लाभ उठाकर उसी वर्ष भारत पर आक्रमण कर लाहौर को हस्तगत कर लिया। सूर-वंश के अंतिम सुल्तान सिकंदरशाह के सरहिंद में हार जाने पर हुमायूँ बादशाह बन बैठा।

मुगल-वंश—तैमूर लंग की पाँचवीं पीढ़ी में उत्पन्न जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर वास्तव में तुर्क-वंशी था, मुगल नहीं। मातृकुल के नाते वह चंगेज खाँ का सगा-संबंधी हो सकता था, परंतु मुगलों के प्रति उसमें सद्भाव का अभाव-सा था। संयोगवश वह उन सम्राटों का पूर्व-पुरुष बन गया जिन्हें 'मुगल' कहकर स्मरण किया जाता है। उसके पिता फरगाना (रूसी तुर्किस्तान) के एक छोटे-से राज्य के अधिपति थे। उनकी मृत्यु के समय बाबर बारह वर्ष का बालक था। इसी अवस्था में वह उत्तराधिकारी बना। अपने शत्रुओं का वह दृढ़तापूर्वक सामना करता रहा और इसी बीच उसने समरकंद को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। उजबेग अमीरों द्वारा अपदस्थ किए जाने पर वह भारत की ओर उन्मुख हुआ और काबुल को जीतकर समरकंद को भी अधिकृत करने की कोशिश की, किंतु असफलता ही उसके हाथ लगी। छोटे-मोटे आक्रमणों द्वारा वह भारत की स्थिति का अध्ययन करता रहा। दिलावर खाँ का आमंत्रण पाकर उसने 1526 ई. में पानीपत-युद्ध में विजय प्राप्त कर ली। प्रसिद्ध है कि सैयदपुरवाली लड़ाई के अवसर पर गुरु नानक देव पकड़े जाकर उसके सम्मुख उपस्थित किए गए थे। दूसरे ही वर्ष राणा सांगा को पराजित कर उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ बना ली और चंदेरी दुर्ग पर कब्जा कर लिया। इसके बाद घाघरावाली लड़ाई में पठानों को पराजित कर उसने अपनी विजय-पताका फहराई। उसने राज्य-व्यवस्था को सुधारने की योजना भी बनानी चाही, किंतु शाहजादे हुमायूँ की रुग्णता के कारण उसकी मनोकामना अधूरी रह गई। कहते हैं कि वह रोग-शय्या की तीन बार परिक्रमा कर स्वयं रोगी बन गया और शाहजादा तीन दिनों के भीतर ही निरोग होने लगा। फिर बाबर उठ न सका। उसकी मृत्यु के तीसरे दिन हुमायूँ 1530 ई. में बादशाह बन गया। बाबर ने 'बाबरनामा' लिखकर अपनी कुशल लेखनी का परिचय दिया है। यह मात्र आत्मचरित नहीं, तत्कालीन परिस्थिति और वातावरण का परिचायक ग्रंथ भी है। बाबर द्वारा लिखित एक दीवान का भी पता चलता है जिसमें उसकी काव्य-प्रतिभा की चमक है।

नोट

कहते हैं कि बाबर ने हुमायूँ से वचन ले लिया था कि वह अपने परिवार के प्रति सद्भावनापूर्ण निष्ठा रखेगा, जिसका पालन वह आजीवन करता रहा। परंतु इसका अनुकूल परिणाम नहीं हुआ। सेना के सिपाहियों में भी कलह रहने लगी। इस स्थिति का लाभ बाहरी शत्रुओं ने उठाया। गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने उसे युद्ध में घसीट लिया और बाद में शेरशाह द्वारा कन्नौज की लड़ाई में पराजित होकर वह पोंरस भाग गया। शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसने अपने राज्य को पुनः अधिकार में ले लिया। 1566 ई. में पुस्तकालय की सीढ़ियों से उतरते समय अचानक उसके कानों में अजान की आवाज पड़ी। झुकते ही उसके पाँव फिसल गए और वह नीचे गिर पड़ा। यह आघात प्राणांतक सिद्ध हुआ। हुमायूँ की मृत्यु के सत्रहवें दिन उसके पुत्र जलालुद्दीन के नाम 'खुतबा' पढ़ दिया गया। हुमायूँ न केवल साहित्यकारों का सम्मान करता था, अपितु स्वयं भी काव्य रचना करता था। फिर भी, वह उतना व्यवहारकुशल न था।

राज्य-भार ग्रहण करते समय अकबर तेरह वर्ष का बालक था। उसका बचपन बैरम खाँ के संरक्षण में व्यतीत हुआ, जिसके समक्ष जौनपुर ही नहीं, विद्रोही पठानों तक को झुकना पड़ा। कुछ ही दिनों में अकबर ने बैरम खाँ को दायित्व-मुक्त कर दिया और शासन की बागडोर स्वयं संभाल ली। बंगाल, बिहार और गुजरात के विद्रोह को दबाकर उसने कश्मीर पर भी अपना झंडा फहरा दिया। साथ ही चित्तौड़, कालिंजर और गोंडवाना को सफल नहीं होने दिया। फतेहपुर सीकरी के किले का निर्माण भी इसी काल में हुआ। राज्य-विस्तार और आंतरिक शांति और सुव्यवस्था के लिए वह सदा सचेष्ट रहा। देश को समृद्ध बनाने के साथ ही वह सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के लिए भी यत्नशील रहा। उसके प्रमुख दरबारी 'नवरत्न' के रूप में प्रसिद्ध थे जिनमें फैजी, अबुलफजल, बीरबल, बदायूँनी, तानसेन, रहीम आदि के नाम लिए जाते हैं। इनके सहयोग से उसके राज्य की ख्याति दूर-दूर तक फैली। वह शिक्षित न होकर भी उदार, सहृदय और व्यवहार-कुशल था। उसने कला, संगीत, साहित्य और संस्कृति को यथेष्ट प्रश्रय तथा संरक्षण दिया। उसका राज्य-काल 1605 ई. तक रहा।

अकबर का उत्तराधिकारी जहाँगीर बना, जिसका बचपन का नाम सलीम था। उसने युवराज-काल में पिता के विरुद्ध विद्रोह करना चाहा था, किंतु सफल न हो सका। वह न्यायप्रिय था और प्रजा के दुःख-सुख में उसकी रुचि थी। आगरा के किले की शाह बुर्ज और यमुना-तट पर स्थित किसी प्रस्तर-स्तंभ के बीच उसने 'इंसाफ की जंजीर' बंधवा दी थी, जिसे बजाकर प्रजा बादशाह का ध्यान आकर्षित कर फरियाद कर सकती थी। जहाँगीर ने शेर अफगान की हत्या कराके उसकी पत्नी मेहरुन्निसा को अपने हरम में रख लिया, जो आगे चलकर नूरजहाँ के नाम से विख्यात हुई। वह शासन-व्यवस्था में भी भाग लेती थी। जहाँगीर को बंगाल, मेवाड़ और दक्षिण की ओर युद्ध का अभियान करना पड़ा तथा कांगड़ा पर विजय प्राप्त करने में उसे सफलता मिली। 1627 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। नूरजहाँ अपने जामाता शहरयार को राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी, किंतु बादशाह के मरने का समाचार पाकर शाहजहाँ दक्षिण से राजधानी की ओर चल पड़ा और अपने सभी शत्रुओं को परास्त कर 1628 ई. में गद्दीनशीन हो गया।

शासन-सूत्र संभालने के बाद शाहजहाँ को बुंदेलों का सामना करना पड़ा और ख्वाँजहाँ लोधी को राज-मार्ग से हटाना पड़ा। उसने दक्षिण की कई सल्तनतों को जीतकर अपने अधीन किया, जिसमें उसे औरंगजेब से भरपूर सहायता मिली। परंतु कंधार तक आधिपत्य स्थापित करने में उसे सफलता न मिल सकी और दाराशिकोह तथा उसकी सेना अपने अभियान में विफल रही। दक्षिण में सफलता-प्राप्ति से उत्साहित होकर औरंगजेब दाराशिकोह के प्रति द्वेष-भाव रखने लगा था। दारा का हिंदुओं के प्रति सद्भाव भी उसे पसंद न था। अपने मार्ग की बाधा समझकर महत्वाकांक्षी औरंगजेब ने क्रमशः अपने सभी भाइयों का अंत कर डाला और 1658 ई. में शाहजहाँ को बंदी बना लिया। अपनी प्यारी बेगम मुमताज महल की मृत्यु के बाद शाहजहाँ ने यमुना किनारे 'ताजमहल' का निर्माण करवाया था। दारा की मृत्यु के उपरांत वह खिन्न रहने लगा था और पुत्री जहाँनारा ही उसके स्नेहाकर्षण का केंद्र रह गई थी। उसका कला और साहित्य-प्रेम प्रसिद्ध है, साथ ही वह शूरवीर और कार्यकुशल भी कम न था।



टास्क

सूरवंश तथा मुगलवंश दोनों वंशों के विषय में विस्तार से उल्लेख कीजिए।

नोट

निष्कर्ष—इस प्रकार भारत के राजनीतिक क्षेत्र में सन् 1343 से 1643 तक की अवधि में दो प्रमुख मुस्लिम वंशों—पठान वंश और मुगल वंश—का आधिपत्य बना रहा। इनमें लोदी, सैयद और तुगलक वंशों के सुल्तान विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इस काल में ऐसे वंशों के व्यक्ति भी समय-समय पर होते आए, जिन्हें किसी-न-किसी विद्रोह के फलस्वरूप अधिकार प्राप्त करने के न्यूनाधिक अवसर प्राप्त होते रहे। मुहम्मद बिन तुगलक को राज्य-विस्तार के कारण अपनी राजधानी उत्तर से दक्षिण की ओर ले जाने की आवश्यकता अनुभव हुई और योग्य कर्मचारियों के अभाव में उसे यदा-कदा विदेशियों तक से सहयोग एवं सहायता लेनी पड़ी। फिर भी, वह अपने उद्देश्य में अधिक सफल नहीं हो पाया। फीरोजशाह ने सुव्यवस्था को ध्यान में रखकर जागीर-प्रथा को पुनः प्रचलित किया। अपने साम्राज्य का क्षेत्रीय विभाजन कर उसने प्रत्येक क्षेत्र में कई जिले स्थापित किए और उन्हें राज्य-कर्मचारियों को सौंप दिया। परंतु न्याय-व्यवस्था 'कुरान' और 'हदीस' पर ही अवलंबित रही। इन दोनों सुल्तानों ने सैन्य शक्ति की वृद्धि पर ध्यान रखते हुए उसका संचालन-सूत्र अपने हाथ में रखा।



क्या आप जानते हैं बाबर ने 'बाबरनामा' लिखकर अपनी कुशल लेखनी का परिचय दिया है। यह मात्र आत्मचरित नहीं, तत्कालीन परिस्थिति और वातावरण का परिचायक ग्रंथ भी है।

मुगल बादशाह ने पूर्ववर्ती सुल्तानों की शासकीय कमियों से सजग होकर उनसे अपना बचाव किया और शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया। बाबर की योग्यता और सजगता ने सफल बनने में उसे पर्याप्त सहायता पहुँचाई। वैसे मुगलों में अकबर का राज्य-काल सभी दृष्टियों से सर्वोपरि रहा और उसे अभीष्ट को पाने में बहुत-कुछ सफलता भी मिली। उसने भरसक पक्षपात-रहित बने रहने का प्रयत्न किया। उसके शासन-काल में नागरिकों को सेना की मनसबदारी पाने तक की छूट सुलभ थी। फौजदारी मुकदमों का फैसला काजी लोग किया करते थे, किंतु न्याय का सर्वोच्च अधिकार स्वयं उसकी सत्ता में निहित था। उसकी सेना तत्कालीन सभी उपकरणों से युक्त थी। सम्राट अपने अधिकार का दुरुपयोग कभी नहीं करता था। उसने शेरशाह की योजना से भी लाभ उठाया था। जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी बहुत-कुछ अकबर का अनुसरण किया। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा प्रस्तुत की गई और शेरशाह द्वारा पुष्ट की गई सैन्य योजना तथा यातायात की सुव्यवस्था को अकबर ने भी किसी-न-किसी रूप में अपना लिया।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

- किसका सहयोग पाकर बाबर ने 1526 ई. में पानीपत-युद्ध में विजय प्राप्त कर ली।
(क) खिज़्र खाँ (ख) जफर खाँ (ग) जलाल खाँ (घ) दिलावर खाँ
- राज्य-भार ग्रहण करते समय तेरह वर्ष का था।
(क) अकबर (ख) अहमदशाह (ग) फीरोजशाह (घ) फरीद खाँ
- में सफलता-प्राप्ति से उत्साहित होकर औरंगजेब दारा शिकोह के प्रति द्वेष-भाव रखने लगा।
(क) पूर्वी (ख) दक्षिण (ग) उत्तरी (घ) पूर्वी

मुहम्मद बिन तुगलक ने अपने राज्य-काल में दोआब-क्षेत्र में कर-वृद्धि लागू करके जनता पर अतिरिक्त भार लाद दिया था। नए सिक्के चलाकर उसने जनता के प्रति उदार भाव का प्रदर्शन करना चाहा, किंतु राज-कोष पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा और असफलता ही हाथ लगी। फीरोजशाह ने कर-नीति में कुछ संशोधन अवश्य किया, किंतु उसकी धार्मिक कट्टरता ने उसे अधिक सफल नहीं होने दिया। शेरशाह द्वारा खेतों को नापकर युक्तिसंगत नियमों द्वारा मालगुजारी का निर्धारण किया जाना, कर लगाते समय सावधानी बरतना और पक्षपात-रहित होकर कर की वसूली करना उसकी सफलता में सहायक बने। अकबर ने टोडरमल की सहायता से भू-व्यवस्था में आवश्यक

नोट

संशोधन किए और ऐसी व्यवस्था ला दी कि वह नई लगने के साथ ही लोकप्रिय भी बन गई। राज्य-कर के रूप में पूरी आय का तृतीयांश लिया जाने लगा और दसवर्षीय योजना के अनुसार लगान की सलाह वसूली की जाने लगी। जजिया और तीर्थ-कर उठा दिए गए, जिसका अमुस्लिम जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अकबर के शासन-काल में तौबे, चाँदी और सोने के सिक्कों का प्रचलन हुआ। चाँदीवाला सिक्का शेरशाह के समय से ही 'रुपया' कहा जाने लगा था। टकसालों का सुधार अकबर के शासन-काल में ही संभव हुआ और नामादि का अंकन सुरुचिपूर्ण कलात्मक ढंग से किया जाने लगा। कहा जाता है कि 1630 ई. में अकाल पड़ने पर शाहजहाँ ने अहमदाबाद और बुरहानपुर-जैसे कई नगरों में लंगर की व्यवस्था कर दी थी और प्रत्येक सोमवार को वह दीन-दुखियों में पाँच हजार रुपये का वितरण किया करता था। बिना समझे-बूझे लगान की रकम बढ़ा देने के कारण उसने दीवान सादुल्ला खाँ को बुरी तरह फटकारा था और कर वसूल करने वाले फौजदार को पदच्युत कर दिया था।

सामाजिक स्थिति—भारतीय समाज जिन तत्त्वों के ताने-बाने से निर्मित हुआ है, उनमें वर्णों और जातियों का विशिष्ट स्थान है। समय-समय पर कितनी ही मानव-मंडलियाँ इस देश में आती रहीं जिनमें अपने-अपने धर्म-विश्वासों, रीति-रस्मों और आचार-विचार-पद्धतियों के संस्कार तथा अभ्यास थे। फलस्वरूप विजित और विजेता में किसी-न-किसी कारण संघर्ष विद्यमान रहता था, परंतु कालांतर में उनमें सामंजस्य की भावना और समन्वय की चेतना लक्षित होने लगी। इतिहास के लिए यह कोई नई बात नहीं है। विजातीय तत्त्वों को पचा लेना सरल न था, फलस्वरूप दोनों पक्षों के बीच परस्पर संदेह, जुगुप्सा और पवित्रता-अपवित्रता-जनित भेद-भाव बलवान हो उठा। इतिहास साक्षी है कि ऐसी विषम परिस्थितियों में भारतीय मनीषियों द्वारा संघर्ष का अंत करने के लिए समय-समय पर ऐसे समाधान ढूँढ़ने के यत्न होते आए हैं जिनका प्रभाव दीर्घकाल तक रहता आया है। इन मौलिक सिद्धांतों के मूल में सार्वभौम सत्य की प्रेरणा प्रबल रही है। ऋग्वेद-काल से ही ऐसे विचारों के बीज मिल जाते हैं, जिनका विकास उपनिषद्-काल में पाया जाता है। इस समुचित विचारधारा को अद्वैत-सिद्धांत द्वारा अभिहित किया गया है। परवर्ती मनीषियों को भी यह रिक्त-रूप में मिला।



क्या आप जानते हैं भारतीय समाज जिन तत्त्वों के ताने-बाने से निर्मित हुआ है, उनमें वर्णों और जातियों का विशिष्ट स्थान है।

प्राचीन काल में ब्राह्मण, आर्य, नाग, यक्ष, देव, दैत्य, असुर, किन्नर, गंधर्व, विद्याधर आदि मानव-मंडलियाँ समय पाकर देव-योनि तक में समाहित कर ली गई। परवर्ती काल में यही प्रक्रिया शक, हूण, यवन, कंबोज, तुर्क, पारसी, पठान, मंगोल आदि जातियों के साथ घटित हुई। परंतु पैगंबरों के अनुयायियों में आस्था-विश्वास, आचार-विचार और जीवन-प्रणाली की कुछ ऐसी विशेषताएँ थी जिनसे आपसी मेल-मिलाप में वह गति और तीव्रता न आ सकी, जो अन्यत्र लक्षित हुई थी। मुसलमानों ने व्यावहारिक संबंधों के भेद को प्रकट करने के लिए यहाँ के निवासियों को 'हिंदू' कहा। इस शब्द का प्रथम उल्लेख विजयनगर के राजाओं के पंद्रहवीं शताब्दी वाले शिलालेख में उपलब्ध है। इसके पूर्व कदाचित् इस शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, ईरान के आकमिनियन बादशाहों के अभिलेखों में 'इंद्र' शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है, जो 'हिंदू' (सिंधु) का ईरानी रूप जान पड़ता है। इस्लाम भ्रातृभाव का संदेश लेकर चला था, उसका द्वार कुछ शर्तों पर सबके लिए खुला था। परंतु हिंदुओं के यहाँ धर्म-परिवर्तन की शास्त्रीय व्यवस्था न थी, इसलिए उनके संस्कार इसके विपरीत पड़ते थे। इस बीच धर्म-परिवर्तन के जो उदाहरण मिलते हैं, वे धर्म-प्रेरित न होकर स्वार्थ या बलात्कार के परिणाम थे। यद्यपि इसके पूर्व श्रमण-संस्कृति के प्रचार-प्रसार काल में भी ऐसे प्रश्न उपस्थित हुए थे, किंतु उसके उन्नायकों का विरोध कर्मकांडादि व्यावहारिक बातों से अधिक था, सैद्धांतिक प्रश्नों पर कम-से-कम वे विजातीय नहीं लगते थे। कर्मवाद और जन्मांतरवाद में उनकी भी आस्था लगभग वैसी ही थी। अपनी कुलीनता की रक्षा की चिंता तत्कालीन हिंदुओं को अधिक सताने लगी थी और उसकी रक्षा के निमित्त वे स्मृतियों और टीकाओं का सहारा लेने लगे थे। कभी-कभी विधर्मी तथा विजातीय शासकों द्वारा हिंदू प्रजा के प्रति क्रूर दुर्व्यवहार तक हो जाया करते

नोट

थे जिससे आतंकित होकर उन्हें अपने को मुस्लिम प्रजा से भिन्न मानने को बाध्य होना पड़ता था। फलस्वरूप इस्लाम का भ्रातृभाव-संदेश यहाँ उतना प्रभावकारी सिद्ध न हो सके।

हिंदू समाज में भी वर्णाश्रम धर्म का उचित पालन नहीं हो पाता था, फलस्वरूप जातियों— उपजातियों की संख्या में वृद्धि हो गई थी और उनके पारस्परिक व्यवहार में आत्मीयता नहीं रह गई थी। वर्ण-व्यवस्था में आस्था न रखने वालों में भी किसी-न-किसी प्रकार का आपसी भेद-भाव बना हुआ था। इब्नबतूता के अनुसार इन दिनों दास-प्रथा भी प्रचलित थी। हिंदू कन्याओं को सम्पन्न मुसलमान अधिकाधिक संख्या में क्रय करके अपने घरों में रख लिया करते थे। कुलीन नारियों का अपहरण कराके अमीर लोग अपना मनोरंजन किया करते थे। मुहम्मद बिन तुगलक ने चीन-सम्राट के पास भारतीय काफिरों में एक-एक सौ स्त्री-पुरुषों को सौगात के रूप में भेजा था। इसके साथ ही ऐसे हिंदू राजाओं का अभाव न था जो मुस्लिम महिलाओं, विशेषतः सैयद स्त्रियों को दासी-रूप में अपने यहाँ लाकर नृत्य-गीत की शिक्षा दिलवाया करते थे। तत्कालीन स्मृतियों के अनुसार दासों की चार कोटियाँ थी—जन्मजात, क्रीत, अपहृत या कहीं से प्राप्त, अपने यहाँ उत्पन्न। समाज में बहुविवाह या पुनर्विवाह की प्रथाएँ भी प्रचलित थीं। विदेशी पर्यटकों ने तत्कालीन सती-प्रथा का भी विवरण दिया है। ओडरिक (1321-1322) नामक पादरी ने दक्षिण भारत में प्रचलित सती-प्रथा का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार पुत्रवती विधवा को 'सती' बनने का अधिकार नहीं था। इब्नबतूता ने लिखा है कि सती होने के लिए सुल्तान की पूर्व-स्वीकृति अनिवार्य थी। स्त्रियों को पुरुषों-जैसा स्तर तथा सम्मान प्राप्त न था। परदा-प्रथा उन दिनों की आवश्यकता बन गई थी। फिर भी, स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था थी और कला-साहित्य के निर्माण में स्त्रियों का योगदान रहा करता था। हिंदुओं में संयुक्त परिवार पाए जाते थे, जो सामाजिक जीवन के मूलाधार थे। छुआछूत के नियम इतने कठोर थे कि शुद्रादि जातियों तक में परस्पर भेद-भाव बरता जाने लगा था।

भारतीय मुस्लिम समाज की अवस्था हिंदुओं से अधिक भिन्न न थी। धर्मांतरित मुसलमानों के हिंदू-संस्कार धर्म-परिवर्तन के साथ ही धुल नहीं गए थे। विशेषतः जबकि वे बलात् अथवा स्वार्थवश धर्म-परिवर्तन के लिए बाध्य हुए थे। आक्रमणकारी मुसलमानों के वंशजों में भी कालांतर में सद्भाव और सहिष्णुता के भाव उचित होने लगे। इस प्रवृत्ति को सूफी साधकों का प्रश्रय प्राप्त था। उन दिनों इस्लाम-प्रचार की यह विशेषता बन गई थी कि तलवार द्वारा आतंक उत्पन्न करने के बाद प्रेम की पट्टी बाँध दी जाए। उस समय सुल्तान का पद सर्वोपरि था और उलेमा तथा उमरा का स्थान बाद में आता था। इनमें से द्वितीय वर्ग के अंतर्गत ईरान, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान तथा अरब के मूल निवासियों के नाम लिए जा सकते हैं जिन्हें क्रमशः शेख, मुगल, पठान और सैयद की संज्ञा दी जाने लगी थी। इन्हें अपने से बाहरवालों से संबंध स्थापित करना स्वीकार न था। शेख अपने पांडित्य और सुसंस्कृति के लिए प्रसिद्ध थे और अधिकतर शिया-संप्रदाय की ओर उन्मुख थे। परंतु तुर्किस्तानवाले मुगल सुन्नी संप्रदाय से संबद्ध थे। इनमें से ही कुछ सुल्तान के पद पर प्रतिष्ठित होते रहते थे। अफगानी पठान अपने शौर्य, साहस, स्वाभिमान और सीधेपन के लिए प्रसिद्ध थे। फिर भी, कभी-कभी इनमें दिल्ली-शासन के प्रति विद्रोह की भावना जाग्रत हो जाया करती थी क्योंकि ये अपने को सर्वप्रथम मुस्लिम विजेता मानते थे। सैयद अल्पसंख्यक होने के साथ ही उतने वीर और साहसी न थे। दिल्ली पर अधिकार करके भी वे अधिक समय तक टिक न सके। शेखों और सैयदों में से ही उलेमा हुआ करते थे। खेतिहर, मजदूर, व्यापारी और नौकरी-पेशा मुसलमानों में भी परस्पर भेद-भाव की कमी न थी। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति हिंदू स्त्रियों से अधिक भिन्न न थी। बहुविवाह-प्रथा के कारण हरमों में इनकी दुर्गति हुआ करती थी। मुस्लिम समाज अपने मूल रूप में न रह गया था और उसका एक प्रकार से भारतीयकरण हो गया था। परंतु इस काल तक भारत में उपस्थिति ईसाइयों का समाज पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ सका और पारसी तथा यहूदी अपनी-अपनी सीमाओं में ही सीमित रहे।

दैनिक जीवन, रीति-रस्म, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन भारतीय समाज सुविधा-संपन्न और असुविधा-ग्रस्त इन दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राजा-महाराजा, सुल्तान, अमीर, सामंत और सेठ-साहूकार आते थे। जिनमें मनमाने ढंग से वैभव-प्रदर्शन की उल्लासपूर्ण प्रवृत्ति पाई जाती थी। द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, राज्य-कर्मचारी और घरेलू उद्योग-धंधों में लगी सामान्य जनता थी जो प्रथा-परंपरा का

नोट

पालन कर संतोष की साँस ले लिया करती थी। अमीर और सामंत सूती, रेशमी अथवा कार्मिक (कढ़े हुए) वस्त्र पहनते थे एवं बहुमूल्य नगीनों से जड़ी सुनहली अंगूठियाँ धारण करते थे। उनकी पत्नियाँ रत्नजड़ित सुनहले कंगन तथा मूँगाजड़ित केयूर धारण करती थीं। समाज में सुव्यवस्था लाने के यत्न होते रहते थे। रूसी व्यापारी अफनेसियन निकितिन (1470 ई.) के अनुसार बहमनी राज्य के सुयोग्य वजीर महमूद गावाँ (1405-1481) के समय शासकीय व्यवस्था प्रशंसनीय थी। भूमि की पैदावार प्रचुर थी, सड़कें लुटेरों के आतंक से रहित थीं तथा राजधानी भव्य नगर के रूप में खुशहाल दिखाई देती थी। पुर्तगाली बारबोसा (1500-1516) के अनुसार जहाँ उमरा और बादशाह वर्ग महलों में निवास करते थे, वहाँ कुछ लोग गलियों में निर्मित मकानों में रहते थे; जिनके सामने थोड़ी खुली जगह भी रहती थी। शेष जनता के भाग्य में झोंपड़ियों में रहना बड़ा था। मुगलों के शासनकाल के विषय में पेलसर्ट नाम लेखक ने लिखा है कि उस समय समाज के भीतर तीन ऐसे वर्ग-श्रमिक, नौकर और दुकानदार-थे जिन्हें न तो कोई स्वेच्छापूर्वक कार्य करने का अवकाश था, न यथेष्ट पारिश्रमिक ही मिला करता था। दुकानदारों को अपनी चीजें छिपाकर रखनी पड़ती थीं कि कहीं क्रूर कर्मचारियों की दृष्टि न पड़ जाए। तत्कालीन साधु-समाज पर भी पाखंड की काली छाया मंडराने लगी थी। गोस्वामी तुलसीदास-कृत 'कवितावली' की निम्नलिखित पंक्तियों से तत्कालीन स्थिति का स्पष्ट परिचय मिलता है-

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली,
बनिक को बनजि न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीधमान सोच बस,
कहैं एक एकन सो कहाँ जाई, का करी॥

सांस्कृतिक स्थिति-सांस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिंतनधारा के माध्यम से हुई है। कला, शिल्प साहित्य और संगीत इन्हीं की आनुषंगिक उपलब्धियाँ हैं। इन सबका क्षेत्र विशाल मानव-समाज है जिसकी प्रेरणा और प्रसाद से मनुष्य जीवन-यापन करता है। भारतीय जीवन में समय-समय पर विदेशी विजातीय तत्वों के आते रहने के कारण परस्पर संघात होते रहे हैं। परंतु इन्हीं से होकर ऐसी जीवनी-शक्ति का संचार भी होता रहा है कि हम डूबते-डूबते भी उबरते चले आए हैं, निष्प्रभ या निस्तेज न होकर नव-जीवन की अरुणिमा से महिमा-मंडित होते रहे हैं। इन सबके मूल में हमारी समन्वय-साधना की प्रवृत्ति उजागर रही है, जो ब्राह्मण-युग (ई. पू. 800 से ई. पू. 600 तक) से ही उत्तर भारत में व्यक्त हो चुकी थी। दक्षिण भारत में यह प्रवृत्ति बाद में उभरी। वैदिक देवी-देवताओं के बाह्य विधानों से बिदककर श्रमण-संस्कृति के उन्नायकों ने जीवन का नया पथ खोज निकालने का यत्न आरंभ किया, परंतु गुप्त साम्राज्य की स्थापना के अनंतर दोनों ही क्षयमान हो गए। मौर्य-साम्राज्य के बिखराव के पश्चात् ब्राह्मणवाद का नए ओज और तेज के साथ अभ्युत्थान हुआ। पुष्यमित्र के शासन-काल में समाज को सुव्यवस्थित करने के लिए सूत्रों-स्मृतियों की व्याख्या तथा रचना होने लगी और गौ-ब्राह्मणों की सुरक्षा की व्यवस्था की गई।



नोट्स

भारतीय जीवन में समय-समय पर विदेशी विजातीय तत्वों के आते रहने के कारण परस्पर संघात होते रहे हैं।

परवर्ती गुप्त काल में वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ और देवी-देवताओं तथा देवालयों की स्थापना द्वारा लुप्तप्राय धर्म-व्यवस्था को पुनर्जीवित किया गया। उन दिनों वैष्णव धर्म को विशेष प्रश्रय तथा प्रोत्साहन मिला और स्मृति-ग्रंथों में लोक-प्रचलित विश्वासों तथा मान्यताओं को भी स्थान दिया गया। ब्राह्मणेतर श्रमणादि तत्वों से समन्वित ब्राह्मणवाद को विद्वानों ने नवब्राह्मणवाद कहा; जिसका स्वरूप वैदिक परंपरा से विच्छिन्न होकर भी भिन्न अवश्य था। सत्य तो यह है कि ब्राह्मणवाद का भी अमिश्रित रूप में पुनरुत्थान नहीं हुआ था। दूसरों के अनेक मत-विश्वास उसमें समाहित थे। इसी प्रकार नवब्राह्मणवाद में भी ब्राह्मणवाद के अतिरिक्त श्रमण, द्रविड़ तथा अन्य आदिवासियों के मत और मान्यताएँ परस्पर एकीभूत हो गई थीं। इसकी कुछ सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं-1. धर्मविशेष का लौकिकीकरण, 2. अवतारवाद की स्वीकृति, 3. देवालयों में देव-प्रतीकों की पूजा,

नोट

4. तीर्थादि की स्थापना, 5. धर्म के भारतीय स्वरूप का संरक्षण। अधिकाँश पुराणों की रचना का भी यही काल है। मध्यकालीन हिंदू जीवन-प्रणाली पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। पुराणकारों ने समन्वय-साधना की प्रवृत्ति को पुनर्जाग्रत किया। परंपरा, दृष्टि-भेद, रुचि-वैविध्य, देश-काल तथा तत्कालीन समाज से प्रेरणा ग्रहण कर उन्होंने तदनुरूप पूजा-उपासना तथा कर्मकाण्डीय पद्धतियों को अपनाकर उनमें दार्शनिकता का पुट दे दिया। मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन अवतारवाद, गौ-ब्राह्मण-रक्षा, धर्मशास्त्रों का सम्मान और कर्म-फल में विश्वास पौराणिक धर्म की प्रमुख विशेषताएँ थीं, जिनमें लोक-विश्वास का भी योगदान रहा। साधु-संन्यासियों का सम्मान और स्वर्ग-नरक, श्राद्ध-पिंडदान आदि इस युग की अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं जिनकी धुरी पर हिंदू जीवन-चक्र चलता रहा और इस्लाम के भारत-प्रवेश के पूर्व तक अविकृत रूप में प्रचलित रहा।

मध्यकालीन हिंदू-समाज के दो पक्ष हमारे सामने आते हैं—एक वह जो शास्त्रों का समर्थक है और दूसरा वह जो परंपरागत विश्वासों तथा मान्यताओं अथवा स्वानुभूति का पक्षधर है। वह दूसरा पक्ष ही पौराणिक पक्ष है। परंतु हम बहुधा यह पाते हैं कि दोनों पक्षों में परस्पर अंतरावलंबन है। कभी जन-घोषित विश्वास शास्त्र-सम्मत बन जाते हैं, तो कभी शास्त्रविहित मान्यताएँ जनता द्वारा अस्वीकृत हो जाती हैं। शास्त्र की दुहाई देने की अपेक्षा स्वानुभूति पर निर्भर करना अधिक श्रेयस्करो है। इसी आस्था के कारण विपक्षी अथवा विरोधी के प्रति सहिष्णुता-भाव का प्रादुर्भाव होता है और न्यायोचित उदार व्यवहार का शुभारंभ होता है। हमारे यहाँ आध्यात्मिक उपलब्धि को जीवन का परिष्कार माना गया है, जिसके कारण धर्मानुभूति और दार्शनिक चिंतन का अन्योन्याश्रय संबंध जुड़ गया है। उपनिषद् भारतीय दर्शन के उपजीव्य हैं और इसी आधार पर वेदांत भी विकसित हुआ है। औपनिषदिक विचारों में भी सर्वत्र मतैक्य नहीं है। इनमें समन्वय की स्थापना के लिए बादरायण (300 ई.) ने ब्रह्मसूत्रों की रचना की, जिस पर शंकराचार्य (788-820 ई.) ने 'शारीरिक भाष्य' लिखा। इस भाष्य में निरूपित व्याख्या का इतना महत्त्व हो गया कि सर्वसाधारण में वेदांत का अर्थ केवल शंकर-वेदांत समझा जाने लगा। इसमें शब्द-प्रमाण को मुख्य मानकर उसे तर्क द्वारा पुष्ट करने का यत्न किया गया है। शंकराचार्य की ही भाँति कुमारिल भट्ट ने हमारी चिंतनधारा को दूर तक प्रभावित किया है। परवर्ती आचार्यों ने इन्हीं मतों की व्याख्या-प्रतिव्याख्या के रूप में विशिष्टाद्वैत, केवलाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि मतों की स्थापना की। इन सभी में ईश्वर को निरपेक्ष मानकर उसकी भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, परंतु आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि के उन्मुक्त प्रायः ज्यों-के-त्यों रह गए हैं।

ईश्वर और मनुष्य के बीच संबंध स्थापित करने का एक माध्यम धर्म है, जाति, कुल, देश-काल और परिस्थितियों से निरपेक्ष होकर नैतिक दायित्व का निर्वाह करना 'धर्म' है। धर्माचार अथवा नैतिकता समाजपरक है और धर्म-साधना व्यक्तिनिष्ठ। साध्य और साधक का एकीकरण साधन के माध्यम से होता है। साधना का विकास रुचि, शिक्षा और संस्कार के अनुसार कई रूपों में होता है। स्थूल रूप में साधना के तीन अंग हैं—देवाराधना, संस्कार-मूलक क्रिया और नित्य-नैमित्तिक कर्म। देवाराधन के भी दो रूप हैं—आत्मविश्वासमूलक योग और आराध्यानुग्रहमूलक भक्ति। आत्म-रक्षा की वृत्ति ने मनुष्य को देवाराधन की ओर प्रवृत्त किया, फलस्वरूप कल्याणकारी शक्तियों को व्यक्तित्व प्रदान करके उन्हें मानवीय इच्छाओं, उद्देश्यों, विचारों तथा संवेदनाओं से संपन्न तथा भावापन्न मान लिया गया। भगवान् के सगुण और साकार रूप का इसी प्रकार विकास हुआ।

शक्ति-संपन्न समर्थ व्यक्तियों की मरणोत्तरकालीन आत्माओं को अलौकिकता प्रदान कर उन्हें कल्याणप्रद शक्तियों से संबद्ध कर देने की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। कुल-देवता और ग्राम-देवता इन्हीं की उपज हैं, जिनके प्रतीक पिंड तथा पदार्थ बने। इसी प्रकार सशक्त तथा सहायक पशु-पक्षियों की आत्माओं से टोटेमवाद और फिटिशवाद का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्हें भौतिक आपदाओं का कारण मान लिया गया और उनकी तुष्टि के लिए यातु-विद्या तथा जटिल साधना-विधान का विस्तार हुआ। संस्कारग्रस्त जनता में आज भी भूत-प्रेत, पिशाच, चुड़ैल, डाकिनी-शाकिनी तथा उनसे त्राण दिलाने वाले ओझा आदि के झाड़ू-फूँक, गंडा-तावीज और मंत्र-तंत्र की मान्यता पाई जाती है। साध्य की अपेक्षा साधना पर अधिक बल दिया जाने लगा है, जो कभी-कभी जड़ता को जन्म देती है। इसीलिए साधना के विकृत और विस्तृत रूप (कर्मकांडादि) की आलोचना उपनिषद्-काल से लेकर श्रमण-युग तक होती रही, जिसे हम संतवाणियों में मुखर पाते हैं।

नोट



नोट्स ईश्वर और मनुष्य के बीच संबंध स्थापित करने का एक माध्यम धर्म है, जाति, कुल, देश-काल और परिस्थितियों से निरपेक्ष होकर नैतिक दायित्व का निर्वाह करना धर्म है।

मध्यकाल में हिंदू-समाज की वृहत्तर इकाई गाँव था और लघुतर इकाई परिवार, जो जीविका के सम्मिलित साधनों से युक्त था। अयोग्य पति की पत्नी होकर भी नारी संबंध-निर्वाह करने को बाध्य थी। सतीत्व के यथार्थ गौरव से अनभिज्ञ नारी और उसकी संतान से बना हिंदू-समाज मध्यकाल की विडंबना रहा।

उपर्युक्त विकास-क्रम को ध्यान में रखे बिना मध्यकालीन संस्कृति की प्रवृत्ति और परिवेश को ठीक-ठीक समझ पाना प्रायः असंभव है। इस काल में धर्म-साधनों की बाढ़-सी आ गई और गुह्य साधनाओं के अंतर्गत कृच्छ्र साधनाएँ भी प्रवेश पा गई। धर्माचार के नाम पर अनाचार, मिथ्याचार और व्यभिचार तक चलने लग गया। फलस्वरूप ज्ञान-चर्चा की आड़ में पाखंड को प्रश्रय मिलने लगा और समाज में एक प्रकार की अराजकता फैल गई। बाह्याडंबर तथा कर्मकांडादि बाह्य विधान के प्रति व्यंग्य किए जाने लगे। ऐसी परिस्थिति में गुरु गोरखनाथ ने बाह्य साधनों को गौण ठहराकर मन की शुद्धता और आचरण की पवित्रता पर अधिक बल देना उचित समझा—“अवधू मन चंगा तो कठौती में गंगा, बाध्या मेल्ला तो जगत्र चेला।” कबीरादि संतों की चेतना भी प्रकारांतर से मन की महत्ता को स्वीकार करती जान पड़ती है—

कहे कबीर कृपा भई, गुरु ज्ञान कहा समझाई।
हृदय श्री हरि भेंटिये, जो मन अनतै नहि जाई॥

मध्यकालीन धर्म साधना में प्रायः सभी पूर्ववर्ती प्रमुख धर्म-साधनाएँ किसी-न-किसी रूप में पाई जाती हैं—अपने मूल रूप में अथवा किंचित परिवर्तन के साथ। बृहदारण्यकोपनिषद् (2/4/11) के वेदमार्गी ‘एकायन’ धर्म तथा लोकधर्मी ‘लोकायन’ धर्म जैसी कुछ अन्य धर्म-साधनाएँ भी अवश्य रही होंगी, जिनके नाम लोग भूलने लगे होंगे। फिर भी शैव, शाक्त, भागवत (वैष्णव), सौर, गाणपत्य-जैसे प्रमुख धर्मों के न्यूनाधिक अनुयायी पाए जाते थे जिनमें ज्ञान, योग-तंत्र अथवा भक्ति की प्रवृत्तियाँ प्रचलित थीं। ज्ञान में तप और चिंतन-मनन की प्रधानता थी और योग-तंत्र में क्रियात्मक विशेषताएँ पाई जाती थीं। शिव आदि योगी माने जाते थे और पूर्व-मध्यकाल में शैव धर्म भारतव्यापी बन गया था जिसे राजाश्रय के अतिरिक्त लोकाश्रय भी प्राप्त था। इसके प्रमाण शिलालेखों द्वारा भी सुलभ हैं। योग का किसी समय इतना प्रबल प्रभाव था कि ज्ञान और भक्ति के साथ ‘योग’ शब्द का जोड़ा जाना आवश्यक समझा जाने लगा था। भक्ति और ज्ञान-साधना में योग का कोई-न-कोई तत्त्व ढूँढ़ निकालना कठिन नहीं है। यहाँ तक कि बौद्ध-जैन तक इससे अप्रभावित न रह सके थे। भक्ति मुख्यतः भावनात्मक थी। अन्य धर्मों में भी इसका एक-न-एक रूप पाया जा सकता था। परंतु इसका जितना बहुविध विकसित रूप वैष्णव धर्म-विशेषतः भगवत संप्रदाय-में लक्षित हुआ उतना कदाचित् अन्यत्र संभव न हुआ। विभिन्न धर्मों अथवा संप्रदायों के बीच भी अनेक धर्मों या उप-संप्रदायों का बनना मध्यकालीन विशेषता बन गई थी।



टास्क मध्यकालीन समाज की सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक स्थिति का उल्लेख कीजिए।

मध्यकाल में अरुचि और संस्कार का प्राधान्य था। इस कारण बहुधा सामंजस्य बिगड़ जाता था और संतुलन बनाए रखने के लिए बार-बार समन्वय की ओर उन्मुख होना पड़ता था। समन्वय हमारे संस्कार में था, इसलिए उसे लाने में विघ्न-बाधाओं के रहते भी दुर्लभ्य कठिनाई नहीं होती थी। वैदिक वाङ्मय में इसके बीज मिलते हैं। ‘तंत्रालोक’ में भी इसका उल्लेख है—“एष रामो व्यापकोऽत्र शिवः परम कारणम्।” (88/1) ‘शक्ति-संगम-तंत्र’ का यह उद्घरण भी ध्यातव्य है—

कदाचिद्वात्म ललिता पुरुषा कृष्णविग्रहा।
लोक सम्मोहनार्थाय स्वरूपं विभ्रती परा।

नोट

‘दुर्गासप्तशती’ (11/5) में भी भगवती दुर्गा और वैष्णव को अभिन्न ठहराया गया है। ‘अध्यात्म रामायण’ में राम तथा शिव के बीच परस्पर भक्ति प्रदर्शित की गई है। यही भावना ‘ब्रह्मवैवर्त पुराण’ में शिव और श्रीकृष्ण के मध्य व्यक्त हुई है। परवर्ती रचनाओं में ऐसे कई उदाहरण उपलब्ध हैं। ‘साधनमाला’ में वर्णित बौद्ध देवता पद्मनृत्तेश्वर भी शिव का रूपांतर ही जान पड़ता है। इसी प्रकार उड़ीसा के पंचसखाओं का ‘शून्य पुरुष’ ब्राह्मण-श्रमण-संस्कृतियों के मिलन की ओर संकेत करता है। मध्यप्रदेश के नाग राजाओं द्वारा अवलोकितेश्वर की पूजा शिव-पूजन की भाँति हुआ करती थी। एलोरा के समीपस्थ वेरूल के कैलास-मंदिर में शिव की मूर्ति के शीर्ष-स्थान पर बोधिवृक्ष स्थित है। चंबा-नरेश अजयपाल के राज्य-काल में उत्कीर्ण ब्रह्मा, वरुण और शिव के साथ बुद्ध भी हैं। खजुराहो से उपलब्ध कोक्कल के वैद्यनाथ मंदिरवाले शिलालेख में ब्रह्मा, जिन, बुद्ध तथा वामन को शिव का स्वरूप कहा गया है। इसी प्रकार हरिहर-पूजन में भी शैव-वैष्णव-धारा का संगम लक्षित होता है। संक्षेप में, ऐसे अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनसे समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। भक्ति-आंदोलन का विकास इसी पृष्ठभूमि में हुआ था।

8.1.3 भक्ति आंदोलन के उदय के कारण

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति आंदोलन के उदय के निम्न कारण बताए हैं—

1. देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने से हिंदू जनता हताश, निराश एवं पराजित हो गई थी। पराजित मनोवृत्ति में ईश्वर की भक्ति की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक था।
2. हिंदू जनता ने भक्ति भावना के माध्यम से अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाकर पराजित मनोवृत्ति का शमन किया।
3. तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों ने भी भक्ति के प्रसार में योगदान किया। नाथ, सिद्ध, योगी अपनी रहस्यदर्शी शुष्क वाणी में जनता को उपदेश दे रहे थे। भक्ति, प्रेम आदि हृदय के प्राकृतिक भावों से उनका कोई सामंजस्य न था। भक्ति भावना से ओतप्रोत साहित्य ने इस अभाव की पूर्ति की।
4. भक्ति का मूल स्रोत दक्षिण भारत में था। 7वीं शती में अलवार भक्तों ने जो भक्ति भावना प्रारंभ की उसे उत्तर भारत में फैलाने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हुईं।

अन्य मत

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्लजी के मत से असहमति व्यक्त करते हुए कहा है कि भक्ति भावना पराजित मनोवृत्ति की उपज नहीं है और न ही यह इस्लाम के बलात् प्रचार के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई। उनका तर्क यह भी है कि हिंदू सदा से आशावादी जाति रही है तथा किसी भी भक्त कवि के काव्य में निराशा का पुट नहीं है।
2. डॉ. सत्येंद्र के अनुसार—“भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाए रामानन्द।”
3. सर जार्ज ग्रियर्सन भक्ति आंदोलन का उदय ईसाई धर्म के प्रभाव से मानते हैं। उनका यह तर्क हास्यास्पद है कि रामानुजाचार्य को भावावेश एवं प्रेमोल्लास के धर्म का संदेश ईसाइयों से मिला।
4. भारतीय धर्म साधना में भक्ति की एक सुस्पष्ट एवं सुदीर्घ परंपरा रही है। महाभारत के भीष्म पर्व में, शांडिल्य भक्ति सूत्र में एवं नारद भक्ति सूत्र में भक्ति का सैद्धांतिक विवेचन पहले ही हो चुका था। दक्षिण के आलवार भक्तों ने भक्ति भावना की उच्चतम स्थिति को प्राप्त कर लिया था।
5. रामानुजाचार्य, रामानंद, निंबकाचार्य, बल्लभाचार्य जैसे शास्त्रज्ञ विद्वानों ने अपने सिद्धांतों की स्थापना के द्वारा भक्तिभाव एवं अवतारवाद को दृढ़तर आयामों पर स्थापित किया, जिसे सूर, कबीर, मीरा, तुलसी ने काव्य रूप प्रदान किया।

निष्कर्ष—निष्कर्ष यह है कि हिंदी साहित्य में भक्ति आंदोलन का प्रारंभ दक्षिण भारत के अलवार भक्तों की परंपरा में हुआ। उत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियों ने उस आंदोलन के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

नोट

मुस्लिम शासकों की धर्मांधता और इस्लाम के बलात् प्रचार एवं क्रूर धार्मिक नीति ने भी उत्तर भारत में हिंदू जनता में भक्ति भाव को दृढ़ता प्रदान की।

भक्ति आंदोलन प्राचीन भारतीय मनीषा, ज्ञान एवं दर्शन की एक अविच्छिन्न धारा है जो अत्यंत शक्तिशाली एवं व्यापक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. चांदीवाला सिक्का शेरशाह के समय से ही 'रुपया' कहा जाने लगा।
8. मौर्य-साम्राज्य के बिखराव के पश्चात् बाह्यणवाद का नए ओज और तेज के साथ अभ्युत्थान नहीं हुआ।
9. भक्ति का मूल स्रोत दक्षिण भारत में था।

8.2 सारांश (Summary)

- भक्ति-भावना के संदर्भ में पांचरात्र भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं। उनका मुख्य उद्देश्य भक्ति-मार्ग के साधन निरूपण करना रहा है। संहिताओं ने देवालयों के निर्माण, उनमें आराध्य देवी की प्रतिष्ठा और विधिवत् पूजन-अर्चन की व्यवस्था दी थी। इससे अवतारवाद को प्रचुर प्रश्रय मिला। ईसाई मत और इस्लाम धर्म की देन के रूप में भक्ति की स्थापना बहुत पहले ही अप्रमाणित हो चुकी है।
- भारत के राजनीतिक क्षेत्र में सन् 1343 से 1643 तक की अवधि में दो प्रमुख मुस्लिम वंशों—पठान वंश और मुगल वंश—का आधिपत्य बना रहा। इनमें लोदी, सैयद और तुगलक वंशों के सुल्तान विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इस काल में ऐसे वंशों के व्यक्ति भी समय-समय पर होते आए, जिन्हें किसी-न-किसी विद्रोह के फलस्वरूप अधिकार प्राप्त करने के न्यूनाधिक अवसर प्राप्त होते रहे।
- हिंदी साहित्य में भक्ति आंदोलन का प्रारंभ दक्षिण भारत के आलवार भक्तों की परंपरा में हुआ। उत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियों ने उस आंदोलन के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया। मुस्लिम शासकों की धर्मांधता और इस्लाम के बलात् प्रचार एवं क्रूर धार्मिक नीति ने भी उत्तर भारत में हिंदू जनता में भक्ति भाव को दृढ़ता प्रदान की।

8.3 शब्दकोश (Keywords)

1. पथ-प्रदर्शन—रास्ता दिखाना, मार्ग बतलाना
2. विद्यमान—मौजूद, उपस्थित
3. समीपस्थ—नजदीक, पास में होना

8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. पूर्व-मध्यकाल में गुजरात, जौनपुर, बंगाल और बहमनी राज्यों की स्थिति का वर्णन कीजिए।
2. सूर-वंश और मुगल-वंश की विशेषताओं का निष्कर्ष सहित उल्लेख कीजिए।
3. भक्ति आंदोलन के उदय के कारण क्या थे? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

नोट

- | | | |
|---------|------------|-----------------------|
| 1. 1401 | 2. बहमनवली | 3. आदिलशाही/कुतुबशाही |
| 4. (घ) | 5. (क) | 6. (ख) |
| 7. सत्य | 8. असत्य | 9. सत्य |

8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—ध्वन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।
3. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास—शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—वाष्णोय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।

नोट

इकाई-9 : निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि एवं प्रमुख विशेषताएँ, प्रमुख संत कवि एवं उनका योगदान

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 9.1 निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि
- 9.2 प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान
- 9.3 संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ
- 9.4 सारांश (Summary)
- 9.5 शब्दकोश (Keywords)
- 9.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 9.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि जानने में।
- प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान समझने में।
- संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शंकराचार्य एवं उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित अद्वैत दर्शन, नाथपंथ, सूफी धर्म एवं इस्लाम संत काव्य का वैचारिक आधार है, उपनिषदों में निरूपित ब्रह्म, जीव, जगत एवं भाषा के स्वरूप को संत कवियों ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया। संतों का साधना पक्ष और भक्ति भावना शंकर के अद्वैत दर्शन की देन है। रामानंद ने भक्ति का द्वार शूद्रों एवं निम्न वर्गों के लिए खोल दिया था। इसका प्रभाव भी संत काव्य पर दिखाई पड़ता है।

9.1 निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि

संत काव्य का वैचारिक आधार है शंकराचार्य एवं उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित अद्वैत दर्शन, नाथपंथ, सूफी धर्म एवं इस्लाम। उपनिषदों में निरूपित ब्रह्म, जीव, जगत एवं माया के स्वरूप को संत कवियों ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया। संतों का साधना पक्ष और भक्ति भावना शंकर के अद्वैत दर्शन की देन है। दोनों ही जीव को विशुद्ध ब्रह्म मानते हैं तथा जो भिन्नता दिखाई पड़ती है वह माया के कारण है। आत्मा की सर्वरूपता, सर्वशक्तिमत्ता भी अद्वैत दर्शन के अनुरूप है।

नाथपंथियों से उन्होंने शून्यवाद, योगसाधना, गुरु की प्रतिष्ठा का तत्व लिया। इस्लाम के प्रभाव से उन्होंने एकेश्वरवाद ग्रहण किया, मूर्तिपूजा का खण्डन किया और अवतारवाद का विरोध किया।

नोट

सूफियों से उन्होंने प्रेम भाव ग्रहण किया और दाम्पत्य प्रतीकों का प्रयोग भक्ति भावना की अभिव्यक्ति हेतु किया। सिद्धों की गूढ़ उक्तियाँ, उलटबासियाँ, वैदिक परंपराओं एवं बाह्याचार का विरोध संत काव्य में भी मिलता है। रामानंद ने भक्ति का द्वार शूद्रों एवं निम्न वर्गों के लिए खोल दिया था। इसका प्रभाव भी संत काव्य पर दिखाई पड़ता है।



नोट्स बौद्धों एवं वैष्णवों की अहिंसा भी संत काव्य की आधार भूमि है।

9.2 प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान

1. **कबीर**—‘बीजक’ नाम से उनकी रचनाओं का संकलन धर्मदास द्वारा किया गया है। जिसके तीन भाग हैं—साखी, सबद, रमैनी। कबीर का जन्म 1398 ई. और मृत्यु 1518 ई. में हुई। कबीर जाति के जुलाहे थे, काशी में रहते थे तथा रामानंद उनके गुरु थे। कबीर की पत्नी का नाम लोई, पुत्र का नाम कमाल एवं पुत्री का नाम कमाली था। उनकी कविता में उपदेशों की प्रवृत्ति है, रहस्यवादी भावना है तथा प्रतीकों का प्रयोग उनकी भाषा में है।

कबीर निरक्षर थे। स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है—

मसि कागद छूयौ नहीं कलम गह्यौ नहिं हाथ।

उनकी रचनाओं का संकलन बाद में उनके शिष्यों ने किया। ‘कबीर बीजक’ में तो उनकी रचनाएँ संकलित हैं ही इसके अतिरिक्त बाबू श्यामसुंदर दास ने उनकी रचनाओं का संकलन ‘कबीर ग्रंथावली’ में किया है। उन्होंने मूर्ति पूजा, माला, तिलक, छापा, तीर्थाटन, गंगास्नान, रोजा, हिंसा, जाति प्रथा, ऊँच-नीच की भावना आदि का खंडन किया। यथा—

1. माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि के मन का मनका फेर॥
2. ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलश सुरा भरा साधू निन्दत सोय॥
3. पाहन पूजे हरि मिलैं तौ मैं पूजँ पहार।
घर की चाकी क्यों नहिं पूजैं पीसि खाय संसार॥

हिंदुओं और मुसलमानों को फटकारते हुए कहा—

अरे इन दोउन राह न पाई
हिंदू अपनी करैं बड़ाई गागर छुअन न देंई।
वेश्या के पायन तर सोवैं यह देखौ हिंदुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी-मुर्गा खाई।
खालाकेरी बेटी ब्याहैं घर ही में करैं सगाई॥

वे शास्त्र पर नहीं आँखों देखी बात पर यकीन करते हैं—

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।
मैं कहता सुरझावन हारी तू राखा उरझोय रे॥

नोट



क्या आप जानते हैं कबीर भक्त और कवि बाद में थे, समाज सुधारक पहले थे। उनकी कविता में अनुभूति की सच्चाई एवं अभिव्यक्ति का खरापन है। समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पाखंड का उन्होंने खंडन किया।

गुरु की महत्ता पर उन्होंने सर्वाधिक बल दिया है। इसके अतिरिक्त नैतिकता, सदाचार, परोपकार, क्षमा, सत्य भाषण, संतोष आदि को उन्होंने श्रेष्ठ मानव के लिए आवश्यक माना है।

कबीर ने जीवन को ब्रह्म का अंश माना है जो माया के कारण अपने स्वरूप को भूला हुआ है। माया के नष्ट होते ही जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन हो जाता है—

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।

फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कथेहु गियानी॥

यहाँ घड़ा माया का प्रतीक है जो घड़े के जल (जीवात्मा) को बाहर के जल (परमात्मा) से अलग किए हुए है। जैसे ही घड़ा (माया) फूटता है दोनों जल मिलकर एक हो जाते हैं। वे कहते हैं कि सतगुरु ही व्यक्ति को माया के बंधन से छुड़ाता है तथा ईश्वर का साक्षात्कार कराता है। कबीर ने गुरु महिमा का पाठ नाथ पंथियों से सीखा है।

सतगुरु की महिमा अनत अनत किया उपगार।

लोचन अनत उघाड़िया अनत दिखावणहार॥

कबीर के काव्य में हठयोग साधना एवं कुंडलिनी योग का जो विवरण मिलता है उसका संबंध भी नाथपंथ से है। पारिभाषिक शब्दावली उन्होंने नाथपंथ से ग्रहण की है। कुंडलिनी साधना वाले उनके पदों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साधनात्मक रहस्यवाद माना है। ऐसा एक पद उद्धृत है—

अवधू गगन मंडल घर कीजै।

अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनालि रस पीजै॥

कुंडलिनी मूलाधार चक्र में सुषुप्तावस्था में रहती है। योगी साधना द्वारा इसे जाग्रत करता है और यह षट् चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार चक्र में पहुँचती है जहाँ ब्रह्मरंध से झरने वाले अमृत रस का पान करती है।

कबीर का रहस्यवाद भावात्मक कोटि का भी है। जहाँ जीवात्म का उस निर्गुण परमात्मा से भावात्मक संबंध जोड़ती हुई विरह, मिलन, जिज्ञासा, की अनुभूति करती है वहाँ भावात्मक रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। कबीर ने जीवात्मा को प्रेयसी एवं परमात्मा को प्रियतम के रूप में चित्रित करते हुए उनके विरह एवं मिलन के चित्र प्रस्तुत किए हैं—

कै विरहिन कूं मीचु दै कै आपा दिखलाय।

रात दिना का दाक्षणा मो पै सहा न जाय॥



नोट्स कबीर का प्रतिपाद्य दो प्रकार का है—रचनात्मक एवं आलोचनात्मक।

मिलन की अनुभूति का वर्णन कबीर ने विवाह के सांग-रूपक द्वारा इस पद में किया है—

दुलहिनि गावहु मंगलचार।

मोरे घर आए हो राजा राम भरतार।

तन रत करि मैं मन रत करिहूँ पंचतत्त बाराती।

रामदेव मोरे पाहुने आए, मैं जोवन मैमाती।

सरीर सरोवर वेदी करिहूँ ब्रह्मा वेद उचारि॥

नोट

रामदेव संग भांवरि लैहो धनि-धनि भाग हमार॥
सुर तैंतीसूं कौतिग आए मुनिवर सहस अठासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरिस एक अविनासी॥

भावात्मक रहस्यवाद को उद्घाटित करने वाले इन पदों में कबीर ने शृंगार रस की योजना की है।

कबीर भले ही पढ़े-लिखे न हों पर उनका काव्य काव्यगत रमणीयता से रहित नहीं है। अलंकार, प्रतीक, भाषा, आदि सभी दृष्टियों से वह उच्चकोटि का काव्य है।



क्या आप जानते हैं

कबीर की भाषा को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'सधुक्कड़ी' अथवा 'पंचमेल खिचड़ी' कहा है। उनकी भाषा कई भाषाओं के मिश्रण से बनी है। कबीर को कहीं भी अभिव्यक्ति के लिए भाषा का संकट नहीं झेलना पड़ा। भाषा उनकी अनुगामिनी रही है आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसीलिए उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है।

कबीर के काव्य में 'प्रतीकों' का भी भरपूर प्रयोग है। उनकी उलटबांसियाँ सिद्धों से प्रभावित हैं जो विपरीत कथन के कारण लोगों को चमत्कृत करती हैं—

समुंदर लागी आग नदियाँ जलि कोइला भई।
देख कबीरा जाग मंछी रुखा चढ़ि गई।

यहाँ समुद्र-मूलाधार चक्र का प्रतीक है, नदियाँ चित्रवृत्तियों का प्रतीक हैं तथा 'मछली' कुंडलिनी के लिए प्रयुक्त है। निम्न पद में भी प्रतीकों का प्रयोग उन्होंने किया है—

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।
तेरे ही नाल सरोवर पानी॥
जल में उतपति जल में वास जल में नलिनी तोर निवास।
ना तल तपति न ऊपर आगि तोर हेतु कहु कासनि लाग।
कहैं कबीर जे उदिक समान ते नहिं मुए हमारेहि जान॥

इस पद में 'कमलिनी' जीवात्मा का तथा 'जल' परमात्मा का प्रतीक है। जीव एवं ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन इसमें अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से कबीर ने किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. दोनों ही जीव को विशुद्ध ब्रह्म मानते हैं तथा जो भिन्नता दिखाई पड़ती है वह के कारण है।
2. कबीर की पत्नी का नाम लोई, पुत्र का नाम कमल एवं पुत्री का नाम था।
3. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें कहा है।

कबीर के काव्य में रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि अनेक अलंकार प्रचुरता से उपलब्ध हो जाते हैं। वस्तुतः काव्य रचना करना उनका लक्ष्य नहीं था। कविता तो उनके लिए साधन थी जिसके माध्यम से वे अपनी बात जनता तक पहुँचाना चाहते थे। कबीर भले ही आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व पैदा हुए हों, किंतु उनकी शिक्षाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं।

2. **रामानंद**—जन्म 1368 ई. तथा मृत्यु 1468 ई.। कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, शिक्षा काशी में हुई। भक्तमाला के अनुसार, रामानंद के बारह शिष्य थे; जिनके नाम हैं—अनन्तानंद, सुखानंद, सुरसुरानंद, नरहर्यानंद, भावानंद, पीपा, कबीर, सेन, धन्ना, रैदास, सुरसुरी और पद्मावती। **रामानंद के शिष्यों में कबीर, पीपा, अनंतदास,**

नोट

धन्ना प्रसिद्ध हैं। इनके गुरु का नाम राघवानंद था। इन्होंने रामावत-संप्रदाय का प्रवर्तन किया। तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, वेदादि का विरोध करते हुए उन्होंने अंतःसाधना पर बल दिया। रामानंद के गुरु राघवानंद जी ने 'सिद्धांत पंच मात्रा' नामक ग्रंथ की रचना की।

3. **रैदास**—(1398-1448) जाति के चमार थे, काशी के निवासी थे। जन्मकाल के संबंध में निश्चयपूर्वक कहना संभव नहीं है। कुछ विद्वान इन्हें प्रसिद्ध कवयित्री मीरा का गुरु भी बताते हैं। रैदास का एक अन्य नाम रविदास भी है। संतबानी सीरीज के अंतर्गत इनकी रचनाओं का संकलन 'रविदास की बानी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इनके लिखे हुए 40 पद गुरु ग्रंथ साहब में भी संकलित हैं। रैदास का नाम रामानंद के 12 शिष्यों में है, किंतु रैदास की रचनाओं में कहीं भी रामानंद का उल्लेख नहीं है। निर्गुण ब्रह्म उनके लिए भी जिज्ञासा का विषय है। उनकी भाषा सरल ब्रजभाषा है जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली, उर्दू-फारसी के शब्द भी मिल जाते हैं। उनकी कविता का एक नमूना प्रस्तुत है—

अब कैसे छूटे राम नाम रट लागी।

प्रभुजी तुम चंदन हम पानी जाकी अंग-अंग वास समानी।

प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा॥

प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भगति करै रैदासा॥

4. **गुरु नानक**—(1469-1538 ई.) सिख संप्रदाय के प्रवर्तक गुरु नानक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। उनका जन्म 1469 ई. में तलवंडी में हुआ था जो अब ननकाना साहब के नाम से जाना जाता है। नानक के पद गुरु ग्रंथ साहब में संकलित हैं। **जपुजी, असा दीवार, रहिरास, सोहिला** उनकी रचनाओं के नाम हैं।

नानकदेव समन्वयशील एवं उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनके पिता का नाम **कालूचंद** और माता का नाम **तृप्ता** था। इनके दो पुत्र भी हुए—**लक्ष्मीचंद, श्रीचंद**। वे भ्रमणशील संत थे। निर्गुण ब्रह्म के प्रति भक्ति भावना उनके काव्य में विद्यमान है। **शांत रस की प्रधानता नानक की रचनाओं में है। उनकी भाषा पंजाबी एवं ब्रजभाषा मिश्रित है।** उनके पद राग-रागिनियों में निबद्ध हैं जिनमें करुण, शांत एवं शृंगार रस भी दिखाई पड़ता है।

5. **हरिदास निरंजनी**—ये निरंजनी संप्रदाय के कवि थे। इस संप्रदाय को नाथ पंथ एवं संत काव्य के बीच की कड़ी माना जा सकता है। इनके लिखे ग्रंथ हैं—**अष्टपदी, जोगग्रंथ, ब्रह्मस्तुति, हंसप्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजाजोग ग्रंथ, समाधिजोग ग्रंथ, संग्रामजोग ग्रंथ**। इन्होंने ब्रजभाषा में काव्य की रचना की है।

6. **दादूदयाल**—(1544-1603) इन्होंने दादू पंथ का प्रवर्तन किया। वे एक धर्म सुधारक एवं समाज सुधारक के रूप में प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि थे। इनके पंथ को **परमब्रह्म संप्रदाय** भी कहा जाता है। **रज्जब, सुंदरदास, प्रागदास, जनगोपाल** इनके प्रमुख शिष्य थे। उनकी रचनाओं का संकलन '**हरडेवाणी**' नाम से उनके शिष्यों—**संतदास एवं जगन्नाथ दास** ने प्रस्तुत किया है। **परशुराम चतुर्वेदी** द्वारा संपादित **दादूदयाल** में भी उनकी प्रमाणिक रचनाएँ संकलित हैं।



टास्क निर्गुण भक्ति साहित्य की पृष्ठभूमि पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

7. **मलूकदास**—इनका समय (1574-1682) मुगल काल में है। इनके लिखे ग्रंथों के नाम हैं—**ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तिविवेक, सुखसागर, भक्तवच्छावली, बारहखड़ी, स्फुटपद, राम अवतार लीला, ब्रजलीला तथा ध्रुवचरित**। आलसियों का **महामंत्र** इन्हीं का रचा हुआ है—

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।

दास मलूका कह गए सबके दाता राम।”

नोट

8. **सुंदरदास**—(1596-1689) ये दादूदयाल के शिष्य थे और प्रतिभाशाली कवि थे। इनके लिखे ग्रंथों में **ज्ञानसमुद्र** और **सुंदरविलास** प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं का संकलन **सुंदर ग्रंथावली** (दो भाग) में पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने किया है। **सुंदरदास** शृंगार रस के परम विरोधी थे। **केशव** की **रसिकप्रिया** और **नन्ददास** की **रसमंजरी** की निंदा उन्होंने अपने एक छंद में की है। उनकी रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। उक्त प्रमुख कवियों के अतिरिक्त **लाल पंथ** के प्रवर्तक **लालदास** (1540-1648 ई.), बाबालाली संप्रदाय के प्रवर्तक **बाबालाल** (1590-1655 ई.), **संत रज्जब** (1567-1689 ई.), **बाबरी पंथ की बाबरी साहिबा** (1542-1605 ई.), **संत सदाना**, **संत पीपा**, **संत सेन**, **संत धन्ना** (1415 ई.) भी संत कवियों में गिने जाते हैं। पंजाब में कुछ सिक्ख गुरुओं ने भी संत काव्य की रचना की है। इनमें प्रमुख हैं—गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जुन देव। गुरु अंगद ने नानक की रचनाओं का संकलन किया और ब्रजभाषा मिश्रित पंजाबी में सरस गेय पदों की रचना की। गुरु अर्जुन देव (1563-1606 ई.) एक अच्छे कवि थे। गुरु ग्रंथ साहिब में उनके 6,000 पद संकलित हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—**सुखमनी**, **बावनअखरी** और **बारहमासा**।
9. **शेख फरीद** (1472-1552 ई.) भी पंजाब के संत कवियों में उल्लेखनीय हैं। आदि ग्रंथ में इनके चार पद संकलित हैं। **संत वीरमान** की उपदेशपरक रचनाएँ '**बानी**' शीर्षक से संकलित की गई हैं। **अक्षर अनन्य** ने योग और वेदांत पर कई ग्रंथ लिखे तथा **दुर्गासप्तशती** का अनुवाद हिंदी पद्यों में किया।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. कबीर ने गुरु महिमा का पाठ से सीखा है।
 (क) सिद्ध पंथियों (ख) जैन पंथियों
 (ग) नाथ पंथियों (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
5. संतबानी सीरीज के अंतर्गत इनकी रचनाओं का संकलन शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।
 (क) गुरुदास की बानी (ख) रविदास की बानी
 (ग) कबीर की बानी (घ) रहीम की बानी
6. किसकी उपदेशपरक रचनाएँ बानी शीर्षक से संकलित की गई हैं?
 (क) संत वीरमान (ख) गुरु अमरदास
 (ग) गुरु रामदास (घ) गुरु अंगद

9.3 संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

1. संत काव्य भाव प्रधान है, कला प्रधान नहीं। वह ताजमहल की कुशल कारीगरी न होकर रम्य पर्वत श्रेणियों की भाँति सहज सुंदर है।
2. कविता करना इनका लक्ष्य न था। कविता तो इनके उपदेशों का साधन मात्र थी।
3. संत कवियों में प्रमुख कबीर भक्त और कवि बाद में हैं, समाज सुधारक पहले हैं।
4. **संत कवि निर्गुणोपासक थे।** वे ईश्वर को निर्गुण, निराकार, अजन्मा, अविनाशी एवं सर्वव्यापी मानते हैं। कभी-कभी वे इस निर्गुण को राम, गोविंद, हरि आदि नामों से भी पुकारते हैं।
5. संत काव्य में **ज्ञान की महत्ता** को प्रतिपादित किया गया है। यह ज्ञान वेद-पुराणों या कुरान से नहीं, अपितु चित्त की निर्मलता एवं हृदय की पावनता से प्राप्त किया जाता है। ज्ञान दशा में ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। विवेकयुक्त ज्ञान दृष्टि ही व्यक्ति को अज्ञान, अंधविश्वास एवं पाखंड से मुक्त करती है। ज्ञान की अग्नि जब माया के जल में लगती है तो विषय-वासना का कीचड़ नष्ट हो जाता है—

6. संत काव्य में **गुरु की महत्ता** का प्रतिपादन करते हुए उसे ईश्वर से भी बड़ा दर्जा दिया गया है। गुरु ही ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है, वही ज्ञान-नेत्र खोलता है। **‘गुरुदेव कौ अंग’** शीर्षक से संकलित साखियों में कबीर ने गुरु की महत्ता प्रतिपादित की है। गुरु की प्रतिष्ठा इन्होंने नाथ पंथ से ग्रहण की।
7. संत काव्य में **अद्वैतवादी दर्शन** को स्थान मिला है। इनकी दार्शनिक मान्यताएँ शंकर के अद्वैत दर्शन से प्रभावित हैं। ब्रह्म और जीवन की एकता का प्रतिपादन, माया के अस्तित्व को स्वीकार करना, ईश्वर को निर्गुण-निराकार बताना, आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता का प्रतिपादन—सब कुछ शंकर के अद्वैत दर्शन के अनुरूप है।
8. संत काव्य में **रहस्यवाद** की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। दांपत्य प्रतीकों के माध्यम से इन्होंने निर्गुण ब्रह्म के साथ माधुर्य भाव की भक्ति का समावेश करते हुए **भावात्मक रहस्यवाद** का विधान किया। कबीर का पद **‘दुलहिनि गावहु मंगलचार’** इसी प्रकार का भावात्मक रहस्यवादी पद है। दूसरी ओर, कुंडलिनी योग से संबंधित पदों में उन्होंने **साधनात्मक रहस्यवाद** का विधान किया है। **‘अवधू गगन मंडल घर कीजै’** पद में साधनात्मक रहस्यवाद की प्रवृत्ति है।
9. संत कवियों ने **बाह्याडंबरों** का खंडन किया। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, व्रत, रोजा, नमाज में इन्हें कोई विश्वास न था। हिंदू-मुसलमान दोनों को इन्होंने अंधविश्वासों, रूढ़ियों, धर्मान्धता के लिए फटकारा। वे धर्म के सामान्य तत्वों—सत्य, अहिंसा प्रेम, करुणा, संयम, सदाचार को मानव के लिए आवश्यक मानते हैं।
10. संत कवि जाति प्रथा के विरोधी थे। ऊँच-नीच, छुआछूत एवं वर्णाश्रम व्यवस्था को अभिशाप मानकर इन्होंने निर्भीकता से इनका खंडन किया। ब्राह्मण वर्ग इनके आक्रोश का शिकार बना। अधिकांश संत कवि स्वयं निम्न वर्ग से संबंधित थे अतः उच्च वर्ग की मुखर आलोचना संत काव्य में अस्वाभाविक न थी।
11. संत काव्य में शास्त्र का विरोध करते हुए स्वानुभूति पर बल दिया गया है। उनकी उक्ति में खरापन एवं निर्भीकता है जिसे जनता ने पसंद किया। उनके कथन अनुभूति प्रधान हैं। उनमें शास्त्रों की व्यर्थता प्रतिपादित की गई है।
12. संत कवियों का **नारी विषयक दृष्टिकोण** असंतुलित एवं अतिवादी है। वे नारी को नरक का द्वार एवं माया का प्रतिरूप बताते हैं। नारी निंदा करते हुए वे उसे ‘विष का बेल’ तक कह देते हैं। नारी के प्रति उनका यह दृष्टिकोण भी नाथपंथियों का प्रभाव है।
13. संत काव्य की **भाषा अपरिष्कृत** है। साहित्यिक भाषा के स्थान पर बोलचाल की भाषा का प्रयोग वे अपने वाक्य में करते थे। देशाटन के कारण उनकी भाषा में अनेक बोलियों एवं भाषाओं का मिश्रण दिखाई पड़ता है। ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, राजस्थानी, पंजाबी, फारसी, अरबी शब्दों के मिले-जुले रूप के कारण **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने उनकी भाषा को **सधुक्कड़ी भाषा** या **पंचमेल खिचड़ी भाषा** कहा है। अनगढ़ भाषा होने पर भी उनकी भाषा भाव संप्रेषण में पूर्ण सफल है। उसकी शक्ति एवं सामर्थ्य के कारण **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने कबीर को **वाणी का डिक्टेटर** तक कह दिया है।



टास्क संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं? उल्लेख कीजिए।

14. संत काव्य में **अलंकारों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए न होकर भावों के उत्कर्ष के लिए हुआ है**। वस्तुतः वे पिंगल शास्त्र के क ख ग से भी परिचित न थे। अतः काव्य में अलंकारों का समावेश कर सकने की शक्ति एवं सामर्थ्य उनमें थी ही नहीं। यह बात अलग है कि उनका काव्य अलंकार विहीन नहीं है। उसमें अनायास ही उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास का समावेश हो गया है।

15. संत काव्य में शांत रस की प्रधानता है। शृंगार रस का पूर्ण परिपाक भी उसमें हुआ है। कबीर की उलटबासियों में अद्भुत रस भी है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. ज्ञान दशा में ही ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता है।
8. अवध-गगन मंडल घर कीजै पद में साधनात्मक रहस्यवाद की पद्धति है।
9. अनगढ़ भाषा होने पर भी कबीर की भाषा भाव संप्रेषण में पूर्ण सफल है।

9.4 सारांश (Summary)

उपनिषदों द्वारा निरूपित ब्रह्म, जीव, जगत एवं माया के स्वरूप को संत कवियों ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया। संतों का साधना पक्ष और भक्ति भावना शंकर के अद्वैत दर्शन की देन है। दोनों ही जीवन को विशुद्ध ब्रह्म मानते हैं तथा जो भिन्नता दिखाई पड़ती है। वह माया के कारण है। आत्मा की सर्वरूपता, सर्वशक्तिमत्ता भी अद्वैत दर्शन के अनुरूप है।

9.5 शब्दकोश (Keywords)

1. प्रतिष्ठा—इज्जत, मान-सम्मान
2. पाखंड—ढोंग दिखाना, झूठा दिखावा करना
3. रूढ़ियाँ—पुरानी परंपराएँ जो मानव विकास में बाधा बनती हैं

9.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि तथा प्रमुख संत कवि और उनके योगदान का उल्लेख कीजिए।
2. संत काव्य की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं? वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

- | | | |
|----------|---------|-------------|
| 1. माया | 2. भाषा | 3. विद्यमान |
| 4. (ग) | 5. (ख) | 6. (क) |
| 7. असत्य | 8. सत्य | 9. सत्य |

9.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



- पुस्तकें
1. हिंदी साहित्य का इतिहास—द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।
 2. हिंदी साहित्य का इतिहास—टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।
 3. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
 4. हिंदी साहित्य का इतिहास—नगेंद्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

नोट

इकाई-10 : हिंदी सूफी काव्य परंपरा

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 हिंदी सूफी काव्य परंपरा तथा सूफी मत का वैचारिक आधार

10.2 सारांश (Summary)

10.3 शब्दकोश (Keywords)

10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- हिंदी सूफी काव्य परंपरा के अंतर्गत हिंदी सूफी मत का वैचारिक आधार जानने हेतु।
- हिंदी प्रेमाख्यान की परंपरा का वर्णन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सूफी काव्य में उपलब्ध प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है। सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर भारतीय परंपरा में हैं। यह प्रेमाख्यानक परंपरा महाभारत की अनेक कथाओं में उपलब्ध होती हैं। प्रेमाख्यानक परंपरा महाभारत से प्रारंभ होकर आधुनिक भाषाओं तक पहुँची। अवधी भाषा के साथ-साथ बंगला भाषा में भी इस प्रकार के प्रेमाख्यानक मिलते हैं। सूफी काव्य परंपरा विदेशी नहीं है अपितु इसकी जड़ें भारतीय पौराणिक साहित्य में उपलब्ध हैं।

10.1 हिंदी सूफी काव्य परंपरा तथा सूफी मत का वैचारिक आधार

भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अंतर्गत संत काव्य एवं सूफी काव्य नामक दो शाखाएँ हैं। सूफी काव्य के लिए प्रचलित कुछ अन्य नाम हैं—प्रेममार्गी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा, प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा, रोमांसिक कथा काव्य परंपरा आदि। स्पष्ट ही इस शाखा में प्रेमत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है। सूफी काव्य में उपलब्ध प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है। यह स्वच्छंद प्रेम है जिसे अंग्रेजी में 'रोमांस' कहा गया है। इस प्रेम भावना में स्वच्छंदता, सौंदर्यभावना, साहसपूर्ण क्रियाकलाप विद्यमान रहते हैं तथा यह मर्यादावादी दाम्पत्य प्रेम से हटकर है। स्वच्छंद प्रेम समाज की मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता। हिंदी के मध्यकालीन प्रेमाख्यान ग्रंथों में इसी 'रोमांस' का चित्रण किया गया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन प्रेमाख्यानकों पर फारसी मसनवियों का प्रभाव माना है, किंतु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार का प्रेम चित्रण भारतीय परंपरा में भी प्रचुरता से उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में उर्वशी-पुरुष का आख्यान, महाभारत का नल-दमयंती आख्यान, तप्ता-संवरण आख्यान और पुराणों में वर्णित

नोट

उषा-अनिरुद्ध, राधा-कृष्ण, प्रभावती-प्रद्युम्न आख्यान भी स्वच्छंद प्रेम की परिभाषा में आते हैं। स्वच्छंद प्रेम की यही परंपरा कालांतर में संस्कृत में वासवदत्ता, कादंबरी, दशकुमार चरित में दिखाई पड़ती है। शूद्रक ने 9वीं शताब्दी में कथा काव्य के लक्षण निर्धारण में यह स्वीकार किया है कि उसमें नायिकाओं को पाने के लिए साहसपूर्ण संघर्ष करना अनिवार्य होता है। राम का चरित्र यदि यथार्थवादी भारतीय चरित्र है तो कृष्ण का चरित्र भी स्वच्छंदतावादी भारतीय चरित्र है। ऐसी स्थिति में सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों को पूर्णतः विदेशी प्रभाव से युक्त मानना उचित नहीं है।



नोट्स भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अंतर्गत संत काव्य एवं सूफी काव्य नामक दो शाखाएँ हैं।

प्राकृत भाषा में गुणादय द्वारा रचित बृहत्कथा तथा क्षेमेंद्र के कथासरित्सागर की प्रेमकथाओं में प्रेम की उत्पत्ति सौंदर्य प्रेरणा से हुई है तथा नायक को नायिका के संरक्षकों का विरोध झेलना पड़ा है। यही नहीं अपितु कालिदास के मेघदूत का यक्ष, ऋग्वेद का पुरुरवा, कथासरित्सागर और दशकुमार चरित के नायक भी अत्यंत विरह कातर होकर नायिका के प्रणय की आकांक्षा करते दिखाए गए हैं, अतः नायक का विरह-विलाप भी अभारतीय पद्धति नहीं मानी जा सकती।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

1. सूफी में उपलब्ध प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है।
2. भारतीय परंपरा में भी प्रचुरता से उपलब्ध होता है।
3. स्वच्छंद प्रेम की यही कालांतर में संस्कृत में वासवदत्ता, कादंबरी, दशकुमार चरित में दिखाई पड़ती है।

फारसी मसनवियों में नायिका का विवाह प्रतिनायक से हो जाता है और नायक आत्महत्या कर लेता है पर भारतीय प्रेमाख्यानकों में किसी दैवी शक्ति की सहायता से नायक को नायिका की प्राप्ति अवश्य ही हो जाती है। यही नहीं इनमें हंस, शुक आदि पक्षियों द्वारा संदेश ले जाना, शिव-पार्वती आदि से सहायता मिलना, नायिका को पाने के लिए उसके संरक्षकों से युद्ध करना जैसे वृत्तांत भी हैं, जो फारसी मसनवियों में न होकर भारतीय पौराणिक आख्यानों के अनुरूप हैं, अतः यह कहना उचित होगा कि सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर भारतीय परंपरा में हैं।

वस्तुतः यह प्रेमाख्यानक परंपरा महाभारत की अनेक कथाओं में उपलब्ध होती है। प्रणय-स्वप्नों की पूर्ति के लिए सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन, कन्याओं का हरण तथा विवाह में आर्य-अनार्य के भेद का लोप भी वैध था। भीम ने असुरकन्या हिडिंबा से, अर्जुन ने नागकन्या चित्रांगदा से और कृष्ण ने ऋक्षकन्या जांबवती से विवाह किया था। महाभारत का नल-दमयंती वृत्तांत (वन पर्व) प्रेमाख्यानक काव्य की सभी विशेषताओं से युक्त है और डॉ. नगेंद्र ने इसी को भारतीय प्रेमाख्यानों की आधारभूमि माना है।



क्या आप जानते हैं सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर भारतीय परंपरा में रचित हैं।

तदनंतर हरिवंश पुराण में वर्णित कृष्ण-रुक्मिणी, प्रद्युम्न-प्रभावती और उषा-अनिरुद्ध आख्यानों में दी गई कथानक रूढ़ियाँ; यथा-देव मंदिर में पूजा हेतु गई नायिका से नायक की गुप्त भेंट, स्वप्न एवं चित्र दर्शन से प्रेम उत्पन्न

नोट

होना, नायक द्वारा वेश बदलकर दरबार में जाना, नायक का बंदी हो जाना, दैवी सहायता से लक्ष्य प्राप्त होना आदि का उपयोग हिंदी प्रेमाख्यानों में किया गया है। प्राकृत में रचित 'वृहत्कथा' यद्यपि मूल रूप में अनुपलब्ध है तथापि इसकी विषय-वस्तु का ज्ञान हमें इसी के आधार पर रचित 'वृहत्कथामंजरी' और 'कथासरित्सागर' से प्राप्त हो जाता है। वृहत्कथा के नायक उदयन के पुत्र नरवाहन दत्त के साहस, शौर्य एवं प्रेम की कहानियाँ भी इन प्रेमाख्यानों की आधारभूमि रही हैं। उक्त कथानकों में जिन प्रमुख कथासूत्रों का प्रयोग हुआ है, उसी का आधार सूफी प्रेमाख्यानों में लिया गया है। ये कथासूत्र इस प्रकार हैं—

1. नायिका के नाम के अंत में 'वती' आता है। यथा—पद्मावती।
2. नायिका किसी द्वीप की निवासिनी होती है यथा—सिंहलद्वीप।
3. स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन या गुणकथन से नायक-नायिका में प्रेम होना।
4. नायक द्वारा ब्राह्मण, भिक्षु, योगी का तपस्वी वेश में नायिका की खोज हेतु निकलना।
5. मंदिर या पुष्पवाटिका में नायक-नायिका की प्रथम भेंट होना।
6. नायिका के संरक्षक से नायक का युद्ध होना।
7. किसी सिद्ध, योगी, वेताल या देवता की सहायता से नायक को नायिका की प्राप्ति होना।

इस प्रकार बने हुए कथासूत्र में घटनाओं की प्रचुरता है, भाव व्यंजना कम है, किंतु संस्कृत में रचित वासवदत्ता (सुबंधु), कादंबरी (बाणभट्ट), दशकुमार चरित (दंडी) में इन प्रवृत्तियों के साथ-साथ भाव-व्यंजना एवं अलंकृत शैली की प्रधानता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर किस प्रकार परंपरा में हैं?
(क) चीनी (ख) यूरोपीय (ग) अफ्रीकी (घ) भारतीय
5. ने असुरकन्या हिडिंबा से, अर्जुन ने नागकन्या चित्रांगदा से और कृष्ण ने ऋक्षकन्या जांबवती से विवाह किया था।
(क) कर्ण (ख) भीम
(ग) युधिष्ठिर (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
6. वृहत्कथा के नायक के पुत्र नरवाहन दत्त के साहस, शौर्य एवं प्रेम की कहानियाँ भी इन प्रेमाख्यानों की आधारभूमि रही हैं।
(क) उदयन (ख) दशकुमार (ग) कलिदास (घ) कबीर

प्राकृत एवं अपभ्रंश के जैन कवियों द्वारा रचित प्रेम कथाओं—भुवन सुंदरी, मलय सुंदरी, लीलावती, भविस्यत्त भविसयत्त-कहा, जसहर चरित में गद्य के स्थान पर पद्यात्मक शैली का प्रयोग करते हुए नायक की सफलता किसी जैन तीर्थंकर या मुनि द्वारा दिखलाकर तथा नायक-नायिका को जैन धर्म में दीक्षित करते हुए संन्यास की ओर अग्रसर करके कथा का समापन शांत रस में कर दिया है।



टास्क

सूफी मत के वैचारिक आधार से आप क्या समझते हैं? वर्णन कीजिए।

नोट

निष्कर्ष यह है कि यह प्रेमाख्यानक परंपरा 'महाभारत' से प्रारंभ होकर आधुनिक भाषाओं तक पहुँची। अवधी भाषा के साथ-साथ बंगला भाषा में भी इस प्रकार के प्रेमाख्यानक मिलते हैं। पाश्चात्य विद्वानों बेनफी, कीलर और हर्टेल ने तो यहाँ तक कहा है कि भारतीय प्रेमाख्यानकों की एक शाखा सिकंदर के साथ यूनान, रोम, इटली, जर्मनी, स्पेन, इंग्लैंड तक पहुँची और इसी ने वहाँ रोमांटिसिज्म को आधारभूमि प्रदान की। इतना तो कहा ही जा सकता है कि सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा विदेशी नहीं है अपितु इसकी जड़ें भारतीय पौराणिक साहित्य में उपलब्ध हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

- नायिका किसी सिंहलद्वीप की निवासिनी नहीं होती है यथा—पद्मावती।
- प्रेमाख्यानक परंपरा महाभारत से प्रारंभ होकर आधुनिक भाषाओं तक पहुँची।

10.2 सारांश (Summary)

- भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अंतर्गत संत काव्य एवं सूफी काव्य नामक दो शाखाएँ हैं। सूफी काव्य के लिए प्रचलित कुछ अन्य नाम हैं—प्रेममार्गी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा, प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा, रोमांसिक कथा काव्य परंपरा आदि।
- स्वच्छंद प्रेम समाज की मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता। हिंदी के मध्यकालीन प्रेमाख्यान ग्रंथों में इसी 'रोमांस' का चित्रण किया गया है।
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन प्रेमाख्यानकों पर फारसी मसनवियों का प्रभाव माना है, किंतु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार का प्रेम चित्रण भारतीय परंपरा में भी प्रचुरता से उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में उर्वशी-पुरुष का आख्यान, महाभारत का नल-दमयंती आख्यान, तप्ता-संवरण आख्यान और पुराणों में वर्णित उषा-अनिरुद्ध, राधा-कृष्ण, प्रभावती-प्रद्युम्न आख्यान भी स्वच्छंद प्रेम की परिभाषा में आते हैं।
- फारसी मसनवियों में नायिका का विवाह प्रतिनायक से हो जाता है और नायक आत्महत्या कर लेता है पर भारतीय प्रेमाख्यानकों में किसी दैवी शक्ति की सहायता से नायक को नायिका की प्राप्ति अवश्य ही हो जाती है। यही नहीं इनमें हंस, शुक आदि पक्षियों द्वारा संदेश ले जाना, शिव-पार्वती आदि से सहायता मिलना, नायिका को पाने के लिए उसके संरक्षकों से युद्ध करना जैसे वृत्तांत भी हैं, जो फारसी मसनवियों में न होकर भारतीय पौराणिक आख्यानों के अनुरूप हैं, अतः यह कहना उचित होगा कि सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमाख्यानक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर भारतीय परंपरा में हैं।

10.3 शब्दकोश (Keywords)

- यथार्थवादी—सत्य बोलने वाला
- निष्कर्ष—परिणाम
- काव्य परंपरा—इतिहास से चली आ रही काव्य की परंपरा, नियम आदि

10.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

- सूफी मत के वैचारिक आधार से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
- हिंदी प्रेमाख्यानों की परंपरा के विषय में बताइए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

- | | | |
|----------|-----------------|-----------|
| 1. काव्य | 2. प्रेम-चित्रण | 3. परंपरा |
| 4. (घ) | 5. (ख) | 6. (क) |
| 7. असत्य | 8. सत्य | |

10.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

नोट

इकाई-11 : प्रमुख सूफी कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 प्रमुख सूफी कवि और काव्य प्रवृत्तियाँ

11.1.1 सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ

11.1.2 प्रमुख सूफी ग्रंथों का परिचय/प्रेमाख्यानों की परंपरा

11.1.3 महत्वपूर्ण स्मरणीय/बिंदु

11.2 सारांश (Summary)

11.3 शब्दकोश (Keywords)

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ समझने में।
- प्रमुख सूफी काव्य ग्रंथों का परिचय/प्रेमाख्यानों की परंपरा को जानने में।
- महत्वपूर्ण स्मरणीय बिंदु को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में भारतीय एवं ईरानी-काव्य रूढ़ियों का समावेश भी किया है। इन प्रेमगाथाओं में प्रायः वे सभी काव्य रूढ़ियाँ मिल जाती हैं जो परंपरा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही हैं। यथा-चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन या शुक्र-सारिका द्वारा नायिका का रूप देख-सुनकर उस पर आसक्त हो जाना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत प्राप्त करना तथा मंदिर या उपवन में प्रेमी-युगल का मिलन होना इत्यादि। सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक प्रबंध-काव्य हैं, जिनमें कथा तत्व का समावेश है। इन प्रबंध काव्यों के कथा स्रोत भारतीय पुराण, इतिहास एवं अन्य लोक प्रचलित प्रेम कहानियाँ हैं।

11.1 प्रमुख सूफी कवि और काव्य प्रवृत्तियाँ**11.1.1 सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ**

सूफी प्रेमाख्यानकों की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है-

1. **मुसलमान कवि एवं मसनवी शैली**-सूफी काव्यधारा के अधिकांश कवि मुसलमान हैं, परंतु उनमें धार्मिक कट्टरता का अभाव है। इन सूफी कवियों ने सूफी मत का प्रचार-प्रसार करने के लिए हिंदुओं

के घरों में प्रचलित प्रेम कहानियों को अपने काव्य का विषय बनाया। जायसी ने पद्मावत में जिस प्रेमकथा को लिया है वह राजा रत्नसेन और राजकुमारी पद्मावती की ऐतिहासिक प्रेमगाथा है। इन्होंने चरित काव्यों को सूफियों की मसनवी शैली में प्रस्तुत किया। इस शैली के अंतर्गत वे प्रथम ईश्वर वंदना (हम्द) तत्पश्चात् हजरत मुहम्मद की स्तुति (नअत), तदुपरांत मुहम्मद साहब के चार मित्रों की प्रशंसा (मकबत) और फिर शाहे वक्त (तत्कालीन शासन) की प्रशंसा (मद्ह) की जाती है। इसके बाद गुरु महिमा का निरूपण करने के साथ-साथ अपनी आस्थाओं एवं धार्मिक विश्वासों की विवेचना भी की जाती है। हिंदू कवियों द्वारा भी कुछ प्रेमाख्यानक लिखे गए हैं, परंतु उनमें इस पद्धति का अनुसरण नहीं किया गया है।

2. **प्रेमगाथाओं का नामकरण**—सूफी कवियों ने प्रेमगाथाओं का नामकरण प्रायः नायिका के आधार पर किया है। उदाहरण के लिए जायसी कृत पद्मावत का नामकरण इसकी नायिका पद्मावती के नाम पर है तो मंझन कृत मधुमालती तथा कुतुबन कृत मृगावती नामक रचनाओं का नामकरण भी नायिका के नाम को आधार बनाकर किया गया है। कुछ ऐसी रचनाएँ भी हैं जिनमें नायिका के नाम के साथ कथा शब्द जोड़कर नाम रखा गया है, यथा—सत्यवती कथा। इन काव्य ग्रंथों में नायिका को ईश्वरीय जलाल (ज्योति) और जमाल (सौंदर्य) से मंडित दिखाया गया है। ये ही ग्रंथ का केंद्र बिंदु भी रही हैं, अतः उसके आधार पर किया गया नामकरण नितांत उपयुक्त माना जा सकता है।
3. **अलौकिक प्रेम की व्यंजना**—प्रेमगाथा काव्य परंपरा के अधिकांश कवियों ने लौकिक प्रेमकथाओं के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। राजा रत्नसेन एवं पद्मावती के जिस प्रेम का उल्लेख 'पद्मावत' में किया गया है वह इसी प्रकार का है। यहाँ रत्नसेन आत्मा का प्रतीक है और पद्मावती परमात्मा का प्रतीक, अतः रत्नसेन के हृदय में जो लालसा पद्मावती से मिलन के लिए है उसे आत्मा की परमात्मा के प्रति मिलन की अभिलाषा ही समझा जाना चाहिए। अलौकिक प्रेम की इस व्यंजना के कारण सूफी कवियों की रचनाओं में रहस्यवाद का समावेश हो गया है। पद्मावत में कथा के बीच-बीच में ऐसे अनेक संकेत दिए गए हैं, जो पद्मावती को परमात्मा का प्रतीक मानने के लिए बाध्य करते हैं। समासोक्ति और अन्योक्ति के कारण पद्मावत में दुहरे अर्थों की व्यंजना करने वाले अनेक प्रसंग देखे जा सकते हैं। कवि ने इन प्रसंगों की योजना अलौकिक प्रेम की व्यंजना करने के लिए ही की है। उदाहरण के लिए पद्मावती के नख-शिख चित्रण में उसकी दंत पंक्ति की शोभा का वर्णन करते समय संसार के सभी पदार्थों में उस ज्योति को दिखा दिया गया है—

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।

रतन पदारथ मानिक मोती।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूफी कवियों के काव्य में पाई जाने वाली रहस्यवादी प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए इसे भावात्मक कोटि का रहस्यवाद स्वीकार किया है—“यदि कहीं सच्चे भावात्मक रहस्यवाद के दर्शन होते हैं, तो वह जायसी आदि सूफी कवियों में।”

4. **कथा-संगठन एवं कथानक रूढ़ियाँ**—सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक प्रबंध-काव्य हैं, जिनमें कथा तत्व का समावेश है। इन प्रबंध काव्यों के कथा स्रोत भारतीय पुराण, इतिहास एवं अन्य लोक प्रचलित प्रेम कहानियाँ हैं। इन कवियों ने जिन प्रेमगाथाओं का चयन किया है, वे प्रायः एक ही साँचे में ढली हुई हैं। कथावस्तु में अपेक्षित गति न होकर शिथिलता है। वस्तु वर्णन की प्रधानता होने के कारण कथा-प्रवाह में व्याघात पड़ा है तथा कहीं-कहीं नीरसता भी आ गई है। कथावस्तु में असाधारण एवं रोमांचक घटनाओं की अधिकता भी दिखाई पड़ती है।

इन कवियों ने अपनी रचनाओं में भारतीय एवं ईरानी काव्य-रूढ़ियों का समावेश भी किया है। इन प्रेमगाथाओं में प्रायः वे सभी काव्य-रूढ़ियाँ मिल जाती हैं जो परंपरा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही हैं, यथा—चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन या शुक-सारिका द्वारा नायिका का रूप देख-सुनकर उस पर आसक्त हो जाना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत प्राप्त करना तथा मंदिर या उपवन में प्रेमी-युगल का मिलन होना इत्यादि। इसी प्रकार कुछ कथानक रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से भी ली गई हैं, यथा—प्रेम व्यापार में परियों एवं अलौकिक शक्तियों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमारी

नोट

द्वारा प्रेमी को गिरफ्तार करवा लेना इत्यादि। जायसी ने पद्मावत में ऐसी अनेक कथानक रूढ़ियों की योजना की है। मानसरोवर में पद्मावती का सखियों के साथ स्नान करना, नायिका को विरह ताप चढ़ने पर वैद्य द्वारा नाड़ी परीक्षा करना, बारहमासा के द्वारा विरह निरूपण, समुद्री तूफान से नौका का टूट जाना तथा शंकर-पार्वती द्वारा सहायता करना इसी प्रकार की कथानक रूढ़ियाँ हैं।

5. **चरित्र-चित्रण**—सूफी प्रेमाख्यानकों में नायक-नायिकाओं के चरित्रांकन की एक जैसी पद्धति दिखाई पड़ती है। उनमें जीवन के विविध घात-प्रतिघातों का अभाव है। नायक को प्रायः राजकुमार दिखाते हुए उसे सहृदय, साहसी, प्रेमी एवं परदुःखकातर बताया गया है जबकि नायिका अनिद्य सुंदरी, रूपगर्विता, बुद्धिमती राजकन्या के रूप में चित्रित की गई है। प्रायः सभी कवियों ने भारतीय वातावरण एवं मर्यादाओं के अनुरूप नायक-नायिका का चरित्र-चित्रण किया है। प्रेम पथ की कठिनाइयों का चित्रण करते हुए नायक के चरित्र को उभारने का प्रयास प्रायः सभी सूफी प्रेमागाथाओं में किया गया है। नायक को नायिका के रूप सौंदर्य के प्रति आकृष्ट होकर उसे प्राप्त करने के लिए अनेक संघर्षों से गुजरना पड़ता है। ये संघर्ष ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में आने वाले संघर्षों के द्योतक हैं। सूफी प्रेमाख्यानकों में कुछ मानवेतर पात्र भी हैं? यथा—पद्मावत में हीरामन तोता, जिसे एक विद्वान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कथा का विकास करने में ऐसे पात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वस्तुतः सूफी कवियों का ध्यान चरित्र-चित्रण पर उतना केंद्रित नहीं रहा जितना कथा-वैचित्र्य एवं वर्णन विस्तार पर रहा है। उन्होंने ऐतिहासिक एवं काल्पनिक दोनों वर्गों के पात्रों की योजना अपनी रचनाओं में की है। ऐतिहासिक पात्रों का व्यक्तित्व भी इतिहास के अनुरूप न होकर कल्पना से अधिक निर्मित किया है। कुछ पात्र काल्पनिक होते हुए भी बेजोड़ हैं। ‘पद्मावत’ की नागमती इसी प्रकार की एक अद्वितीय पात्र है जो भारतीय रमणी का आदर्श कही जा सकती है।
6. **लोकपक्ष एवं हिंदू संस्कृति का चित्रण**—प्रेमाख्यानक कवियों ने अपनी रचनाओं में लोक जीवन का पर्याप्त चित्रण किया है। जन सामान्य में प्रचलित अंधविश्वास, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, लोक व्यवहार का सुंदर दिग्दर्शन इन काव्य ग्रंथों में कराया गया है साधारण जनता के व्रत, उत्सव, तीर्थ, पर्व, लोकाचार और उनके सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का विवरण भी इनमें उपलब्ध हो जाता है। सूफी कवियों ने हिंदू घरों में प्रचलित लोकप्रिय प्रेम कथाओं को अपने काव्य का विषय बनाया था, अतः हिंदू धर्म के स्थूल सिद्धांतों, रहन-सहन और आचार-विचार का निरूपण भी इनमें यथावसर किया गया है। सूफी कवि हिंदू धर्म एवं संस्कृति की सामान्य जानकारी रखते थे। अतः प्रसंगानुसार उन्होंने अपने पौराणिक ज्ञान, ज्योतिष, आयुर्वेद की यत्किंचित जानकारी का उपयोग अपने काव्य ग्रंथों में किया है। भारतीय साहित्यिक परंपरा के अनुरूप ही इन कवियों ने अपनी रचनाओं में नख-शिख वर्णन एवं बारहमासे की योजना की है।
7. **भाव एवं रस व्यंजना**—सूफी कवियों का मूल प्रतिपाद्य है—प्रेम, अतः इनकी रचनाओं में शृंगार रस की प्रधानता रही। शृंगार के दोनों ही पक्षों—संयोग एवं वियोग का प्रभावपूर्ण चित्रण इन प्रेमाख्यानों में किया गया है। सौंदर्य निरूपण के अंतर्गत नायिका के नख-शिख, रूप-रंग, हाव-भाव का चित्रण करने के साथ-साथ उसकी विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता एवं कला विशारदता का उल्लेख भी किया है। संयोग शृंगार के अंतर्गत रूप चित्रण की प्रधानता रही है। नायिका का अद्भुत सौंदर्य वस्तुतः परमात्मा का ही नूर है, अतः संपूर्ण सृष्टि में उसी का आभास उन्हें होता है। संयोग शृंगार के अंतर्गत नायक-नायिका के मिलन का चित्रण करते हुए काम-क्रीड़ा का वर्णन भी किया है जिससे कहीं-कहीं अश्लीलता आ गई है। वियोग वर्णन के अंतर्गत उन्होंने बारहमासे की योजना की है। पद्मावत में नागमती के विरह की सुंदर अभिव्यक्ति बारहमासे के द्वारा जायसी ने की है। यह विरह वर्णन हिंदी काव्य की अनूठी निधि है। शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों की योजना भी इन काव्य ग्रंथों में की गई है। उदाहरण के लिए पद्मावत में गोरा-बादल युद्ध खंड के अंतर्गत वीर, रौद्र एवं वीभत्स रसों का सुंदर परिपाक हुआ है।
8. **वस्तु वर्णन**—प्रेमाख्यानक काव्य ग्रंथों में वस्तु वर्णन की प्रधानता दिखाई देती है। ये कवि मूल कथा के साथ-साथ वस्तु, दृश्य एवं घटना का विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। जायसी के पद्मावत में वन, वाटिका, समुद्र, पर्वत, नगर, पर्व, उत्सव, भोज्य सामग्री एवं वस्त्राभूषणों का विविध प्रकार से वर्णन करते हुए वस्तु वर्णन की ओर अपनी रुचि दिखाई है। उन्होंने अपनी अद्भुत

कल्पना शक्ति का परिचय देते हुए वस्तु वर्णन के अंतर्गत अपने ज्ञान का प्रदर्शन भी किया है। इन कवियों के वस्तु वर्णन पर टिप्पणी करते हुए डॉ. सरला शुक्ल ने लिखा है—“कहीं-कहीं वस्तु वर्णन इतना विस्तृत है कि उससे कवियों के वस्तु ज्ञान के प्रदर्शन के अतिरिक्त कौतूहल, आकर्षण या प्रभावशीलता में किंचित भी वृद्धि नहीं हो पाती।” सूफी कवियों के द्वारा अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में किया गया यह वस्तु वर्णन उनके काव्य का एक दुर्बल पक्ष ही माना जाएगा।

9. **खंडन-मंडन का अभाव**— सूफी ने किसी विशेष संप्रदाय का खंडन-मंडन नहीं किया। संत कवियों में जहाँ यह प्रवृत्ति उग्र थी, वहीं सूफियों में इसका अभाव था। इन कवियों ने सूफी मत का प्रचार करने के लिए प्रेमगाथाओं की रचना अवश्य की किंतु कहीं पर भी किसी अन्य धर्म या संप्रदाय के विरुद्ध एक भी बात नहीं कही। इन्होंने अपने मत का प्रचार करने के लिए काव्य की सरसता का सहारा लिया जिसके कारण हिंदुओं में भी ये काफी लोकप्रिय कवि हुए। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूफी कवियों की इस विशेषता को स्पष्ट करते हुए लिखा है—“प्रेम स्वरूप ईश्वर को सामने लाकर सूफी कवियों ने हिंदू और मुसलमान दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटाकर पीछे कर दिया।” सच्चे अर्थों में सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा प्रेम के सार्वभौमिक स्वरूप की स्थापना की।
10. **काव्य रूप**—आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूफी प्रेम गाथाओं को फारसी की मसनवी शैली में रचित काव्य ग्रंथों के अंतर्गत माना है। उनके अनुसार ईश वंदना, शाह वक्त का उल्लेख, कथा का सर्गों में विभक्त न होना तथा संपूर्ण ग्रंथ में एक ही छंद का प्रयोग आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण इन्हें मसनवी रचनाएँ कहा जाना उपयुक्त है जबकि कुछ अन्य विद्वानों ने उनके मत को अस्वीकार किया है। इनमें प्रमुख हैं डॉ. गणपति चंद्र गुप्त। इनके अनुसार इन्हें कथा-काव्य कहा जाना उचित है।
सूफी कवियों के ये प्रेमाख्यानक प्रबंध काव्य के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि इनमें एक सानुबंध कथा की योजना की गई है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने सूफी कवियों के काव्य रूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है—“सूफी प्रेमाख्यानक एक ऐसी रचना है जिसमें किसी प्रबंध काव्य के प्रायः सभी तत्व विद्यमान हैं, किंतु जिसमें इसके साथ ही कथा आख्यायिका, जैन चरित काव्य एवं मसनवी की भी विशेषताओं का समन्वय हो गया है और यही इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।”
प्रबंध काव्यों में वर्णनात्मकता के लिए दोहा-चौपाई शैली सर्वथा उपयुक्त है। सूफी कवियों ने इसी ‘कड़वक’ शैली को अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है।
11. **भाषा एवं अलंकार योजना**—सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में अवधी भाषा का प्रयोग किया है। जायसी ने पद्मावत में जिस अवधी का प्रयोग किया है, वह ठेठ ग्रामीण अवधी है, अतः उसमें वैसी साहित्यिकता एवं संस्कृतनिष्ठता दिखाई नहीं पड़ती जो तुलसी की भाषा में विद्यमान है। जायसी की भाषा में अवधी के लोक प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों का समावेश भी हुआ है। जायसी की भाषा की एक उल्लेखित विशेषता यह है कि मुसलमान होते हुए भी उनकी भाषा में अरबी-फारसी की अपेक्षा संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों को वरीयता दी गई है। कुछ अन्य सूफी कवियों पर क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए उसमान की भाषा पर भोजपुरी का प्रभाव है तो नूर मुहम्मद की भाषा पर कहीं-कहीं ब्रजभाषा का प्रभाव दिखाई पड़ता है।
सूफी कवियों ने अलंकारों की योजना भी अपनी रचनाओं में की है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग इन कवियों में प्रायः सौंदर्य वर्णनों में किया है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इन्होंने उपमानों का चयन भारतीय पृष्ठभूमि से किया है। जायसी के काव्य में पाए जाने वाले उपमान संख्या की दृष्टि से किसी भी कवि की तुलना में सर्वाधिक हैं। इन्होंने श्लेष, व्यतिरेक, विभावना, अनुप्रास, संदेह जैसे अलंकारों का प्रयोग भी किया है। इन प्रेमाख्यानों में जहाँ दुहरे अर्थों की व्यंजना हुई है वहाँ प्रकरण के अनुरूप समासोक्ति या अत्योक्ति मानी जाएगी। इन कवियों की अलंकार योजना में भाव-व्यंजकता अधिक है, चमत्कार प्रदर्शन कम, यही कारण है कि इनके काव्य में शब्दालंकारों का प्रयोग बहुत कम हुआ है।



टास्क सूफी प्रेमाख्यानकों की प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।

नोट

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन हिंदी साहित्य में सूफी कवियों के प्रेमाख्यानकों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन रचनाओं ने एक ओर तो प्रेम के ऐसे लोकोत्तर स्वरूप की प्रतिष्ठा की जो ईश्वर तक ले जाने वाला है तो दूसरी ओर सहिष्णुता, उदारता और भाईचारे का पाठ पढ़ाया। हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों द्वारा जन साधारण के ज्ञान कोश में पर्याप्त वृद्धि हुई क्योंकि इनके रचयिताओं ने दर्शन, धर्म, नीति, कामशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों की जानकारी का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। मध्यकालीन संस्कृति एवं लोकजीवन के विविध पक्षों का सहज स्वाभाविक चित्रण भी इनमें हुआ है। काव्यत्व की दृष्टि से भी इन ग्रंथों का महत्व निर्विवाद है। सौंदर्य, प्रेम और विरह की जो त्रिवेणी इन ग्रंथों में उपलब्ध होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। साथ ही इन ग्रंथों में साहस, त्याग और बलिदान की जो उदात्त वृत्तियाँ इनके नायकों के चरित्र के माध्यम से प्रदर्शित की गई हैं, उसे इनकी प्रमुख विशेषता माना जा सकता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इन रचनाओं में प्रेम के गंभीर, उदात्त एवं भव्य रूप का गरिमापूर्ण चित्रण हुआ है, जिससे इन्हें हिंदी साहित्य में उच्च स्थान प्रदान किया जा सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. जायसी ने पद्मावत में जिस प्रेमकथा को लिया है वह राजा और राजकुमारी पद्मावती की ऐतिहासिक प्रेमगाथा है।
2. प्रेम पथ की कठिनाइयों का चित्रण करते हुए नायक के चरित्र को उभारने का प्रयास प्रायः सभी सूफी में किया गया है।
3. में सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा प्रेम के सार्वभौमिक स्वरूप की स्थापना की।

11.1.2 प्रमुख सूफी ग्रंथों का परिचय/प्रेमाख्यानकों की परंपरा

1. **चंदायन**—‘चंदायन’ अथवा ‘चांदायन’ को डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने ‘लोरकथा’ नाम भी दिया है। इस ग्रंथ की रचना सूफी कवि **मुल्ला दाऊद** ने 1379 ई. में की थी। विषय-वस्तु की दृष्टि से इसमें भारतीय प्रेमाख्यानकों की विभिन्न प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं। इसके नायक का नाम **लोर** (अथवा लोरिक) है तथा नायिका का नाम चंदा है। दोनों के उन्मुक्त प्रेम का चित्रण इस प्रेमाख्यानक में किया गया है। प्रथम दर्शन में प्रेम की उत्पत्ति, विभिन्न व्यक्तियों द्वारा उनके प्रेम में बाधा उत्पन्न करना, नाग द्वारा नायिका को डस लेना और गारुड़ी द्वारा उसे ठीक करना इसमें दिखाया गया है। इस ग्रंथ की भाषा अवधी है। इसकी रचना प्राकृत-अपभ्रंश में प्रचलित कड़वक शैली में की गई है जिसमें **पांच अर्द्धालियों** के बाद एक दोहा होता है। छंद विधान एवं प्रबंध व्यवस्था की दृष्टि से यह पूर्णतः भारतीय परंपरा का पालन करने वाला काव्य ग्रंथ है, सूफी काव्य की मसनवी शैली का अनुसरण इसमें नहीं किया गया है।
2. **मृगावती**—‘मृगावती’ को आचार्य रामचंद्र शुक्ल सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा का पहला ग्रंथ मानते हैं, किंतु डॉ. नगेंद्र ने ‘हंसावली’ को सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा का पहला ग्रंथ स्वीकार किया है। ‘मृगावती’ की रचना 1503 ई. में ‘कुतुबन’ ने की। इसका नायक एक **राजकुमार** है तथा नायिका राजकुमारी मृगावती है। मृगावती के प्रथम दर्शन से ही नायक के हृदय में प्रेम उत्पन्न हो जाता है और वह उसे प्राप्त करने हेतु योगी का वेश धारण कर घर से निकल जाता है। मार्ग में एक अन्य सुंदरी को राक्षस के चंगुल से निकालकर उससे विवाह करता हुआ अंत में मृगावती को प्राप्त कर लेता है। इस ग्रंथ की कथा की परिणति शांत रस में हुई है, क्योंकि अपभ्रंश के काव्यों की भाँति इसके नायक की मृत्यु

नोट

हो जाती है और नायिकाएँ सती हो जाती हैं। यह ग्रंथ अवधी भाषा में लिखा गया है। इसमें भी **कड़वक शैली** (दोहा-चौपाई शैली) का ही प्रयोग किया गया है।

3. **मधुमालती**—‘मधुमालती’ की रचना ‘मंझन’ ने 1545 ई. में की। इसके नायक का नाम मनोहर एवं नायिका का नाम मधुमालती है। नायक मनोहर का नायिका मधुमालती के प्रति एकनिष्ठ प्रेम है। उसे पाने के लिए वह अनेक कष्ट सहन करता है और महासुंदरी प्रेमा के प्रणय प्रस्ताव को ठुकरा देता है। सामान्यतः नायक को बहुपत्नीवादी दिखाया जाता रहा है, किंतु यह प्रेमाख्यान इस दृष्टि से अपवाद है। इसमें भी वे सभी कथानक रूढ़ियाँ मिलती हैं जो अन्य प्रेमाख्यानकों में उपलब्ध होती हैं। प्रथम दर्शन जन्म प्रेम के साथ-साथ पूर्व जन्म के प्रणय की महत्ता भी इसमें दिखाई गई है। **नायिका** को पाने के लिए नायक योगी वेश धारण कर घर से निकलता है, रास्ते में किसी अन्य राजकुमारी को राक्षस से बचाता है, माँ के शाप के कारण नायिका पक्षी बन जाती है। कवि का मूल उद्देश्य उदात्त प्रेम का चित्रण करना ही है। इस ग्रंथ की भाषा अवधी है तथा इसमें दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग हुआ है।
4. **पद्मावत**—मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा पद्मावत की रचना 1540 ई. में की गई। इसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन एवं सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की प्रेमकथा का वर्णन है। कथावस्तु दो भागों में विभक्त की जा सकती है—पूर्वाद्ध में रत्नसेन-पद्मावती के विवाह तक की कथा है, जबकि उत्तराद्ध में अलाउद्दीन की चित्तौड़ पर चढ़ाई की कथा है। विद्वानों ने पूर्वाद्ध को काल्पनिक एवं उत्तराद्ध को ऐतिहासिक माना है। डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार “पद्मावत की कथा पर प्राकृत भाषा में रचित ‘रत्नशेखर’ कथा का प्रभाव है। पद्मावत अवधी भाषा में रचित हिंदी का महाकाव्य है। इसमें भी उन कथानक रूढ़ियों को देखा जा सकता है जो अन्य सूफी प्रेमाख्यानकों में मिलती हैं। पद्मावत के पात्र प्रतीक हैं तथा यह पूरा काव्य ग्रंथ एक ‘रूपक’ काव्य भी माना गया है। रत्नसेन जीवात्मा का तथा पद्मावती परमात्मा का प्रतीक है।”

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

4. किस ग्रंथ की रचना सूफी कवि मुल्ला दारुद ने 1379 ई. में की थी?
(क) पद्मावत (ख) चंदायन (ग) मधुमालती (घ) मृगावती
5. कौन-सा ग्रंथ अवधी भाषा में लिखा गया है?
(क) मधुमालती (ख) पद्मावत (ग) मृगावती (घ) चंदायन
6. विद्वानों ने पूर्वाद्ध पद्मावत को काल्पनिक एवं उत्तराद्ध को माना है।
(क) प्रासंगिक (ख) प्रमाणिक
(ग) ऐतिहासिक (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

11.1.3 महत्त्वपूर्ण स्मरणीय बिंदु

1. प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा में सूफी कवियों के अतिरिक्त अन्य कवि भी हैं। सूफी प्रेमाख्यानकों में अनिवार्यतः सूफी धर्म की मान्यताओं का निरूपण है किंतु सभी प्रेमाख्यानकों में नहीं। ये प्रेमाख्यान प्रेम, सौंदर्य, विरह, साहस, स्वच्छंदता आदि से परिपूर्ण हैं।
2. **जायसी** सूफी कवियों में सर्वप्रमुख हैं तथा उनके द्वारा रचित **पद्मावत** सूफी काव्यधारा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अतिरिक्त जायसी के दो अन्य ग्रंथ भी हैं—**अखरावट** एवं **आखिरी कलाम**। अखरावट में वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर को लेकर **सिद्धांत निरूपण** किया गया है, जबकि **आखिरी कलाम** में **कयामत** का वर्णन किया गया है। ये दोनों ग्रंथ भी अवधी भाषा में ही रचे गए हैं।
3. माधवानकाल-कामकंदला की प्रसिद्ध प्रेम कथा को लेकर इसी नाम से तीन ग्रंथ लिखे गए हैं जो क्रमशः

नोट

गणपति, कल्लोल एवं आलम द्वारा रचित हैं। आलम ने नायक-नायिका के केवल एक जन्म तक ही कथावस्तु को सीमित रखा है जबकि अन्य दो में कई जन्मों का वृत्तांत है।

4. **जान कवि** (1612-1664 ई.) ने 78 काव्य ग्रंथों की रचना की जिनमें से 29 प्रेमाख्यान ग्रंथ हैं। इनके लिखे प्रेमाख्यानकों में कुछ प्रमुख के नाम हैं—कथा रत्नावली, कथा कनकावती, कथा कंवलावती, कथा मोहिनी, कथा नल-दमयंती, कथा कलावती, कथा रूपमंजरी, कथा कलंदर आदि। इनमें कथा-काव्य के लक्षणों का निर्वाह किया गया है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार, “कदाचित वे हिंदी के पहले कवि हैं जिन्होंने फारसी के लैला-मजनूँ आख्यान को लेकर ‘ग्रंथ लैला-मजनूँ’ की रचना की।” उनके कथा काव्यों की रचना राजस्थानी प्रभावित ब्रजभाषा है। साथ ही उन्होंने प्रेमाख्यानकों की शैली ‘दोहा-चौपाई शैली’ के साथ-साथ कवित्त-सवैया शैली का प्रयोग भी किया है।
5. जायसी का **पद्मावत** अवधी भाषा में लिखित हिंदी का प्रमुख महाकाव्य माना जाता है। इसकी कथावस्तु का पूर्वार्द्ध कल्पित एवं उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक माना जाता है। डॉ. हरदेव बाहरी का मत है कि “प्राकृत भाषा में रचित **रत्नशेखर कथा** पद्मावत की कथा से बहुत मिलती-जुलती है। संभवतः जायसी ने उसी के आधार पर पद्मावत की रचना की थी।” पद्मावत की रचना सूफी मत के प्रचार के लिए हुई या नहीं इस संबंध में मतभेद हैं। जायसी प्रसिद्धि पाने के लिए पद्मावत लिख रहे हैं ऐसा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—

औ मैं जानि कवित अस कीन्हा।

मकु यह रहै जगत मैं चीन्हा॥

6. पद्मावत के विभिन्न पात्रों में रूपकत्व का आरोप भी किया गया है। पद्मावत के अंत में दिए हुए उस कइवक को जिसमें पात्रों के आध्यात्मिक अर्थ दिए गए हैं कुछ विद्वानों ने प्रक्षिप्त माना है। जायसी के अनुसार उस कइवक में प्रतीकार्थ निम्नवत् हैं, जिसके कारण इसे एक वृहत् **अन्योक्ति** कहा गया है।

1. चित्तौड़	शरीर का प्रतीक
2. राजा रत्नसेन	मन का प्रतीक
3. सिंहल द्वीप	हृदय का प्रतीक
4. पद्मावती	बुद्धि का प्रतीक
5. राघव चेतन	शैतान का प्रतीक
6. अलाउद्दीन	माया का प्रतीक
7. नागमती	संसार का प्रतीक
8. हीरामन तोता	गुरु का प्रतीक

7. पद्मावत में वस्तु वर्णन के अंतर्गत वन-वाटिका, समुद्र, पर्वत, नग, पर्व, उत्सव, भोज्य सामग्री, वस्त्राभूषणों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इससे जन साधारण के ज्ञानकोश में वृद्धि होती है। मध्यकालीन संस्कृति एवं लोकजीवन के विविध पक्षों का सहज स्वाभाविक चित्रण भी इनमें हुआ है। सौंदर्य, प्रेम-विरह, साहस त्याग, निर्भीकता इनके नायकों की विशेषताएँ हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. मंझन द्वारा रचित पद्मावत सूफी काव्यधारा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है।
8. जायसी का चंदायन अवधी भाषा में लिखित हिंदी का प्रमुख महाकाव्य माना जाता है।
9. मध्यकालीन संस्कृति एवं लोकजीवन के विविध-पक्षों का सहज स्वाभाविक चित्रण भी इन काव्यों में हुआ है।

11.2 सारांश (Summary)

- सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक प्रबंध-काव्य हैं, जिनमें कथा तत्व का समावेश है। इन प्रबंध काव्यों के कथा स्रोत भारतीय पुराण, इतिहास एवं अन्य लोक प्रचलित प्रेम कहानियाँ हैं।
- मध्यकालीन हिंदी साहित्य में सूफी कवियों के प्रेमाख्यानकों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन रचनाओं ने एक ओर तो प्रेम के ऐसे लोकोत्तर स्वरूप की प्रतिष्ठा की जो ईश्वर तक ले जाने वाला है तो दूसरी ओर सहिष्णुता, उदारता और भाईचारे का पाठ पढ़ाया। हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों द्वारा जन साधारण के ज्ञान कोश में पर्याप्त वृद्धि हुई क्योंकि इनके रचयिताओं ने दर्शन, धर्म, नीति, कामशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों की जानकारी का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। मध्यकालीन संस्कृति एवं लोकजीवन के विविध पक्षों का सहज स्वाभाविक चित्रण भी इनमें हुआ है।
- पद्मावत अवधी भाषा में रचित हिंदी का महाकाव्य है। इसमें भी उन कथानक रूढ़ियों को देखा जा सकता है जो अन्य सूफी प्रेमाख्यानकों में मिलती हैं। पद्मावत के पात्र प्रतीक हैं तथा यह पूरा काव्य ग्रंथ एक 'रूपक' काव्य भी माना गया है। रत्नसेन जीवात्मा का तथा पद्मावती परमात्मा का प्रतीक है।

11.3 शब्दकोश (Keywords)

1. काल्पनिक—कल्पनायुक्त
2. कौतूहल—जिज्ञासा, उत्सुकता

11.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. हिंदी सूफी प्रेमाख्यानकों की प्रमुख प्रवृत्तियों तथा विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
2. प्रमुख सूफी काव्य ग्रंथों का परिचय/प्रेमाख्यानों की परंपरा का उल्लेख कीजिए।
3. महत्वपूर्ण स्मरणीय बिंदु पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

- | | | |
|------------|----------------|-----------------|
| 1. रत्नसेन | 2. प्रेमगाथाओं | 3. सच्चे अर्थों |
| 4. (ख) | 5. (ग) | 6. (ग) |
| 7. असत्य | 8. असत्य | 9. सत्य |

11.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।
2. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।
3. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—धवन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।

नोट

इकाई-12 : राम एवं कृष्ण काव्य धारा : प्रमुख कवि एवं काव्य प्रवृत्तियाँ**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 राम एवं कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख संप्रदाय, प्रवृत्तियाँ

12.1.1 कृष्ण काव्य परंपरा/कृष्ण काव्य धारा

12.1.2 कृष्ण भक्ति के प्रमुख संप्रदाय

12.1.3 कृष्ण काव्य की प्रवृत्तियाँ

12.1.4 कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि

12.1.5 राम काव्य धारा

12.1.6 राम काव्य परंपरा के भक्त कवि

12.1.7 राम काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

12.1.8 अष्टछाप

12.2 सारांश (Summary)

12.3 शब्दकोश (Keywords)

12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- कृष्ण काव्य एवं कृष्ण काव्य धारा का विकास जानने में।
- कृष्ण काव्य की प्रमुख विशेषताएँ समझने में।
- राम काव्य की प्रमुख विशेषताएँ जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत दो प्रकार के काव्य का निर्माण हुआ—राम काव्य एवं कृष्ण काव्य। वे कवि जिन्होंने 'राम' को अपना आराध्य मानकर काव्य रचना की प्रथम वर्ग के कवि हैं। राम को विष्णु का अवतार एवं अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र के रूप में जाना जाता है। अतः राम भक्ति के रूप में वैष्णव भक्ति का पुनराख्यान ही मध्यकालीन रामकाव्य में किया गया है। वैष्णव भक्ति का प्रचार-प्रसार करने का श्रेय रामानुजाचार्य, रामानंद, निम्बकाचार्य, माध्वाचार्य एवं श्री विष्णु स्वामी जैसे आचार्यों को जाता है। वैष्णव भक्ति के माध्यम से राम और

कृष्ण की विष्णु के अवतारों के रूप में उपासना का सर्वत्र प्रचार हुआ और कवियों ने भी इनके जीवन चरित्र को आधार बनाकर रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

12.1 राम एवं कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख संप्रदाय, प्रवृत्तियाँ

12.1.1 कृष्ण काव्य परंपरा/कृष्ण काव्य धारा

कृष्ण काव्य के आधार ग्रंथ भागवत् पुराण और महाभारत माने जा सकते हैं। **संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम अश्वघोष के 'बुद्ध चरित'** में कृष्णलीला का वर्णन का उल्लेख है। राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं का चित्रण प्राकृत भाषा में 'हाल' कवि द्वारा रचित गाथा सप्तशती (गाथा सप्तशती) में भी किया गया है। राधा का उल्लेख भागवत् पुराण में रंचमात्र भी नहीं है, अपितु उनके व्यक्तित्व का विशद निरूपण सर्वप्रथम ब्रह्मवैवर्त पुराण में किया गया है। संस्कृत कवि **'जयदेव'** ने मधुर संगीतात्मक पदावली में **'गीत गोविंद'** नामक ग्रंथ में राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं का गान कर कृष्ण काव्य को एक नई दिशा प्रदान की।

हिंदी में कृष्ण काव्य के प्रवर्तन का श्रेय मैथिल कोकिल **विद्यापति** को है, जिन्होंने गीत गोविंदकार जयदेव का अनुसरण करते हुए सरस, मधुर शब्दावली में **विद्यापति पदावली** की रचना की, जिसमें राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं के मादक-चित्र अंकित किए गए हैं। विद्यापति के उपरान्त कृष्ण काव्य को दृढ़तर आयामों पर स्थापित करने का पूरा श्रेय अष्टछाप के कवियों को है। इन कवियों में सर्वप्रमुख हैं—**सूरदास**, जिन्होंने भागवत् पुराण का आधार ग्रहण कर कृष्ण की बाल लीलाओं एवं प्रेम क्रीड़ाओं का चित्रण करते हुए **सूरसागर**, **साहित्य लहरी** एवं **सूर-सूरावली** की रचना की। ऐसा कहा जाता है कि सूरदास ने सवा लाख पदों की रचना की थी, किंतु अब केवल चार-पाँच हजार पद ही प्राप्त होते हैं। सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवि थे—**कुंभनदास**, **परमानंददास**, **कृष्णदास**, **छीत स्वामी**, **गोविंद स्वामी**, **चतुर्भुजदास** और **नंददास**। सूरदास के साथ-साथ नंददास अष्टछाप के कवियों में महत्वपूर्ण पद के अधिकारी हैं। कुंभनदास का कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। कुछ पद **राग कल्पद्रुम**, **रागरत्नाकर** में संकलित हैं। परमानंददास की रचनाओं का संकलन **'परमानंद सागर'** तथा **'परमानंद के पद'** नाम से हुआ है। अष्टछाप के कवियों में सूरदास और नंददास के बाद इन्हीं का स्थान काव्य सौष्ठव की दृष्टि से है। कृष्णदास का भी कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता, किंतु इनके शताधिक पद उपलब्ध हैं। नंददास अष्टछाप के कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वे शास्त्रज्ञ विद्वान एवं काव्य मर्मज्ञ थे। उन्होंने विविध विषयों को लेकर काव्य ग्रंथों की रचना की है। इनमें प्रमुख हैं—**अनेकार्थ मंजरी**, **रस मंजरी**, **सुदामा चरित**, **रुक्मिणीमंगल**, **भंवरगीत**, **रास पंचाध्यायी**, **गोवर्द्धन लीला**, **नंददास-पदावली** आदि। नंददास के काव्यत्व को प्रकट करने वाली एक उक्ति प्रायः कही जाती है—**"और कवि गढ़िया नंददास जड़िया"**—यह उक्ति नंददास के काव्यत्व की उत्कृष्टता को पूर्णतः व्यक्त कर देती है। इनके अतिरिक्त गोविंद स्वामी के भी फुटकल पद प्राप्त होते हैं तथा चतुर्भुज दास एवं छीत स्वामी के भी स्वतंत्र ग्रंथ न मिलकर फुटकल पद ही प्राप्त हुए हैं जो इन्होंने कीर्तन के लिए रचे थे।

अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त राधाबल्लभ संप्रदाय के गोस्वामी हित हरिवंश, गौड़ीय (चैतन्य) संप्रदाय के गदाधर भट्ट तथा हरिदासी संप्रदाय के स्वामी हरिदास ने भी कृष्ण भक्ति काव्य की रचना की है। **स्वामी हरिदास** प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे अतः उनकी कविता में काव्य और संगीत का अद्भुत मिश्रण प्राप्त होता है। इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—**'सिद्धांत के पद'** और **'केलिमाल'**। इस काल के कुछ अन्य कृष्ण भक्त कवियों में **मीराबाई** तथा **रसखान** का नाम भी लिया जा सकता है। मीरा ने स्फुट पदों की रचना की जबकि **रसखान** ने **सुजान रसखान**, **प्रेमवाटिका**, **दान लीला**, **अष्टयाम** की रचना की है। इसी परंपरा के एक और प्रसिद्ध कवि **नरोत्तमदास** हुए हैं जिन्होंने **सुदामा चरित** की रचना की।

कृष्ण काव्य परंपरा का विकास रीतिकाल एवं आधुनिक काल में भी निरंतर होता रहा। रीतिकाल के सभी कवियों ने एवं आधुनिक काल के ब्रजभाषा कवियों ने कृष्ण को केंद्र बिंदु बनाकर अनेक काव्य ग्रंथ लिखे, किंतु उनका परिचय देना यहाँ अप्रासंगिक होगा।

नोट

12.1.2 कृष्ण भक्ति के प्रमुख संप्रदाय

कृष्ण भक्ति के अनेक संप्रदाय मध्यकाल में विकसित हुए हैं जिनसे कृष्ण भक्ति काव्य अत्यंत प्रभावित हुआ है। इन संप्रदायों में प्रमुख हैं—बल्लभ संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय, राधाबल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय, गौड़ीय संप्रदाय (चैतन्य संप्रदाय) आदि। इनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

बल्लभ संप्रदाय

बल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक बल्लभाचार्य हैं, उनकी मान्यताएँ शुद्धाद्वैत दर्शन से मेल खाती हैं, जिसमें माया को कोई स्थान नहीं दिया जाता। इन्होंने भक्ति के लिए 'पुष्टिमार्ग' को अपनाया, जिसके अंतर्गत भगवान के अनुग्रह (पुष्टि) पर विशेष बल दिया जाता है। सच्ची भगवद् कृपा को ही 'पुष्टि' कहा जाता है। सच्चा भक्त अपने को ईश्वर के आश्रय में छोड़ देता है। गीता में भी इसी ओर संकेत करते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है—'**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।**' बल्लभाचार्य ने माया की स्वतंत्र सत्ता को अस्वीकार करते हुए शंकर द्वारा प्रतिपादित द्वैतवाद को शुद्ध किया, इसीलिए उनका मत शुद्धाद्वैतवाद कहा जाता है। उन्होंने माया के दो भेद माने हैं—विद्या माया, अविद्या माया राधारूपा है जो ब्रह्म की लीला शक्ति है तथा इसी से संसार का निर्माण हुआ है। अविद्या माया जीव के मन की उपज होने से असत् है जो मन में विद्या के उदय होते ही नष्ट हो जाती है। अविद्या नाश से ही जीव मुक्त हो जाता है। बल्लभाचार्य जी का मत प्रवृत्ति मार्गी है, क्योंकि वे विद्या माया से उत्पन्न संसार को सत्य मानते हैं जबकि अविद्या माया से उत्पन्न संसार को असत् मानते हैं।

बल्लभाचार्य जी ने गोवर्द्धन पर्वत पर स्थिति श्रीनाथ जी के मंदिर को अपने संप्रदाय का केंद्र बनाया जहाँ अष्टयाम (आठों प्रहर) कीर्तन चलता रहता था, इस हेतु उन्होंने सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, आदि प्रमुख भक्तों को नियुक्त किया। बाद में बल्लभाचार्य की मृत्यु के बाद उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने चार शिष्यों गोविंद स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास को भी इस कार्य के लिए नियुक्त किया। इन आठ भक्त कवियों पर गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने आशीर्वाद की छाप लगायी, इसीलिए इन्हें 'अष्टछाप' के कवि कहा जाता है। अष्टछाप की स्थापना 1565 ई. में हुई थी।

निंबार्क संप्रदाय

निंबार्क संप्रदाय का कृष्णभक्ति के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निंबार्काचार्य यद्यपि दक्षिण के थे तथापि इनका कार्यक्षेत्र ब्रज प्रदेश रहा है। वे श्रीकृष्ण को परब्रह्म मानते हैं तथा राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक हैं। निंबार्क संप्रदाय में राधा का स्वकीया रूप स्वीकार किया गया है। निंबार्काचार्य के अनुसार श्रीकृष्ण जगत के निमित्त कारण भी हैं और उपादान कारण भी। वह परब्रह्म इसीलिए द्वैतरहित (अद्वैत) है, किंतु वह जीव और जगत से विलक्षण होने के कारण द्वैत भी कहा जा सकता है। द्वैत और अद्वैत के इस समन्वय के कारण ही इनके मत को 'द्वैताद्वैतवाद' कहा जाता है। वे जीव को ईश्वर का अंश मानते हुए भी ईश्वर को जीव से विलक्षण मानते हैं। निंबार्काचार्य के दार्शनिक सिद्धांतों की व्याख्या 'वेदांत पारिजात सौरभ' एवं 'दशश्लोकी' नामक ग्रंथों में की गई है। निंबार्क संप्रदाय में प्रेमलक्षणा दाम्पत्य भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।



नोट्स

निंबार्क के प्रमुख कृष्णभक्त कवियों में श्रीभट्ट (युगलशतक), हरिव्यास देव (महावाणी), परशुराम देव (परशुराम सागर) हैं।

राधाबल्लभ संप्रदाय

राधाबल्लभ संप्रदाय का प्रवर्तन **स्वामी हित हरिवंश** ने वृंदावन में किया। इस संप्रदाय में प्रेम को भी भक्ति का मूलाधार बताया गया है। अनंत भावों और अतंत रूपों में नित्य क्रीड़ा करने वाला प्रेम ही परम तत्व है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार—“इस संप्रदाय में न तो मुक्ति की कामना है और न मुक्ति को कोई स्थान है। ... मुख्य रूप से नित्य विहार-दर्शन ही सहचरी (जीवात्मा) का उपास्य भाव है, जिसकी प्राप्ति केवल प्रेम

नोट

से होती है। नित्य विहार के विधायक चार तत्व हैं—कृष्ण, राधा, सहचरी और वृंदावन। राधा और कृष्ण नित्यविहारी हैं और जीवात्मा सखी भाव से उनके विहार दर्शन को परम सुख मानता है।” इस संप्रदाय में राधा को कृष्ण से भी ऊँचा स्थान देकर उन्हीं की उपासना प्रमुख रूप से की जाती है, कृष्ण तो गौण रूप में उपास्य हैं। इस संप्रदाय के मंदिरों में राधा की मूर्ति कृष्ण के पार्श्व में नहीं होती।

श्रीकृष्ण की बायीं ओर वस्त्र निर्मित एक गद्दी होती है, जिसके ऊपर स्वर्ण-पत्र पर श्रीराधा शब्द अंकित होता है। राधा बल्लभ संप्रदाय के कवियों ने राधा-कृष्ण की संयोग-शृंगार की विविध क्रीड़ाओं का चित्रण किया है। इस संप्रदाय के प्रमुख भक्त कवि हैं—हित हरिवंश (हित चौरासी, स्फुट वाणी), हरिराम व्यास (व्यास वाणी), ध्रुवदास (जीवदशा लीला, रंग विनोद लीला, नित्य विलास लीला), नेही नागरीदास (हितवाणी) आदि।

हरिदास संप्रदाय

इसे सखी संप्रदाय भी कहा जाता है, जिसके प्रवर्तक प्रसिद्ध संगीतज्ञ स्वामी हरिदास जी थे। ये राधा-कृष्ण की विहार लीलाओं का आनंद सखी भाव से प्राप्त किया करते थे, अतः इसे सखी संप्रदाय की संज्ञा दी गई। हरिदास जी ने ‘प्रेम’ को ही उपास्य बताया है। उनका प्रेम सिद्धांत अपने युग की भक्ति भावना को नवीन दिशा देने वाला सिद्ध हुआ। इस सिद्धांत ने भक्तों को कवि और कवियों को भक्त बना दिया। राधा-कृष्ण वृंदावन में नित्य विहार करने वाले प्रेमी जन हैं और भक्त सखी रूप में उस लीला का अवलोकन कर आनंदोपलब्धि करता है। स्वामी हरिदास के पदों में ऐसी शैली है जिससे लगता है कि वे आँखों देखी घटना का वर्णन कर रहे हैं। हरिदास जी के दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—सिद्धांत के पद और केलिमाल। केलिमाल में राधा-कृष्ण की लीलाओं के रसपूर्ण चित्र अंकित हैं। इस संप्रदाय के अन्य कवियों में—जगन्नाथ गोस्वामी (अनन्य सेवा निधि), बीठल विपुल, बिहारिन दास, आदि हैं।

चैतन्य संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु चैतन्य बंगाल के नवदीप नामक स्थान के निवासी थे। इस संप्रदाय को गौड़ीय संप्रदाय भी कहा जाता है तथा इस मत के दार्शनिक सिद्धांत को ‘आचिन्त्य भेदाभेद’ की संज्ञा दी गई है। चैतन्य महाप्रभु की भक्ति भावना के आधार बिंदु थे—प्रेम, ममता और भावुकता। इनकी मान्यता है कि श्रीकृष्ण परम तत्व हैं जीव ईश्वर विमुख होने पर बंधनग्रस्त होता है तथा ईश्वर कृपा से मुक्त हो जाता है। मुक्ति का साधन है—भक्ति, जिसे वे पाँच प्रकार की मानते हैं—शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य। चैतन्य संप्रदाय में ‘परकीया भाव’ से ‘रस का उल्लास’ माना गया है और उपपत्ति भाव को स्वीकृति प्रदान की गई है। चैतन्य महाप्रभु के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वे जयदेव, विद्यापति द्वारा रचित राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं को गाते हुए नृत्य करते-करते भाव-विभोर होकर रोने लगते थे और भक्ति भावना में लीन होकर प्रायः मूर्च्छित तक हो जाते थे। गौड़ देश में प्रचलित होने के कारण इस संप्रदाय को गौड़ीय संप्रदाय भी कहा जाता है। इस संप्रदाय के भक्त माधवदास माधुरी (श्री माधुरी वाणी), भगवत मुदित (वृंदावनशत) आदि हैं।



टास्क कृष्ण भक्ति काल के प्रमुख संप्रदायों का वर्णन कीजिए।

12.1.3 कृष्ण काव्य की प्रवृत्तियाँ

कृष्ण काव्य की रचना प्रायः उन भक्त कवियों के द्वारा की गई है, जो किसी-न-किसी संप्रदाय से जुड़े हुए थे, अतः कृष्णकाव्य में एकरूपता दिखाई नहीं पड़ती। कृष्णलीला का गान तो प्रायः इन सभी कवियों के द्वारा किया गया, परंतु राधा-कृष्ण के विषय में उनकी अपनी धारणाएँ एवं मान्यताएँ रही हैं, जो उनके संप्रदाय विशेष के अनुसार थीं। युगीन परिस्थितियों ने भी कृष्ण काव्य को किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रभावित किया है। बल्लभाचार्य जी ने तत्कालीन मुस्लिम शासकों के अत्याचारों से पीड़ित समाज की दुर्दशा के संदर्भ में एकमात्र श्रीकृष्ण को ही शरण-स्थल के रूप में स्वीकार किया। सूफियों के प्रेम तत्व को देखकर कृष्ण भक्त आचार्यों

ने अपनी भक्ति भावना में माधुर्य भाव का समावेश कर उसे जनता के लिए आकर्षक बनाया। संक्षेप में कृष्णभक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का विश्लेषण निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है—

नोट

1. कृष्ण-लीला का वर्णन

कृष्ण भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन अपने काव्य में प्रमुखता से किया है। विभिन्न संप्रदायों में दीक्षित इन भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के मधुर रूप की झाँकी अंकित करते हुए उनकी बाललीला एवं प्रेमलीला का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। मध्यकालीन कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण की लोकरंजनकारी लीलाओं को अपने काव्य का विषय बनाकर जनता को माधुर्य रस में आकंठ निमग्न कर दिया। इन्होंने कृष्ण के बाल जीवन एवं किशोर जीवन की लीलाओं का उन्मुक्त गान किया, यही कारण है कि समूचा भक्तिकालीन कृष्ण काव्य माधुर्य भाव से ओत-प्रोत है। उस समय गोपाल कृष्ण की प्रेम लीलाओं का श्रवण, चिंतन एवं गायन कवि कर्म समझा जाने लगा था, इसीलिए भजन-कीर्तन करने वाले पद रचना करते हुए अनायास कवि बन गए। सूरकाव्य में कृष्ण की प्रेम लीलाओं का व्यापक वर्णन हुआ है। इनके अतिरिक्त चैतन्य संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय एवं निंबार्क संप्रदाय के कवियों ने भी माधुर्य भाव से ओत-प्रोत कृष्ण लीलाओं का गान करते हुए काव्य रचना की। कृष्ण की प्रेम लीलाएँ ही परवर्ती रीतिकालीन साहित्य में लौकिक शृंगार की प्रचुरता का कारण बनीं, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

2. प्रेमलक्षणा भक्ति

कृष्ण भक्त कवियों की भक्ति प्रेमलक्षणा भक्ति है। श्रीकृष्ण की प्रेममयी मधुर रस से ओतप्रोत छवि को अपने काव्य का विषय बनाकर इन कवियों ने प्रेम तत्व का विशद निरूपण किया। संपूर्ण कृष्णकाव्य माधुर्य भाव से ओतप्रोत है। निंबार्क संप्रदाय में जहाँ स्वकीया भाव पर बल देते हुए राधा-कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम का चित्रण किया गया है, वहीं चैतन्य संप्रदाय में परकीया-भाव में माधुर्य की चरम परिणति मानी गई है। कृष्णकाव्य में 'रति' भाव के तीनों प्रधान रूप—दाम्पत्य रति, वात्सल्य रति और भगवद् विषयक रति—उपलब्ध हो जाते हैं। कृष्ण-प्रेम में मर्यादा का पालन न तो कृष्ण भक्त कवियों को स्वीकार था और न ही उनकी गोपियों को। इसीलिए लोक और वेदों में वर्णित सामाजिक विधि-निषेध कृष्ण के प्रेम में तिरोहित कर दिए गए हैं। कृष्ण भक्त कवियों ने प्रेम भावना के नवीन आयाम उद्घाटित कर जनता को प्रेम रस में सराबोर कर दिया है। इन कवियों में वात्सल्य, सख्य और माधुर्य के क्षेत्र में कृष्ण लीलाओं का गान करते हुए अपनी भक्ति भावना का परिचय दिया। यद्यपि कुछ कृष्ण भक्त कवियों ने विनय से युक्त दास्य भाव के पद भी लिखे हैं, किंतु परिमाण की दृष्टि से माधुर्य भाव के पद ही अधिक लिखे गए। कृष्ण भक्ति काव्य में कांताभाव की भक्ति को विशेष महत्त्व दिया गया और उसमें भी परकीया भाव को प्रमुखता दी गई, क्योंकि इसे वे आदर्श प्रेम स्वीकार करते हैं।

3. सौंदर्य चित्रण

संपूर्ण कृष्ण काव्य प्रेम, सौंदर्य एवं शृंगार रस से ओत-प्रोत है। मानव सौंदर्य, प्रकृति सौंदर्य एवं भाव सौंदर्य से आप्लावित कृष्ण काव्य जन मन को अनुरजित करने में पूर्ण समर्थ है। कवियों ने कृष्ण के बाल सौंदर्य की झाँकी अंकित करने के साथ-साथ राधा-कृष्ण के किशोर सौंदर्य का भी हृदयग्राही वर्णन किया है। उनकी प्रणय-क्रीड़ाएँ अपूर्व सौंदर्य से समन्वित हैं। यही नहीं ब्रज भूमि की सुषमा का चित्रण भी कृष्ण काव्य में किया गया है। राधा-कृष्ण की विहार स्थली, पावन यमुना तट, वृंदावन, मधुवन, कुंज और कछार कृष्ण काव्य में सर्वत्र व्याप्त हैं। कृष्ण के सौंदर्य मंडित शरीर का वर्णन इन कवियों ने बड़ी तन्मयता से किया है—

सोभा कहत कही नहिं जावै।

अँचवत अति आतुर लोचनपुट मन न तृप्ति कौं पावै॥

प्रति प्रति अंग अनंग कोटि छवि सुनि सखि परम प्रवीन।

सूरदास जहं दृष्टि परति है होत तहीं लव लीन॥

राधा भी अपूर्व सुषमा से मंडित हैं और उनकी अनिर्वचनीय शोभा मन को आह्लादित करने में समर्थ है। निम्न पंक्तियों में राधा के सौंदर्य को देखा जा सकता है—

4. प्रकृति चित्रण

कृष्ण काव्य का केंद्र हैं—श्रीकृष्ण और उनकी लीला स्थली है ब्रजभूमि, जो अपने अनंत सौंदर्य के लिए विख्यात रही है। यही कारण है कि कृष्णभक्त कवियों ने जहाँ राधा-कृष्ण के सौंदर्य का चित्रण किया है, वहीं उनकी विहार स्थली ब्रजभूमि की अनंत सुषमा का निरूपण भी अपनी रचनाओं में किया है। भाव प्रधान होने से कृष्ण काव्य में प्रकृति चित्रण उद्दीपन रूप में अधिक हुआ है, आलंबन रूप में बहुत कम, परंतु दृश्यमान जगत का कोई भी सौंदर्य उनकी आँखों से टूटा नहीं है। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा के शब्दों में—“पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश, जलाशय, वन प्रांत, यमुना-कूल तथा कुंजभवन की संपूर्ण शोभा इन कवियों ने प्रत्यय या परोक्ष रूप में निःशेष कर दी है।” भाव की पृष्ठभूमि में किया गया प्रकृति चित्रण भी अत्यंत हृदयग्राही बन पड़ा है। वियोग व्यथित गोपियों को अब यमुना व्यर्थ में बहते हुए, भौरे व्यर्थ में गुंजार करते हुए तथा कमल व्यर्थ में ही पुष्पित होते हुए जान पड़ते हैं। पहले जो लताएँ अति सुंदर लगती थीं अब मन को दग्ध करती हैं—

तब ये लता लगति अति सीतल,
अब भई विषम ज्वाल की पुंजै।

इन कवियों ने मानव प्रकृति को चित्रण करने में भी अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय दिया है।

5. रस योजना

कृष्ण काव्य का मूल प्रतिपाद्य है—कृष्ण की बाललीला एवं प्रणय क्रीड़ाओं का चित्रण, अतः विषयवस्तु के अनुसार उसमें वात्सल्य एवं शृंगार रस की प्रधानता है। इन दोनों रसों का पूर्ण परिपाक कृष्ण भक्ति साहित्य में हुआ है। सूरदास वात्सल्य के सम्राट कहे जाते हैं, क्योंकि उन्होंने बाल मनोभावों का ऐसा हृदयग्राही वर्णन अपने पदों में किया है, जो अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं पड़ता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूरदास के वात्सल्य वर्णन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—“बालकृष्ण की चेष्टाओं के चित्रण में कवि कमाल की होशियारी और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देता है। न उसे शब्दों की कमी होती है, न अलंकार की, न भावों की और न भाषा की।” ‘मैया मैं नहिं माखन खायो’ तथा ‘मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी’ जैसे पदों का माधुर्य सूर के वात्सल्य वर्णन की विशेषताओं को उजागर करने में पूर्ण समर्थ है। संयोग और वियोग शृंगार की सुंदर योजना भी सूर एवं अन्य कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में हुई है। राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं के चित्रण में सूर ने अपनी समस्त प्रतिभा एवं काव्य कुशलता का परिचय दिया है। भ्रमरगीत प्रसंग में गोपियों के विरह का अत्यंत मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है। मीरा, सूर तथा नंददास ने वियोग शृंगार के अत्यंत मार्मिक चित्र अपने काव्य में अंकित किए हैं।



क्या आप जानते हैं

कृष्ण काव्य में वात्सल्य और शृंगार के साथ-साथ शांत और अद्भुत रस की योजना भी की गई है। विनय के पदों में शांत रस की तथा श्रीकृष्ण के अलौकिक कार्य व्यापार वर्णन में अद्भुत रस की सृष्टि हुई है।

6. रीति तत्व का समावेश

कृष्ण काव्य में शृंगार वर्णन के साथ-साथ रीति तत्व का समावेश भी हो चला था। कवियों ने नायिका-भेद एवं अलंकार-निरूपण करना प्रारंभ कर दिया था। सूरदास एवं नंददास की कृतियों में रीति तत्व का यह समावेश प्रचुरता से है। सूरदास ने ‘साहित्य लहरी’ में नायिका भेद एवं अलंकार-वर्णन किया है जबकि नंददास कृत ‘रस मंजरी’ में नायिका भेद, हाव-भाव, रति आदि का विशद निरूपण किया गया है। नंददास का एक अन्य रीतिपरक ग्रंथ है—‘विरह मंजरी’ जिसमें विरह के काव्यशास्त्रीय भेद समझाए गए हैं। श्रीकृष्ण की शोभा को लेकर नख-शिख वर्णन की परंपरा भी चल रही थी और उसी का आधार लेकर ऋतु वर्णन भी आरंभ हो गया था। इस प्रकार कृष्ण भक्ति में ही रीतिशास्त्र का परिशीलन होने लगा। इस संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए

नोट

डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है—“कृष्ण काव्य का वर्ण्य विषय कृष्ण भक्ति में ही सीमित न रहकर नख-शिख, ऋतु वर्णन और नायिका भेद में विस्तार पाने लगा। इस समय भाषा परिमार्जित हो गई थी, अतः अलंकार योजना भी भाषा के साथ होने लगी थी।”

रीतिकाल में प्रचुरता से जिस रीति तत्व का निरूपण हुआ उसका बीज निश्चित रूप से कृष्ण भक्ति काव्य में उपलब्ध है।

7. काव्य रूप

कृष्ण-काव्य जीवन के एक सीमित पक्ष को लेकर ही चला अतः उसमें महाकाव्योचित उदात्तता एवं व्यापकता दिखाई नहीं पड़ती। कृष्ण के किशोर जीवन एवं बाल-जीवन की लीलाओं का विशद चित्रण तो उसमें हुआ है, परंतु महाभारत के योगेश्वर कृष्ण जो राजनीति विशारद एवं धर्मरक्षक हैं, उनका चित्रण कृष्ण भक्ति काव्य में प्रायः नहीं हुआ है। जीवन के प्रेम पक्ष को लेकर लिखे गए इस काव्य में मधुरता, सरसता, रागात्मकता तो है किंतु उदात्तता, गरिमा एवं भव्यता के स्तर पर वह राम काव्य से तुलना नहीं कर सकता। यही कारण है कि रामभक्त कवियों ने जहाँ प्रबंधकाव्य की रचना की वहीं कृष्णभक्त कवियों ने मुक्तक काव्य की रचना की। कृष्णलीला के जिस विषय को लेकर ये कवि अग्रसर हुए वह वस्तुतः गीति एवं मुक्तक शैली के लिए ही उपयुक्त था।

यद्यपि इस काल में कृष्ण के जीवन को आधार बनाकर कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गए यथा—भंवरगीत, रास पंचाध्यायी, सुदामा चरित, रुक्मिणी मंगल आदि, तथापि प्रधानता मुक्तक काव्य की ही रही है। प्रबंध रचना के लिए जो व्यापक दृष्टि एवं संबंध निर्वाह कवि के लिए अपेक्षित है, उसका अभाव इस काल के कवियों में देखा जा सकता है।

8. भाषा शैली

संपूर्ण कृष्ण काव्य ब्रजभाषा में लिखा गया है। भाषा की दृष्टि से कृष्ण भक्त कवि अत्यंत समर्थ एवं सशक्त माने जाते हैं। सूरदास की ब्रजभाषा परिनिष्ठित एवं साहित्यिक है तथा उसमें प्रत्येक मनोभाव को सफलतापूर्वक व्यक्त करने की क्षमता है। उनकी ब्रजभाषा अपनी कोमलता, सरसता, माधुर्य एवं पदलालित्य के कारण व्यापक काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी और कई सौ वर्षों तक काव्यभाषा के पद पर प्रतिष्ठित रही। ब्रज की लोक प्रचलित भाषा को व्यापक काव्यभाषा बनाकर इन्होंने अपनी सामर्थ्य का परिचय दिया है। नंददास को भी ब्रजभाषा का अच्छा ज्ञान था। इसीलिए उनके संबंध में कहा जाता है—‘नंददास जड़िया’। इन कवियों की भाषा की जड़ें लोकभाषा में निहित रही हैं। भाषा में लोक प्रचलित मुहावरों एवं सूक्तियों का भी सुंदर समावेश करते हुए इन्होंने अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान की है।

ब्रजभाषा की व्यापक प्रतिष्ठा हो जाने पर भी इस समय तक उसका कोई परिमार्जित व्याकरण सम्मत स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया था। यही कारण है कि कवियों ने मनमाने प्रयोग करते हुए शब्दों को इच्छानुसार तोड़ा-मरोड़ा है तथा लिंग संबंधी गड़बड़ी कर दी है। मीरा की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव है जबकि रसखान की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है।

कृष्ण भक्त कवियों ने प्रायः गीति शैली का प्रयोग किया है। संगीतात्मकता, भावात्मकता, वैयक्तिकता, कोमलकांत पदावली जैसे गीति तत्वों का समावेश इनकी रचनाओं में मिल जाता है। सूर आदि समर्थ कवियों के पदों में अनूठी भाव व्यंजकता, वक्रता, लाक्षणिकता के कारण शैलीगत प्रौढ़ता भी दिखाई पड़ती है।

9. अलंकार एवं छंद

सूरदास, नंददास, रसखान एवं मीरा कृष्ण भक्त कवियों में अग्रगण्य हैं। इनके काव्यों में अलंकारों की मनोहारी सुषमा देखी जा सकती है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, असंगति, प्रतीक आदि अलंकारों का सौंदर्य इनके काव्य में यत्र-तत्र देखा जा सकता है। यह अलंकार निरूपण न तो चमत्कार प्रदर्शन के लिए है और न ही प्रयत्न साध्य है, अपितु भाव व्यंजना के लिए आवश्यक होने पर ही अलंकारों का सहारा लिया गया है। इन कवियों का सादृश्य विधान भी अत्यंत सशक्त एवं सुंदर बन पड़ा है।

नोट

कृष्ण भक्त कवियों ने प्रायः पद लिखे हैं। सूरसागर में पदों की प्रधानता है। नंददास ने रूप मंजरी तथा रास मंजरी में दोहा-चौपाई का प्रयोग किया है। रसखान ने कवित्त और सवैये लिखे हैं। कुंडलिया, गीतिका, अरिल्ल जैसे कुछ अन्य छंदों का प्रयोग भी कृष्ण काव्य में हुआ है।

प्रमुख कृष्ण भक्त कवि एवं कृतियाँ

क्र.सं.	कवि का नाम	जन्म-मृत्यु	कृतियों के नाम
1.	सूरदास	1478-1583 ई.	1. सूरसागर, 2. साहित्य लहरी, 3. सूर सूरवली
2.	कुंभनदास	1468-1583 ई.	186 पद 'पद संग्रह' में संकलित
3.	परमानंददास	1493 ई.	835 पद 'परमानंद सागर' परमानंद के पद
4.	कृष्णदास	1496-1578 ई.	जुगलमान चरित्र, भ्रमरगीत, प्रेमतत्व निरूपण
5.	नंददास	1533-1583 ई.	अनेकार्थ मंजरी, रस मंजरी, मान मंजरी, रूप मंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बारहखड़ी, श्याम सगाई, भंवरगीत, रास पंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, गोवर्धन लीला, नंददास पदावली
6.	गोविंदस्वामी	1505-1585 ई.	252 पद 'गोविंद स्वामी के पद' में संकलित
7.	छीतस्वामी	1515-1583 ई.	200 पद 'पदावली' में संकलित
8.	चतुर्भुजदास	1530-1585 ई.	चतुर्भुज कीर्तन संग्रह, कीर्तनावली, दानलीला
9.	श्रीभट्ट	रचनाकाल 1595 ई.	युगल शतक (100 पद हैं)
10.	हरिव्यासदेव	—	माहावाणी
11.	परशुरामदेव	—	परशुराम सागर
12.	हितहरिवंश	1502 ई.	हित चौरासी
13.	हरीराम व्यास	1492 ई.	व्यासवाणी
14.	चतुर्भुजदास (राधाबल्लभी)	—	द्वादश यश
15.	ध्रुवदास	1573-1643 ई.	42 ग्रंथ—ब्रजलीला, हितशृंगार लीला, रंग विनोदलीला, दान लीला, मान लीला, रहस्यमंजरी लीला, सुखमंजरी लीला, सिद्धांत विचार लीला आदि
16.	स्वामी हरिदास	1478-1573 ई.	सिद्धांत के पद, केलिमाल
17.	बिहारिन दास	—	बिहारिनदासजी की वाणी
18.	रामराय	1503 ई.	आदिवाणी गीत गोविंद भाष्य
19.	चंद्र गोपाल	1515 ई.	चंद्र चौरासी, अष्टयाम, सेवा सुधा, गौरांग अष्टयाम, ऋतु बिहार, राधा विरह
20.	माधव दास माधुरी	1618-1653 ई.	केलिमाधुरी, वंशीवट माधुरी, वृंदावन माधुरी
21.	भगवत मुद्रित	—	वृंदावन शतक, रसिक अनन्यमाल
22.	मीराबाई	1504-1563 ई.	स्फुट पद, नरसी जी का मायरा, गीत गोविंद टीका, राग सोरठ के पद
23.	रसखान	1533-1618 ई.	सुजान रसखान, प्रेम वाटिका, दान लीला, अष्टयाम

12.1.4 कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि

नोट

सूरदास (1478-1583)

सूरदास के जीवन-वृत्त के लिए बहिसाक्ष्य के रूप में भक्तमाल (नाभादास), चौरासी वैष्णवन की वार्ता (गोकुल नाथ) और बल्लभ दिग्विजय (यदुनाथ) का आधार लिया गया है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अनुसार, वे दिल्ली के निकट 'सीही' के सारस्वत ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। वार्ताग्रंथों के अनुसार, सूरदास से महाप्रभु बल्लभाचार्य की भेंट 1509-10 ई. में हुई थी और तब से वे बल्लभाचार्य के शिष्य बनकर पारसोली गाँव में रहने लगे थे। उनका जन्म 1478 ई. तथा निधन 1583 ई. में माना जाता है। वे जन्मांध थे, या बाद में अंधे हुए, इस विषय में विवाद है। उनके निधन पर गोसाईं विट्ठलनाथ ने कहा था—“पुष्टिमारग को जहाज जात है सो जाकों कछु लेनौ होय सो लेउ।”

गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी के मंदिर की पूर्ण स्थापना पूरनमल खत्री ने 1519 ई. में करवा दी थी। इसी मंदिर में कीर्तन-सेवा सूरदास को बल्लभाचार्य ने सौंपी थी।

सूरदास की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—सूरसागर, सूर सूरवली और साहित्य लहरी। साहित्य लहरी के एक पद में सूर ने यह स्वीकार किया है कि वे पृथ्वीराज रासो के रचयिता चंद्रबरदाई के वंशज थे। इस कुल में हरीचंद के सात पुत्रों में सबसे छोटे सूरजदास या सूरदास थे।

सूरदास पहले विनय और दास्य भाव के पद लिखा करते थे। किंतु बल्लभाचार्य की आज्ञा से उन्होंने श्रीमद्भागवत पुराण की कथा का गायन पदों में किया। सूरसागर की कथा भागवत पुराण के दशम स्कंध से ली गई है। इसमें कृष्णजन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा फुटकल पदों में है। साहित्य लहरी में सूरदास के दृष्टकूट पद संकलित हैं।

सूरदास ब्रजभाषा के पहले सशक्त कवि हैं, किंतु उनकी रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य संबंधी उक्तियाँ सूरदास की जूठी-सी जान पड़ती हैं। आचार्य शुक्ल ने इसीलिए कहा है कि “सूरसागर किसी चली आती हुई गीतिकाव्य परंपरा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है।”

सूर के शृंगारी पदों की रचना बहुत कुछ विद्यापति की पद्धति पर हुई है। सूरसागर में उपलब्ध ‘दृष्टकूट’ वाले पद भी विद्यापति का ही अनुकरण हैं।

आचार्य शुक्ल के अनुसार, “जैसे रामचरित गान करने वाले भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास जी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार, कृष्णचरित गान करने वाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदास जी का” वास्तव में ये हिंदी काव्य गगन के सूर्य और चंद्र हैं।

शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक सूरदास की दृष्टि पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं। इसीलिए सूरदास को वात्सल्य और शृंगार रस का सम्राट कहते हैं। बाल चेष्टाओं की ऐसी स्वाभाविक एवं मनोहर झाँकी अन्यत्र नहीं मिलती।

आचार्य शुक्ल का मत है कि “सूरदास के शृंगारी पदों की रचना बहुत कुछ विद्यापति की पद्धति पर हुई।” जहाँ तक शृंगार और वात्सल्य वर्णन का प्रश्न है शुक्ल जी मानते हैं कि “आगे होने वाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी-सी जान पड़ती हैं।” शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में इनकी दृष्टि जहाँ तक पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं। सूर की सबसे बड़ी विशेषता है—नवीन प्रसंगों की उद्भावना। प्रसंगोद्भावना करने वाली ऐसी प्रतिभा तुलसी में भी नहीं थी।

सूरदास की भक्ति पद्धति का मेरुदंड पुष्टिमार्ग ही है। ईश्वर के अनुग्रह पर भरोसा रखकर भक्त सब कुछ छोड़कर भगवान की शरण में अपने को छोड़ देता है, सूर भी यही मानते हैं—

जा पर दीनानाथ ढरै।

सोई कुलीन बड़ो सुंदर सोई जा पर कृपा करै।

सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक दरै॥

नोट

अनुग्रह के आगे ज्ञान, कर्म, योग, उपासना सब निरर्थक हैं। सूर की भक्ति **सखा भाव** या **सख्य भाव** की भक्ति है। सूर की भक्ति पद्धति में जो **माधुर्य भाव** मिलता है वह मुख्य रूप से लीलाओं पर आधारित है। भ्रमरगीत की गोपियों में भक्ति का यह स्वरूप उपलब्ध होता है, जिसमें उनके हृदय की पवित्रता, निश्छलता, अनन्यता और उदारता दिखाई पड़ती है।

‘भ्रमरगीत’ सूरसागर का सर्वाधिक मर्मस्पर्शी एवं वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश है जिसमें गोपियों का वचन वक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। यह एक सुंदर उपालभ्य काव्य है जिसमें उद्धव-गोपी संवाद के माध्यम से निर्गुण का खंडन और सगुण का मंडन किया गया है। इसमें सगुणोपासना का निरूपण हृदय की अनुभूति एवं भावना के आधार पर किया गया है, तर्क पद्धति पर नहीं भ्रमरगीत के कुछ प्रसिद्ध पद हैं—

1. निर्गुन कौन देस को वासी?
2. प्रीति करि दीन्हीं गरे छुरी।
3. उर में माखन चोर अड़े।
4. अंखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
5. काहे को गोपीनाथ कहावत?
6. संदेसो देवकी सों कहियो।
7. विलगी जनि मानहु ऊधौ प्यारे।
8. गोकुल सबै गोपाल उपासी।
9. आयो घोष बड़ो व्योपारी।
10. देखियत कालिंदी अति कारी।
11. ऊधौ मोहि ब्रज विसरत नाहीं।

सूर ने नवीन प्रसंगों की जो उद्भावना की है, वह उनकी मौलिक विशेषता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार **प्रसंगोद्भावना करने वाली ऐसी प्रतिभा हम तुलसी में नहीं पाते**। बाललीला एवं प्रेमलीला के भीतर ऐसे अनेक छोटे-छोटे मनोरंजक वृत्तों की कल्पना सूर जैसा समर्थ कवि ही कर सकता था। भ्रमरगीत के अंतर्गत सूरदास ने प्रेमदशा के भीतर न जाने कितनी मनोवृत्तियों की व्यंजना गोपियों के वचनों द्वारा कराई है। सूर की प्रशंसा में यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

किंधौ सूर को सर लग्यो किंध्यों सूर की पीर।

किंधौ सूर को पद लग्यो बेध्यों सकल सरीर॥

नंददास (1533-1583)

नंददास की गणना अष्टछाप के कवियों में की जाती है। इन्हें गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप में अपना शिष्य बनाकर शामिल किया था। नंददास जी के बारे में जो विवरण गोकुलनाथ कृत ‘**दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता**’ में है, उसे शुक्लजी ठीक नहीं मानते। वार्ता ग्रंथों में उन्हें प्रसिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदास का भाई बताया गया है, जो नितांत गलत सिद्ध हो चुका है। संभवतः बल्लभ संप्रदाय को महिमामंडित करने हेतु वार्ताग्रंथों में यह उल्लेख किया गया है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार, नंददास का जन्म 1533 ई. में शूकर क्षेत्र (सोरो) के रामपुर गाँव में हुआ था तथा मृत्यु 1583 ई. में मानसी गंगा के तट पर हुई। गोसाईं विट्ठलनाथ से पुष्टिमार्ग की दीक्षा लेने पर उनका जीवन ही बदल गया तथा सूरदास के संपर्क में आकर और उनकी भक्ति भावना देखकर उनका शास्त्र-मोह भंग हुआ।

ब्रजभाषा काव्य में ‘**सूरदास**’ के उपरांत ‘नंददास’ ही सर्वाधिक प्रतिभाशाली कवि माने जाते हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। उन्होंने विविध शास्त्रों का अध्ययन किया था उनके द्वारा लिखे गए **प्रसिद्ध ग्रंथ** हैं—

1. अनेकार्थ मंजरी
2. रसमंजरी
3. रूपमंजरी
4. विरहमंजरी

- | | |
|--------------------|-------------------------|
| 5. मानमंजरी | 6. श्याम सगाई |
| 7. प्रेम बारहखड़ी | 8. सुदामा चरित |
| 9. रुक्मिणी मंगल | 10. भंवरगीत |
| 11. रास पंचाध्यायी | 12. सिद्धांत पंचाध्यायी |
| 13. दशमस्कंध भाषा | 14. गोवर्द्धन लीला |
| 15. नंददास पदावली | |

नोट

अनेकार्थमंजरी और **मानमंजरी** दोनों ही शब्दों के पर्यायकोश हैं। मानमंजरी चमत्कार प्रधान रचना है। छंद की प्रथम पंक्ति में पर्यायवाची हैं और दूसरी पंक्ति में कवि ने उस शब्द का प्रयोग कर दूती द्वारा राधा के श्रृंगार का वर्णन किया है। यह उनके प्रकांड पांडित्य का बोधक ग्रंथ है। **विरह मंजरी** में कृष्ण के विरह में एक ब्रजवासी की विरह दशा का भावात्मक चित्रण है। **रूपमंजरी** को प्रेमाख्यानक परंपरा का ग्रंथ माना गया है।

रास पंचाध्यायी **रोला छंद** में लिखित नंददास की सर्वश्रेष्ठ कृति है जिसमें कवि ने लौकिक एवं पारलौकिक प्रेम का समन्वय किया है। वियुक्त आत्मा (गोपी) रासलीला के माध्यम से स्वरूप परमात्मा (श्रीकृष्ण) से मिलने को व्याकुल है, प्रयत्नशील है। इस ग्रंथ की उत्कृष्ट एवं काव्यत्व को देखकर ही नंददास के विषय में यह कहा गया है—‘और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया।’

भंवरगीत भ्रमरगीत परंपरा का ग्रंथ है जिसमें कविवर नंददास ने उद्धव-गोपियों की विरह दशा का निरूपण किया है। यह उनके दार्शनिक विचारों, परिपक्व ज्ञान एवं विवेक बुद्धि के साथ भक्ति भावना का भी परिचायक है।

‘**सिद्धांत पंचाध्यायी**’ में कृष्ण की रासलीला की आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए कृष्ण, वृंदावन, वेणु, गोपी, रास आदि शब्दों की आध्यात्मिक रूप प्रदान किया है। नंददास की भाषा, कवित्व शक्ति, शब्द चयन की योग्यता, विद्वता उत्कृष्ट कोटि की है। मधुर, सरस ब्रजभाषा का जैसा प्रयोग उन्होंने किया वैसा सूर के अतिरिक्त और किसी ने नहीं किया।

मीरा (1504-1563)

मीराबाई का जन्म 1504 ई. तथा मृत्यु 1563 ई. में हुई। उनका जन्म ‘मेड़ता’ के समीपवर्ती गाँव कुड़की में **राठौर वंशी परिवार** में हुआ था, उनके **पिता का नाम रत्नसिंह** था। मीरा की माता का निधन बचपन में ही हो गया था, अतः वे मेड़ता में **राव दूदा के पास** रहीं जिन्होंने उन्हें वैष्णव भक्ति के संस्कार दिए। मीराबाई का विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से 1516 ई. में हुआ और दुर्भाग्यवश वे सात वर्ष बाद ही विधवा हो गईं। वे तत्कालीन प्रथा के अनुसार सती नहीं हुई परिणामतः राज परिवार में उन्हें विरोध झेलना पड़ा। वे अपना अधिकांश समय पूजापाठ एवं भक्ति में व्यतीत करने लगीं। राणा सांगा के उत्तराधिकारी विक्रमसिंह ने मीरा को अनेक यातनाएँ दीं पर गिरधर गोपाल के प्रति मीरा की भक्ति भावना अविचल रही।

बाद में मीरा के चचेरे भाई जयमल ने उन्हें मेड़ता बुला लिया, किंतु वहाँ भी वे युद्ध के कारण टिक नहीं पाईं और पुष्कर होती हुई वृंदावन पहुँचीं जहाँ उनकी भेंट कृष्णभक्त जीव गोस्वामी से हुई। तत्पश्चात् वे द्वारिका चली गईं और रणछोड़जी के मंदिर में ही उन्होंने शेष जीवन बिताया। मीरा की रचना ‘स्फुट पद’ ही प्राप्त है जो वर्तमान में ‘मीराबाई की पदावली’ के नाम से प्रकाशित हुई है।



टास्क कृष्ण भक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

उनके काव्य में राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। उसमें गुजराती का भी पुट है। मीराबाई का उपासना माधुर्य भाव की थी। वे अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण को प्रियतम के रूप में मानती थीं। इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य है, जिसे शुक्ल जी सूफियों का प्रभाव मानते हैं।

नोट

मीराबाई की गणना भारत के प्रधान भक्तों में की जाती है। इनका गुणगान नाभादास, ध्रुवदास, व्यास, मलूकदास ने भी किया है। मीरा की रचनाओं में उल्लेखनीय हैं—**नरसी जी का मायरा, गीत गोविंद टीका, राग गोविंद, राग सोरठ के पद**। आचार्य शुक्ल जी ने एक जनश्रुति के बारे में भी लिखा है कि मीरा ने एक बार तुलसी को लिखा कि मेरे परिवारीजन मुझे साधु संगति एवं भजन करने से रोकते हैं, अतः मुझे क्या करना चाहिए तब तुलसी ने उन्हें विनय पत्रिका का यह पद लिखकर भेज दिया—

जाके प्रिय न राम बैदेही।

तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥

शुक्ल जी इस घटना को कल्पित ही मानते हैं। मीराबाई के दो पद बहुत प्रसिद्ध हैं—

1. बसौ मेरे नैनन में नंदलाल।

मोहनि मूरति सांवरी सूरति नैना बने रसाल॥

2. विरहिनी बावरी सी भई।

ऊँची चढ़ि आपने भवन में टेरेत हाय दर्ई॥

मीराबाई के काव्य की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है। संगीत एवं छंद विधान की दृष्टि से इनका काव्य उच्चकोटि का है। उनके पद विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध हैं। वियोग शृंगार एवं शांत रसों की प्रधानता उनके काव्य में है।

रसखान (1533-1618 ई.)

हिंदी के मुसलमान कवियों में रसखान का महत्वपूर्ण स्थान है। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में इनका उल्लेख है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से बल्लभ संप्रदाय की दीक्षा ली थी। डॉ. नगेंद्र ने **रसखान का जन्म 1533 ई.** में स्वीकार किया है। पहले ये दिल्ली में रहते थे बाद में ये गोवर्द्धन धाम आ गए। 'मूल गोसाईं चरित' में यह उल्लेख है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस सर्वप्रथम रसखान को ही सुनाया था। 'प्रेमवाटिका' रसखान की अंतिम कृति है जिसकी रचना 1614 ई. में हुई। उसके कुछ समय बाद 1618 ई. में रसखान का देहावसान हो गया। रसखान की दो कृतियाँ उपलब्ध होती हैं—**प्रेमवाटिका** और **दानलीला**। वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रचलित '**संकलन सुजान**' रसखान है जिसमें 181 सवैया, 17 कवित्त, 12 दोहे और 4 सोरठे संकलित हैं। '**अष्टयाम**' नामक उनकी एक कृति और मिली है जिसमें कई दोहों में श्रीकृष्ण के प्रातः जागरण से रात्रिशयन पर्यन्त की दिनचर्या एवं क्रीड़ाओं का वर्णन है।

प्रेमवाटिका में कवि ने राधा-कृष्ण को मालिन-माली मानकर प्रेमोद्यान का वर्णन करते हुए प्रेम के गूढ़ तत्व का सूक्ष्म निरूपण किया है। इस रचना में 53 दोहे हैं।

दानलीला केवल 11 दोहों की छोटी-सी कृति है जिसमें राधा-कृष्ण संवाद है।

रसखान ब्रजभाषा के मर्मज्ञ एवं सशक्त कवि हैं। प्रेमतत्व के निरूपण में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। कृष्ण के रूप पर मुग्ध राधा एवं गोपियों की मनःस्थिति का मनोरम चित्रण उन्होंने किया है। उनके काव्य में कृष्ण के बाल सौंदर्य का भी चित्रण हुआ है। शृंगार एवं वात्सल्य उनके काव्य के प्रमुख रस हैं। सवैया, कवित्त, दोहा छंद उन्हें प्रिय हैं। उनका प्रेम स्वच्छंद प्रेम है किंतु उसमें सूफियों के प्रेम का अनुकरण नहीं है। ब्रजभूमि के प्रति उनका अनुराग निम्न सवैया में प्रकट होता है—

'मानुस हौं तो वहै रसखानि'

बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।"

इसी प्रकार कृष्ण के रूप का मनोहर चित्रण उनके काव्य में हुआ है। कृष्ण की लकुटी और कामरिया उन्हें इतनी प्रिय है कि वे इस पर तीनों लोकों का राज त्यागने को तत्पर हैं—

"या लकुटी अरु कामरिया पर

राज तिहूपुर को तजि डारौ।"

उनके दो प्रसिद्ध सवैयाओं की पंक्तियाँ भी यहाँ उद्धृत हैं—

नोट

1. मोर पखा सिर ऊपर राखि हौं
गुँज की माल गरे पहिरौंगीं।
2. सेस महेस गनेस दिनेस
सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं
3. धूरि भरे अति सोभित स्यामाजू
वैसी बनी सिर सुंदर चोटी।

रसखान की भाषा शुद्ध साहित्यिक, परिमार्जित ब्रजभाषा है, जिसमें माधुर्य और प्रसाद गुणों के कारण सरसता एवं सजीवता आ गई है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित पद शैली न अपनाकर कवित्त-सवैया शैली को अपनाया जो उनकी स्वच्छन्द वृत्ति का सूचक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. बल्लभाचार्य ने माया की स्वतंत्र सत्ता को अस्वीकार करते हुए शंकर द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद को शुद्ध किया, इसीलिए उनका मत कहा जाता है।
2. स्वामी हरिदास का अपने युग की भक्ति-भावना को नवीन दिशा देने वाला सिद्ध हुआ।
3. चैतन्य संप्रदाय को भी कहा जाता है।
4. ने भी कृष्ण काव्य को किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रभावित किया है।
5. सूरदास एवं नंददास की कृतियों में का यह समावेश प्रचुरता से है।
6. कृष्ण काव्य का वर्ण्य विषय में ही सीमित न रहकर नख-शिख, ऋतु वर्णन और नायिका भेद में विस्तार पाने लगा।

12.1.5 राम काव्य धारा

राम को विष्णु का अवतार एवं अयोध्या नरेश दशरथ पुत्र के रूप में जाना जाता है, अतः राम भक्ति के रूप में वैष्णव भक्ति का पुनराख्यान ही मध्यकालीन रामकाव्य में किया गया है।

राम काव्य का विकास—राम काव्य के आधार ग्रंथ के रूप में संस्कृत की वाल्मीकि रामायण को माना जा सकता है। बाद में महाभारत के रामोपाख्यान में भी यही रामकथा वर्णित की गई। संस्कृत के कुछ अन्य ग्रंथों में भी 'राम' विषयक आख्यान उपलब्ध होते हैं, यथा—अगस्त्य संहिता, राघवीय संहिता, रामरहस्योपनिषद् अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भुत रामायण, भुशुण्डि रामायण, विष्णु पुराण, वायु पुराण और भागवत् पुराण। राम को पूर्ण ब्रह्म मानते हुए अनेक पुराणों में रामकथा के अनेक प्रसंग दिखाई पड़ते हैं। हिंदी रामकाव्य का मूल आधार वाल्मीकि रामायण एवं अध्यात्म रामायण जैसे कुछ ग्रंथ ही हैं।

हिंदी राम काव्य से पूर्व संस्कृत, प्राकृत, पालि एवं अपभ्रंश साहित्य में राम काव्य की रचना हुई है। दक्षिण के अलवार भक्तों ने भी राम भक्ति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। बारह अलवार भक्तों में से चार—कुलशेखर, परकाल, विष्णुचित्त, एवं शठकोप रामोपासक थे। संस्कृत में वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त राम कथा पर आधारित अन्य ग्रंथ हैं—कालिदास कृत रघुवंश, कुमार पाल कृत जानकीहरण, भवभूतिकृत उत्तर रामचरित, जयदेव कृत प्रसन्न राघव, क्षेमेन्द्र कृत रामायण मंजरी आदि। जैन कवि स्वयंभू रचित प्राकृत भाषा में पडमचरित राम कथा का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त पुष्पदंत कृत महापुराण में राम कथा का उल्लेख है।

नोट

राम का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली रहा है कि भारत की अधिकांश भाषाओं में रामकथा काव्यों की रचना होती रही है। हिंदी से इतर अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा पर लिखे गए प्रमुख काव्य ग्रंथ हैं—कृतिवासी रामायण (बांग्ला), कम्ब रामायण (तमिल), रंग रामायण (तेलुगू), भावार्थ रामायण (मराठी), मंगल रामायण (मराठी) आदि। गुजराती, असमी आदि भाषाओं के भी अनेक कवियों ने राम कथा काव्यों की रचना की है। हिंदी में सर्वप्रथम चंद्रबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो के मंगलाचरण में विष्णु के दशावतारों के अंतर्गत 48 पद्यों में रामकथा का संक्षेप में वर्णन हुआ है। हिंदी साहित्य में राम काव्य का पूर्ण विकास भक्तिकाल में ही हुआ। रामानंद को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने राम काव्य परम्परा का प्रथम कवि स्वीकार किया है। वे विनय और स्तुति के पद बनाकर गाया करते थे। ‘आरति कीजै हनुमान लला की’—यह पद रामानंद जी ने ही हनुमान जी की स्तुति में लिखा है। उनकी एक अन्य रचना रामाष्टक है। कुछ अन्य विद्वान राम रक्षा स्तोत्र को भी उनकी रचना मानते हैं किंतु आचार्य शुक्ल ने इसे उनकी रचना नहीं माना है। राम भक्ति काव्य परम्परा के दूसरे सशक्त कवि हैं—विष्णु दास, जिन्होंने ‘रामायण’ कथा नामक ग्रंथ वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा है। तुलसी से पूर्व रामभक्त कवियों में ईश्वरदास का नाम भी लिया जा सकता है। इन्होंने ‘भरत मिलाप’ और ‘अंगद पैज’ नामक दो रामकथा काव्यों की रचना की। भक्त प्रवर सूरदास का नाम यद्यपि कृष्णभक्त कवियों में माना जाता है तथापि उन्होंने सूरसागर के नवम स्कंध में रामकथा के प्रमुख प्रसंगों को अपने पदों का विषय बनाया है।

राम काव्य परंपरा के सर्वप्रमुख एवं सशक्त कवि हैं—**गोस्वामी तुलसीदास**, जिन्होंने रामकथा पर अनेक ग्रंथों की रचना की। इनमें सर्वप्रमुख हैं—रामचरितमानस, जो हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, कृष्ण गीतावली, रामलला नहछू, रामाज्ञा प्रश्न-कुल बारह ग्रंथों की रचना की है।

रामभक्त कवियों में ‘अग्रदास’ का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने राम भक्ति परंपरा में रसिक भावना का समावेश करते हुए ‘अग्रअली’ नामक काव्य ग्रंथ की रचना की। ये स्वयं को जानकी जी की सखी मानकर काव्य रचना करते थे। ‘नाभादास’ कृत अष्टयाम भी ‘अग्रअली’ से प्रभावित रसिक भावना से युक्त रामकाव्य है। **भक्तिकाल के अन्य रामभक्त कवियों में प्राणचंद चौहान, माधवदास, हृदयराम, लालदास, नरहरि बारपट** के नाम लिए जा सकते हैं। प्राणचंद चौहान ने ‘रामायण महानाटक’ की रचना की जो वस्तुतः नाटक न होकर संवादात्मक प्रबंध काव्य ही है। **माधवदास** ने **राम रासो** और अध्यात्मक रामायण नामक काव्य ग्रंथों का प्रणयन किया जबकि हृदयराम ने ‘हनुमन्नाटक’ नामक काव्य ग्रंथ की रचना की। **नरहरि वारहट** ने ‘**पौरुषेय रामायण**’ की रचना वाल्मीकि रामायण के आधार पर की। लालदास ने ‘अवधविलास’ नामक ग्रंथ लिखा जिसमें राम जन्म से उनके वनगमन तक की कथा है।

12.1.6 राम काव्य परंपरा के भक्त कवि

स्वामी रामानंद (1400-1470 ई.)

रामानंद जी का समय (1400-1470 ई.) के बीच माना जा सकता है। इनका जन्म काशी में हुआ तथा **राघवानंद** से इन्होंने दीक्षा ली थी। इनके बारह शिष्यों का उल्लेख भक्तमाल में मिलता है जिनमें से प्रमुख थे—कबीर, रैदास, धन्ना, पीपा आदि। स्वामी रामानंद ने **रामावत संप्रदाय** का प्रवर्तन किया। ये संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इनके लिखे दो संस्कृत ग्रंथ ‘**वैष्णव मताब्ज भास्कर**’ और ‘**श्रीरामार्चन पद्धति**’ अति प्रसिद्ध हैं।

रामानंद जी तत्त्वतः रामानुजाचार्य के मतावलंबी थे। आचार्य शुक्ल के अनुसार, रामानुजाचार्य रामानंद से 14 पीढ़ी ऊपर थे। रामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में ही रामानंद को गिना जाता है। रामानंद जी ने विष्णु के अन्य रूपों में से एक रूप ‘**राम रूप**’ को लोक के लिए कल्याणकारी समझकर छोट लिया और अत्यंत उदारतापूर्वक भक्तिमार्ग सर्वजन सुलभ बना दिया। रामानुजाचार्य ने जो भक्तिमार्ग केवल द्विजातियों के लिए खोला था उसे रामानंद ने सबके लिए खोल दिया और एक उत्साही विरक्त दल का संघटन किया जो आज भी अयोध्या, चित्रकूट में ‘**बैरागी**’ के नाम से जाना जाता है। आचार्य शुक्ल का मत है कि रामानंद वर्णाश्रम के विरोधी नहीं थे। वे सभी के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करते थे, किंतु उपासना के क्षेत्र में, भगवद् भक्ति के क्षेत्र में वे

नोट

किसी भेदभाव को स्वीकार नहीं करते थे। उपासना एवं भक्ति का द्वार उन्होंने सब वर्णों एवं जातियों के लिए खोल दिया।

रामानंद जी ने ही वह प्रसिद्ध आरती हिंदी में बनाई है जिसे हनुमान के भक्त अब भी गाया करते हैं—

आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की।
जाके बल भर तें गिरिवर कापै। रोग सोग जाके निकट न छाँकैं॥

× × × ×

लंक विध्वंस किये रघुराई। रामानंद आरती गाई॥
सुर नर मुनि सब करहि आरती। जै जै जै हनुमान लाल की।

भक्तमाल (नाभादास) में रामानंद जी के जिन बारह शिष्यों का उल्लेख है उनके नाम हैं—1. अनन्तानंद, 2. सुखानंद, 3. सुरसुरानंद, 4. नरहर्यानंद, 5. भावानंद, 6. पीपा, 7. कबीर, 8. सेन, 9. धन्ना, 10. रैदास, 11. पद्मावती, 12. सुरसुरी।

रामानंद संप्रदाय की गद्दी गलताजी (राजस्थान) में अनन्तानंद के शिष्य कृष्णदास पयहारी ने स्थापित की। इसे उत्तर तोताद्रि भी कहा जाता है, क्योंकि रामानुज संप्रदाय के लिए दक्षिण में जो महत्त्व तोताद्रि का था, वही महत्त्व रामानंद संप्रदाय के लिए उत्तर भारत में इस गद्दी का था।

नाथ पंथियों के कारण ही पयहारी जी की शिष्य परंपरा में योग साधना का भी कुछ समावेश हुआ। योग साधना को प्रमुखता देने वाले वैरागी शाखा को तपसी शाखा भी कहा गया। जिसका पल्लवन इसी परंपरा के कीलदास के शिष्य द्वारकादास ने किया।

गुरु ग्रंथ साहब में भी रामानंद के दो पद संकलित हैं।

गोस्वामी तुलसीदास (1532-1623 ई.)

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन चरित को जानने के लिए कुछ कृतियाँ प्रमुख हैं—बेनीमाधवदास द्वारा रचित मूलगोसाई चरित और महात्मा रघुवरदास द्वारा रचित तुलसी चरित इनके अतिरिक्त प्रियादास द्वारा रचित भक्तमाल की टीका में भी कुछ प्रसंग मिलते हैं।

तुलसीदास जी का जन्म उक्त दोनों चरितों के आधार पर 1554 विक्रमी माना जाता है और मृत्यु संवत् 1680 विक्रमी में। ऐसा मानने पर तुलसी की आयु 126 वर्ष ठहरती है जो संभव नहीं जान पड़ती। अतः पं. रामगुलाम द्विवेदी और जार्ज ग्रियर्सन का मत अधिक स्वीकार्य है जिसके अनुसार तुलसी का जन्म संवत् 1589 विक्रमी अर्थात् 1532 ई. में हुआ था और मृत्यु 1680 वि. अर्थात् 1623 ई. में हुई।

तुलसी के जन्मस्थान के संबंध में भी दो मत हैं। कुछ लोग उनका जन्म स्थान एटा जिले के 'सोरो' नामक स्थान को मानते हैं और प्रमाण स्वरूप दोहे की इस पंक्ति को उद्धृत करते हैं—

“मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।”

आचार्य शुक्ल के अनुसार यह 'सूकर खेत' एटा जिले का सोरो कस्बा नहीं अपितु गोंडा जिले में सरजू किनारे स्थित एक पवित्र तीर्थ 'सूकर क्षेत्र' है।

'गोसाई चरित' एवं 'तुलसी चरित' दोनों में तुलसी का जन्मस्थान 'राजापुर' ही बताया है। शिवसिंह सेंगर और राम गुलाम द्विवेदी भी राजापुर को ही तुलसी का जन्मस्थान मानते हैं। आचार्य शुक्ल ने भी राजापुर को तुलसी का जन्मस्थान माना है तथा अपने कथन के समर्थन में निम्न प्रमाण दिए हैं—

1. रामचरितमानस में प्रयुक्त कुछ शब्द ऐसे हैं जो स्थान विशेष में बोली जाने वाली शब्दावली है। यह शब्दावली राजापुर के आसपास की है, सोरो के आसपास की नहीं।
2. अवधी भाषा में रचना करने वाले सारे कवि अवध या पूरब के ही हैं, पश्चिम का कोई नहीं।
3. जानकी मंगल, पार्वती मंगल की ठेठ अवधी 'सोरो' (पश्चिमी हिंदी ब्रज क्षेत्र) का निवासी नहीं लिखेगा।

नोट

4. रामचरितमानस में प्रयाग से चित्रकूट जाते समय राम यमुना पार करते हैं और भारद्वाज के द्वारा साथ लगाए हुए शिष्यों को विदा करते हैं। उसी समय वहाँ एक तपस्वी आगमन का प्रसंग दिया गया है।

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघु वयस सुहावा।

इस तापस के रूप में तुलसी ने ही स्वयं को राम के पास पहुँचाया है और ठीक उसी स्थान पर जहाँ के वे निवासी थे, अर्थात् राजापुर के पास। तुलसी के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। इस संबंध में रहीम का यह दोहा प्रसिद्ध है—

सुरतिय नरतिय नागतिय सब चाहति अस कोय।

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।।

अभुक्तमूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण बालक तुलसीदास को जन्म के बाद ही पिता द्वारा त्याग दिया गया। कहा जाता है कि उनकी माता की मृत्यु प्रसूतिकाल में ही हो गई थी। उनका पालन-पोषण मुनिया नामक दासी ने किया बाद में बालक **रामबोला** (तुलसी का बचपन का नाम) बाबा नरहरिदास के पास आ गया जिन्होंने उन्हें शिक्षा-दीक्षा दी। इन्हीं गुरु से उन्हें रामकथा सुनने को मिली। बाबा नरहरिदास के साथ ही बालक रामबोला काशी में आया जहाँ परम विद्वान महात्मा शेष सनातनजी की पाठशाला में 15 वर्ष तक अध्ययन करके शास्त्र पारंगत बने और अपनी जन्मभूमि राजापुर लौटे।

तुलसी का विवाह रत्नावली से हुआ था। कहा जाता है कि ये अपनी पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर ये चढ़ी नदी को तैरकर पार करते हुए उसके पास जा पहुँचे और रत्नावली ने इन्हें धिक्कारते हुए कहा—

1. लाज न लागत आपकोँ दौरे आयहु साथ।

धिक-धिक ऐसे प्रेम कौं कहा कहौं मैं नाथ।।

2. अस्थि चर्म मय देह मम तामैं ऐसी प्रीति।

तैसी जौ श्रीराम महं होति न तौ भवभीति।।

रत्नावली के इन वचनों का ऐसा प्रभाव तुलसी पर पड़ा कि वे विरक्त होकर काशी चले गए। इस घटना का विवरण प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका में तथा तुलसी चरित्र और गोसाईं चरित्र में मिलता है।

तुलसी की रचनाओं की संख्या आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने बारह मानी है जिसमें पांच बड़े और सात छोटे ग्रंथ हैं—

1. रामचरितमानस, 2. विनयपत्रिका, 3. कवित्त रामायण (कवितावली), 4. दोहावली, 5. गीतावली।
छोटे ग्रंथों में—1. रामलला नहछू, 2. कृष्णगीतावली, 3. वैराग्य संदीपनी, 4. रामाज्ञा प्रश्नावली, 5. बरवै रामायण, 6. पार्वती मंगल, 7. जानकी मंगल के नाम हैं।

शिवसिंह सरोज में इनके अतिरिक्त 10 और ग्रंथों के नाम दिए गए हैं जो तुलसी रचित बताए गए हैं पर शुक्ल जी उन्हें तुलसी की प्रामाणिक रचनाओं में स्थान नहीं देते।

उनके कुछ ग्रंथों की रचना के संबंध में जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। यथा—

1. **बरवै रामायण** की रचना गोस्वामी तुलसीदास ने अपने मित्र **अब्दुरहीम खानखाना** (रहीम) के आग्रह पर की थी। इसमें प्रयुक्त छंद वही हैं जो रहीम के ग्रंथ बरवै नायिका भेद में हैं।
2. **कृष्ण गीतावली** की रचना वृंदावन यात्रा के अवसर पर तुलसी ने की। गोसाईं चरित में बेनीमाधवदास ने लिखा है कि कृष्ण गीतावली और रामगीतावली की रचना तुलसी ने चित्रकूट में उसके बाद लिखी जब सूरदास जी उनसे मिलने चित्रकूट आए थे।
3. **रामाज्ञा प्रश्न** की रचना तुलसी ने अपने मित्र प्रसिद्ध ज्योतिषी **पंडित गंगाराम** के अनुरोध पर की थी जो काशी में प्रहलाद घाट पर रहते थे।
4. कहा जाता है कि **हनुमान बाहुक** की रचना तुलसी ने बाहु पीड़ा से मुक्ति पाने हेतु की थी।
5. **विनय पत्रिका** नामक अर्जी की रचना तुलसी ने 'कलिकाल' से मुक्ति पाने हेतु राम के दरबार में प्रस्तुत करने हेतु की।

तुलसी की प्रमुख कृतियों का परिचय

नोट

1. **रामचरितमानस**—तुलसी की अक्षय कीर्ति का आधार उनके द्वारा रचित महाकाव्य रामचरितमानस है। रामचरितमानस की रचना का प्रारंभ अयोध्या में संवत् 1631 वि. (1574 ई.) में हुआ और उसे 2 वर्ष 7 माह में समाप्त किया। इसका कुछ अंश विशेषतः **किष्किंधाकांड काशी** में रचा गया। रामचरितमानस की रचना पूरी करने के बाद तुलसी काशी में रहने लगे थे तथा अनेक शास्त्रज्ञ विद्वानों से उनका शास्त्रार्थ हुआ था। प्रसिद्ध विद्वान मधुसूदन सरस्वती से भी इनका शास्त्रार्थ हुआ था और उन्होंने तुलसी की प्रशंसा की थी।

रामचरितमानस की रचना अवधी भाषा में **दोहा-चौपाई** शैली में हुई है। यह **रामकथा पर आधारित महाकाव्य है जिसमें सात कांड हैं**—1. बालकांड, 2. अयोध्याकांड, 3. अरण्यकांड, 4. किष्किंधाकांड, 5. सुंदरकांड, 6. लंकाकांड और 7. उत्तरकांड।

राम चरितमानस के राम लोकरक्षक हैं। वे शक्ति, शील एवं सौंदर्य के भंडार हैं—रचना कौशल, प्रबंध पटुता, सहृदयता की दृष्टि से रामचरितमानस हिंदी काव्य में सर्वश्रेष्ठ है। इसमें कथा काव्य के सभी अवयवों का उचित सामंजस्य है।

रामचरितमानस की सबसे बड़ी विशेषता है—**कवि द्वारा कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान करना**। ऐसे मार्मिक प्रसंग हैं—पुष्प-वाटिका में सीता-राम का मिलन, रामवनगमन, दशरथ मरण, चित्रकूट प्रसंग, वन मार्ग में राम, लक्ष्मण शक्ति आदि।

रामचरितमानस में प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग है। कहीं कोमल तो कहीं कठोर योजना जो पूर्णतः रसानुकूल भी है। भाषा में आनुप्रासिकता एवं अलंकारिकता भी दिखाई पड़ती है।

रामचरितमानस में **शृंगार रस का शिष्ट एवं मर्यादित वर्णन** है। इस ग्रंथ में वे एक श्रेष्ठ कवि के साथ-साथ एक उपदेशक के रूप में भी सामने आते हैं। रामचरितमानस में सर्वत्र समन्वय की विराट चेष्टा की गई है। शैव और वैष्णव का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, ज्ञान और भक्ति का समन्वय, राजा और प्रजा का समन्वय, ज्ञान और भक्ति का समन्वय, राजा और प्रजा का समन्वय सब कुछ इस ग्रंथ में है। इसीलिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है—“लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।”

तुलसी की भक्ति भावना निर्गुण भक्तों की रहस्यमयी भक्ति नहीं है अपितु वह सीधी-सादी सरल एवं सहज है। उनके राम कण-कण में व्याप्त हैं और सर्वजन सुलभ हैं। उत्तरकांड में तुलसी ने ज्ञान-भक्ति का जो विवेचन किया है, वह उन्हें उच्चकोटि का विद्वान सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। रामचरितमानस में लंबे-लंबे सांगरूपकों की जो योजना की गई है वह कवि की विद्वता एवं भाषाधिकार को व्यंजित करती है।

तुलसी ने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य शैलियों में रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। उन्हें ब्रजभाषा और अवधी दोनों काव्य भाषाओं पर समान अधिकार प्राप्त था। विनयपत्रिका, कवितावली एवं दोहावली जैसे ग्रंथ उन्होंने ब्रजभाषा में ही लिखे हैं। उनकी **विविध रचनाओं** में निम्न शैलियों का प्रयोग हुआ है—

1. रामचरितमानस	दोहा-चौपाई शैली
2. विनयपत्रिका	गीति शैली
3. गीतावली	कवित्त-सवैया शैली
4. कवितावली	पद शैली
5. दोहावली	दोहा शैली
6. बरवै रामायण	बरवै शैली

तुलसी भाषा के पंडित थे। संस्कृत पर उनका पूर्ण अधिकार था। रामचरितमानस की स्तुतियाँ संस्कृत में रचित हैं। विनय पत्रिका के प्रारंभिक पदों में संस्कृत पद उपन्यास है। वह भी इस बात का प्रमाण है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि **सूरदास की रचना में संस्कृत की कोमलकांत पदावली और अनुप्रासों की वह छटा नहीं है जो**

नोट

तुलसी की रचना में दिखाई पड़ती है। आचार्य शुक्ल ने तुलसी के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है—“गोस्वामी जी के प्रादुर्भाव को हिंदी काव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिंदी काव्य की शक्ति का पूर्व प्रसार इनकी रचनाओं में पहले-पहल दिखाई पड़ा है।”

गीतावली की रचना संभवतः तुलसी ने सूरदास जी के अनुकरण पर की है, क्योंकि सूर की बाललीला के पद और गीतावली में राम की बाललीला के पदों में बहुत कुछ साम्य दिखाई पड़ता है।

गोस्वामी जी शास्त्रज्ञ विद्वान थे, किंतु उनकी शब्द-योजना संस्कृत गर्भित, साहित्यिक होते हुए भी सरस एवं कोमलकांत पदावली से युक्त है।

तुलसी का रामचरितमानस उत्तर भारत में इतना लोकप्रिय हुआ है कि वह हिंदुओं के पूजाघरों में स्थान पाता है लोग अमंगल की शांति हेतु उसका पारायण करते हैं तथा उसके अखंड पाठ का आयोजन करवाते हैं। व्यक्तिगत साधना के साथ ही लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा भी रामचरितमानस में विद्यमान है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में—

“भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो तुलसीदास को रामचरितमानस के राम एक आदर्श चरित्र हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए आदर्श व्यवहार की कसौटी राम का चरित्र है। वे एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श स्वामी, आदर्श शिष्य, आदर्श राजा के रूप में समाज के सम्मुख ‘आदर्श’ प्रस्तुत करते हैं इसीलिए राम का चरित्र मानदंड बन गया है। रामचरितमानस मानव व्यवहार का दर्पण है तथा शुक्ल जी ने अपनी आलोचना पद्धति में तुलसी को एक ऐसा पैमाना माना है जिससे वे अन्य कवियों की नाप-जोख करते दिखाई पड़ते हैं। रामचरितमानस में तुलसी ने राम राज्य का वर्णन करते हुए आदर्श शासन व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है।”

2. **विनयपत्रिका**—तुलसीदास की रचनाओं में विनय-पत्रिका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस काव्य ग्रंथ में 279 पद हैं तथा यह **ब्रजभाषा** में लिखी गई है। तुलसी के राम को जानने के लिए **रामचरितमानस** पढ़ना चाहिए और तुलसी को जानने के लिए **विनयपत्रिका**। भक्तिभावना की दृष्टि से यह ग्रंथ अद्वितीय है। इस ग्रंथ का प्रधान रस है—**शान्त रस**। सूरदास की पद शैली में इस ग्रंथ की रचना तुलसी ने की है। ये पद विभिन्न राग-रागिनियों में निबद्ध किए गए हैं जिनमें प्रमुख हैं—**राग विलावल, राग रामकली, राग बसंत, राग भैरव, राग केदार, राग कान्हारा, राग टोड़ी, राग सोरठ, राग, मल्हार** आदि।

कलियुग से संतप्त होकर तुलसीदास ने एक ‘**पत्रिका**’ (अर्जी) राम के दरबार में भेजने के लिए लिखी है और वे चाहते हैं कि माता सीता इसे राम के सम्मुख प्रस्तुत करें। यदि कृपालु राम ने मेरी प्रार्थना सुन ली तो बिगड़ी हुई बात भी बन जाएगी।

कबहुं अंब अवसर पाइ।

मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ।

सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाय॥

विनयपत्रिका का निर्माण मुक्तक गेय पदों में हुआ है तथापि उसमें एक ‘पत्र’ जैसी प्रबंधात्मकता भी विद्यमान है। विनयपत्रिका के पदों में आत्मनिवेदन, शरणागति की कामना, मन की भर्त्सना, दैन्य आदि भावों की सुंदर व्यंजना हुई है। तुलसी की भक्ति दास्यभाव की है। जिसका मूल आधार दैन्य है। विनयपत्रिका में तुलसी के दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति भी हुई है। वे विशिष्टद्वैत दर्शन के अनुरूप अपनी मान्यताओं को व्यक्त करते हैं। **विनयपत्रिका** के कुछ प्रसिद्ध पद इस प्रकार हैं—

1. अबलौं नसानी अब न नसैहौं।
2. केशव कहि न जाय का कहिए।
3. ऐसी मूढ़ता या मन की।
4. जौ निज मन परिहरै विकारा।
5. श्री रामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुण।

नोट

6. तू दयाल दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
7. सुनि सीता पति सील सुभाउ।
8. जाके प्रिय न राम वैदेही।
9. राम कहतु चलु राम कहत चलु राम कहतु चलु भाई रे।
10. कबहुंकि हौं यह रहनि रहौंगो।

तुलसी की भक्ति पद्धति को विनयपत्रिका पढ़कर ही समझा जा सकता है। नवधा भक्ति का स्वरूप विनयपत्रिका में उपलब्ध होता है।



टास्क राम काव्य परंपरा के भक्त कवियों का जीवन परिचय दीजिए।

3. **गीतावली**—गीतावली भी गीतिकाव्य शैली में सात कांडों में रचित काव्य ग्रंथ है जिसमें रामकथा के मधुर प्रसंगों का गान **मुक्तक शैली** में किया गया है। राम के सौंदर्य, शील, शक्ति का सुंदर चित्रण इस एक ग्रंथ में हुआ है, गीतावली में राम के बाल रूप की झाँकी अंकित करते हुए **वात्सल्य** रस का सुंदर विधान किया गया है। वात्सल्य के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का सुंदर निरूपण इस ग्रंथ में है। शृंगार रस के मधुर चित्र भी इसमें अंकित हैं। यथा—

“दूलह राम सीय दुलही री”

गीतावली की रचना सरस **ब्रजभाषा** में हुई है जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है। गीतावली के वात्सल्य वर्णन पर सूरदास के बाल वर्णन का प्रभाव परिलक्षित होता है। उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग करते हुए भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति तुलसी ने की है।

4. **कवितावली**—कवितावली की रचना ‘कवित्त-सवैया’ शैली में हुई है। यह भी मुक्तक काव्य ग्रंथ है जिसमें कवित्त, सवैया और छप्पय इन तीन छंदों का प्रयोग हुआ है। इसे तुलसी की अंतिम कृति माना जाता है। इसमें भी सात कांड हैं, किंतु प्रबंधत्व नहीं है। रामकथा से संबंधित कवित्त लंकाकांड तक संकलित हैं तथा तुलसी के निजी जीवन एवं तत्कालीन समाज की दशा से संबंधित कवित्त उत्तरकांड में हैं।

कवितावली के प्रारंभ में राम के बाल रूप की झाँकी को चित्रित करने वाले कवित्त बड़े सुंदर बन पड़े हैं; यथा—

अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं।

रामकथा के सरस मार्मिक स्थलों का चुनाव इस काव्य कृति में भी किया गया है। राम-सीता के विवाह के अवसर का यह कवित्त शृंगार भावना से ओत-प्रोत है—

दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर मांही।

इसी प्रकार ग्राम वधुओं को सीता ने राम का परिचय अपने पति के रूप में कितनी सांकेतिक भाषा में दिया है—

“तरिछे करि नैन दै सैन तिन्हें,

समुझाई कछू मुसकाई चली।”

अलंकारों का सुंदर प्रयोग कवितावली में किया गया है। यथा—**उत्प्रेक्षा** का एक उदाहरण देखिए—

अनुराग तड़ाग में भानु उदै विगसीं मनो मंजुल कंज कली।

संदेह अलंकार का उदाहरण देखिए—

तुलसी सुरेस चाप कैधों दामिनी कलाप,

कैधो कली मेरु तैं कृसानु सरि भारी है।

अंतः साक्ष्य के लिए कवितावली का आधार लेकर तुलसी संबंधी जीवन वृत्त की खोज की गई है। इसमें तुलसी

नोट

की दुरावस्था, तत्कालीन अकाल, महामारी, अधर्म, पाप, अत्याचार आदि का सुंदर चित्रण किया गया है। कवितावली भी ब्रजभाषा में लिखी गई है, किंतु उसमें अवधी, बंगला, राजस्थानी, अरबी-फारसी के शब्द भी मिल जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न-

7. राम को पूर्ण ब्रह्म मानते हुए अनेक पुराणों में रामकथा के दिखाई पड़ते हैं।
(क) प्रपंच (ख) अपभ्रंश
(ग) प्रसंग (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं
8. राम काव्य परंपरा के सर्वप्रमुख एवं सशक्त महाकवि हैं ।
(क) स्वामी रामानंद (ख) राघवानंद
(ग) भावानंद (घ) गोस्वामी तुलसीदास
9. किसके कारण पयहारी जी की शिष्य परंपरा में योग साधना का भी कुछ समावेश हुआ है?
(क) दास पंथियों (ख) पाथ पंथियों
(ग) जात पंथियों (घ) नाथ पंथियों
10. में तुलसी के दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति भी हुई है।
(क) उदयपत्रिका (ख) समयपत्रिका
(ग) विनयपत्रिका (घ) या उपरोक्त में से कोई नहीं

12.1.7 राम काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

राम काव्य परंपरा का यद्यपि एक लंबा इतिहास है, तथापि इस परंपरा के केंद्र बिंदु हैं गोस्वामी तुलसीदास, जो हिंदी काव्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति सर्वत्र अपना प्रकाश पुंज विकीर्ण कर रहे हैं। रामकाव्य परंपरा में उनके ग्रंथ मील का पत्थर सिद्ध हुए हैं। रामचरितमानस हिंदू धर्म, संस्कृति, आचार-विचार का मापदंड बन गया है तथा यह ग्रंथ जितना लोकप्रिय हुआ है, उसकी कोई समता नहीं है। उच्चकोटि के काव्यत्व से युक्त इस ग्रंथ में मानव धर्म की अद्भुत व्याख्या की गई है। राम काव्य परंपरा के प्रमुख कवि होने से हम तुलसी को ही केंद्र मानकर रामकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण करेंगे। इस काव्यधारा की विशेषताओं का विवेचन अग्र शीर्षकों में किया जा सकता है—

1. **राम का स्वरूप**—राम काव्य परम्परा के कवियों ने भगवान विष्णु के अवतार 'राम' के जीवन चरित्र को आधार बनाकर अपने काव्य ग्रंथों की रचना की। इन कवियों ने राम को परब्रह्म मानकर धर्म की स्थापना हेतु अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र रूप में अवतार ग्रहण कर मानवीय लीलाएँ करते हुए दिखाया है। तुलसी ने राम के जिस स्वरूप की परिकल्पना रामचरितमानस में की है, वह शक्ति, शील एवं सौंदर्य का भंडार हैं। राम के रूप में उन्होंने एक ऐसे मानवीय चरित्र को प्रस्तुत किया है, जो सबके लिए अनुकरणीय है और एक आदर्श पात्र है। तुलसी के राम लोक रक्षक हैं तथा अधर्म के विनाशक एवं धर्म के संस्थापक हैं। वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और श्रेष्ठतम गुणों से विभूषित हैं। तुलसी के राम अपने अनंत सौंदर्य से जन-जन को मोहित करने वाले हैं साथ ही अपूर्व शील से सबके हृदय को अपने वशीभूत कर लेते हैं। वे अद्वितीय वीर हैं तथा इस वीरता से अधर्म का विनाश करते हुए तत्पर दिखाई देते हैं।
2. **भक्ति का स्वरूप**—राम भक्ति शाखा के कवियों ने राम के प्रति दास्य भाव की भक्ति भावना प्रदर्शित की है। वे स्वयं को सेवक तथा 'राम' को अपना आराध्य मानते हैं। तुलसी ने रामचरितमानस में दास्य भाव की भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हुए कहा है—

सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

विनय पत्रिका में भी तुलसी की भक्ति का यही स्वरूप दिखाई पड़ता है। दास्य भाव की भक्ति से भक्त अहंकार शून्य होकर उस परमात्मा के महत्त्व से परिचित होता चला जाता है।

नोट

तू दयाल दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं अनाथ पातकी तू पाप पुंज हारी।
× × × ×
राम सौं बड़ों कौन मो सो कौन छोटे
राम सौं खरो है कौन मो सो कौन खोटो॥

तुलसी की भक्ति पद्धति बड़ी अनुपम है। उसमें आराध्य के प्रति श्रद्धा, प्रेम का समन्वय है तथा धर्म और ज्ञान का भी योग है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है—“गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उसका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं।”

तुलसी की भक्ति नवधा भक्ति है जिसका चरम उत्कर्ष विनय पत्रिका में देखा जा सकता है। भजन, कीर्तन, नाम स्मरण, गुण कथन, दैन्य, समर्पण आदि सभी तत्व तुलसी की भक्ति पद्धति में उपलब्ध हो जाते हैं रामभक्त कवियों की दृष्टि उदार थी। राम के प्रति अनन्यता होते हुए भी उन्होंने किसी अन्य देवी-देवता के प्रति तिरस्कार नहीं दिखाया है। साथ ही भक्ति मार्ग की महत्ता बताते हुए भी ज्ञान और कर्म की महत्ता भी प्रतिपादित की हैं उनकी भक्ति वेद-शास्त्र की मर्यादा के अनुकूल है और विभिन्न मतों का सार तत्व होने से पारंपरिक होते हुए भी नवीनता लिए हुए है।

3. **समन्वयवादी प्रवृत्ति**—राम भक्त कवियों की एक उल्लेखनीय विशेषता है—इनकी समन्वयवादी प्रवृत्ति। तुलसी के समय में समाज में अनेक प्रकार के विग्रह व्याप्त थे। धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा के नाम पर आए दिन संघर्ष होते रहते थे, अतः समन्वय तत्कालीन युग की आवश्यकता थी। तुलसी ने रामचरितमानस में हर दृष्टि से समन्वयवादी प्रवृत्ति को अपनाते हुए लोकनायक होने का परिचय दिया। सगुण भक्ति धारा के कवि होते हुए भी उन्होंने निर्गुण की उपेक्षा नहीं की अपितु निर्गुण ब्रह्म को ही सगुण और साकार रूप में अवतार ग्रहण कर मानवीय लीलाएँ करते हुए दिखाकर दोनों का समन्वय किया। इसी प्रकार उन्होंने शैव और वैष्णव का समन्वय कर राम के द्वारा शिव की अर्चना करवाई है। यही नहीं अपितु उन्होंने ज्ञान और भक्ति का समन्वय किया, राजा और प्रजा का समन्वय किया तथा जनभाषा और संस्कृत का समन्वय किया। दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने अद्वैतवाद विशिष्टद्वैतवाद, सांख्य और शुद्धाद्वैतवाद को समन्वित किया है। उनका संपूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है और इस समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण ही तुलसी के काव्य को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

4. **मूल्य बोध एवं युगबोध**—रामभक्त कवियों का उद्देश्य केवल काव्य रचना करना ही नहीं था। वे जितने उच्चकोटि के कवि थे, उतने ही बड़े उपदेशक भी थे। उनकी रचनाएँ केवल काव्य रसिकों के आस्वाद की विषयवस्तु नहीं हैं, अपितु जनता के एक बहुत बड़े वर्ग को जीवन के नैतिक मूल्यों की शिक्षा भी देती हैं। वे एक उपदेशक के रूप में भी सामने आते हैं। उन्होंने राम के चरित्र के द्वारा आदर्श उपस्थित किया है—एक पुत्र का आदर्श, एक मित्र का आदर्श, एक राजा का आदर्श, एक पति का आदर्श। यही नहीं रामचरितमानस के अन्य पात्र भी हमारे समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हैं। भरत भातृप्रेम का आदर्श हैं, तो सीता पत्नीत्व का आदर्श हैं, हनुमान सेवक का आदर्श प्रस्तुत करते हैं तो लक्ष्मण छोटे भाई का आदर्श। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन नैतिकता की पराकाष्ठा है, परंतु वह कहीं भी अस्वाभाविक नहीं लगता। तुलसी ने रामचरितमानस के द्वारा लोक कल्याण की कामना करते हुए जनता को नैतिकता एवं सदाचार का अविस्मरणीय पाठ पढ़ाया है। उनकी इस विशेषता को लक्ष्य कर आचार्य शुक्ल ने कहा है—

“भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्हीं महानुभाव को। इनकी वाणी

की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। व्यक्तिगत साधना के साथ-ही-साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उसमें विद्यमान है।”

रामभक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में युगीन परिस्थितियों का उल्लेख भी किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में कलियुग-निरूपण के द्वारा तत्कालीन मुस्लिम शासकों की शासन व्यवस्था में होने वाले अत्याचारों, तदयुगीन सामाजिक विकृतियों का यथार्थ चित्रण किया है साथ ही राम राज्य निरूपण के अंतर्गत आदर्श शासन व्यवस्था की रूपरेखा भी प्रस्तुत की है। इस प्रकार वे युग बोध के दायित्व का भी सफलतापूर्वक निर्वाह करने में समर्थ हुए हैं।

5. **नारी विषयक दृष्टिकोण**—राम काव्य में स्थान-स्थान पर नारी के विषय में अपना दृष्टिकोण कवियों ने प्रस्तुत किया है। प्रायः आलोचकों ने तुलसी के नारी विषयक दृष्टिकोण के प्रति पूर्वाग्रह रखते हुए उन्हें नारी निंदक के रूप में निरूपित किया है। उनके इस मत का आधार तुलसी द्वारा कही गई निम्न उक्ति है—

ढोल गँवार सुद्र पसू नारी। जे सब ताड़ना के अधिकारी।

परंतु वे यह भूल जाते हैं कि तुलसी ने सीता, पार्वती, अनुसूया जैसी नारियों के उज्ज्वल चरित्र की परिकल्पना करते हुए नारी को सती, पतिव्रता एवं त्यागमयी रूप में प्रस्तुत कर उन्हें गरिमा एवं भव्यता प्रदान की है। उन्होंने नारी के कामिनी रूप की भर्त्सना की है, भामिनी रूप की नहीं। नारी के पतिव्रत धर्म की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं—“**धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।**” विलासिनी एवं कुलटा नारियों की निंदा कबीर ने भी की है और तुलसी ने भी, परंतु उसके आधार पर यह कहना कि वे कवि नारी निंदक हैं, इनके प्रति अन्याय ही होगा। सच तो यह है कि इन्होंने निकृष्ट पुरुषों को भी निंदनीय माना है जो काम के वशीभूत होकर कर्तव्यच्युत हो जाते हैं—**‘नारि विवस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाई।’** तुलसी ने नारी जाति के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हुए एवं उसकी पराधीनता को लक्षित करते हुए एक ही पंक्ति में उसकी नियति को स्पष्ट कर दिया है—

“कत विधि सृजी नारि जग मांही। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।”

नारी के प्रति इन कवियों की दृष्टिकोण तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप ही था। नारी की पीड़ा का जैसा अनुभव इन्होंने किया वैसा बहुत कम कवि कर सके हैं, अतः हमें पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इनके नारी संबंधी दृष्टिकोण की परीक्षा करनी चाहिए।

6. **प्रबंध रचना की प्रवृत्ति**—भक्ति काल के रामभक्त कवियों ने रामकथा को लेकर प्रायः प्रबंध काव्यों की रचना की है। तुलसी का रामचरितमानस इस काव्य परम्परा का अन्यतम महाकाव्य है। इसके अतिरिक्त प्राणचंद चौहान ने रामायण महानाटक, लालचंद ने अवध विलास और हृदयराम ने हनुमन्नाटक नामक प्रबंध काव्य लिखे हैं। प्रबंध काव्य के अनुकूल गांभीर्य और मर्यादा तो राम के चरित्र में है ही, साथ ही रामकथा में ऐसे अनेक मार्मिक प्रसंग उपलब्ध हैं, जिनका होना प्रबंध काव्य के लिए अत्यावश्यक है। इन मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना करने एवं उनका रसात्मक वर्णन करने में जिस कवि का मन जितना अधिक रमता है, वह उतना ही अच्छा प्रबंधकार हो सकता है। इसे कसौटी मानकर आचार्य शुक्ल ने तुलसी को हिंदी का सर्वश्रेष्ठ प्रबंधकार माना है तथा यह स्वीकार किया है कि “रचना-कौशल, प्रबंध-पटुता, सहृदयता इत्यादि सब गुणों का समाहार हमें रामचरितमानस में मिलता है।”



क्या आप जानते हैं

राम काव्य की रचना मुक्तक काव्य के रूप में हुई है, परंतु ये मुक्तक रचनाएँ प्रायः ब्रजभाषा में लिखी गईं, अवधी में नहीं। तुलसी ने विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली आदि मुक्तक काव्यों की रचना की है।

7. **विविध काव्य शैलियाँ**—रामभक्त कवि शास्त्रज्ञ एवं विद्वान थे। वे कविता करने में सिद्धहस्त थे, अतः किसी एक विशेष शैली में ही नहीं अपितु विविध काव्य शैलियों में पारंगत थे। यही कारण है कि राम

नोट

काव्य की रचना विविध शैलियों में की गई है। तुलसी ने रामचरितमानस की रचना प्रबंध काव्य के रूप में दोहा-चौपाई शैली में की, जबकि कवितावली की रचना कवित्त-सवैया शैली में मुक्तक काव्य के रूप में की। विनय पत्रिका में पद शैली को तथा बरवै रामायण में बरवै शैली को अपनाया गया है। रामायण महानाटक के रचयिता प्राणचंद चौहान तथा हनुमन्नाटक के रचयिता हृदयराम ने संवाद-शैली में अपने ग्रंथों का प्रणयन किया। वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति विद्यापति और सूरदास की पद-शैली एवं गति पद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त सवैया पद्धति तथा जायसी आदि सूफी कवियों की दोहा-चौपाई शैली का सफलतापूर्वक प्रयोग रामभक्त कवियों की रचनाओं में किया गया है। तुलसी के काव्य में इन सभी शैलियों का प्रयोग जितनी सफलता से हुआ है उसे देखकर ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनमें काव्य प्रतिभा किस हद तक विद्यमान थी।

8. **राम काव्य में रस-योजना**—राम काव्य का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमें सभी रसों की योजना करने का अवसर कवियों को प्राप्त हो गया है, परिणामतः इस काव्य में नव रसों का पूर्ण परिपाक उपलब्ध होता है। भक्ति भावना की प्रधानता होने के कारण निर्वेद जन्य शांत रस को ही हम राम काव्य का प्रधान रस स्वीकार कर सकते हैं। तुलसी साहित्य में सभी रसों का समावेश है। रामचरितमानस के युद्ध वर्णन में वीर एवं रौद्र रसों की सुंदर योजना हुई है तथा शृंगार का मर्यादित चित्र पुष्प वाटिका में राम-सीता के प्रथम दर्शन पर देखा जा सकता है। मर्यादावादी होने के कारण तुलसी ने शृंगार का मर्यादित चित्र ही अंकित किया है किंतु वहाँ जो कुछ भी है, अत्यंत शालीन एवं मधुर है। सभा भवन में राम और सीता पास-पास बैठे हुए हैं। सीता जी राम की ओर देखना भी चाहती हैं, किंतु गुरुजनों के सम्मुख यह कैसे संभव हो, अतः कंकण के नग में राम के प्रतिबिंब को देखकर कैसी मुग्ध हो रही हैं—

राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाँही।

यातै सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रहीं पल टारति नाहीं॥

‘अग्रदास’ के राम काव्य में रसिकता की भावना का समावेश भी है, जिसे वस्तुतः कृष्ण काव्य का ही प्रभाव माना जा सकता है।

9. **अवधी भाषा का प्रयोग**—राम काव्य की रचना प्रमुख रूप से अवधी भाषा में हुई है। गोस्वामी जी का रामचरितमानस अवधी भाषा में ही लिखा गया है। तुलसी विलक्षण प्रतिभा संपन्न कवि थे, क्योंकि उन्हें ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। उन्होंने कवितावली एवं विनय पत्रिका जैसे मुक्तक काव्यों में सुंदर, मधुर, सरस ब्रजभाषा का प्रयोग करते हुए अपनी इस शक्ति का परिचय दिया है। तुलसी की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है—प्रसंगानुकूलता। रसानुकूल शब्द चयन, आनुप्रासिकता एवं पात्रानुकूलता जैसे गुण उनकी भाषा में सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं। उनकी भाषा में स्वाभाविकता, सरसता एवं भावव्यंजकता भी विद्यमान है।

तुलसी के अतिरिक्त अन्य भक्तिकालीन कवियों ने प्रायः अवधी में ही राम काव्य की रचना की है। लालदास कृत अवध विलास तथा ईश्वरदास कृत भरत मिलाप अवधी भाषा में लिखी गई रचनाएँ हैं। तुलसी ने जिस अवधी का प्रयोग किया है वह परिनिष्ठित साहित्यिक अवधी है जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है। वह पूर्णतः व्याकरण सम्मत है तथा उसमें रंचमात्र भी शिथिलता नहीं है।

10. **छंद एवं अलंकार योजना**—रामभक्त कवि काव्य मर्मज्ञ थे। वे काव्यशास्त्र के नियमों से बंधी हुई छंद योजना करने में पूर्ण समर्थ थे। यही कारण है कि तुलसी जैसे समर्थ कवि ने किसी एक छंद में नहीं अपितु विविध छंदों में काव्य रचना की है। रामचरितमानस में दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया आदि छंदों का सफल प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के छंदों का प्रयोग भी उन्होंने संस्कृत में रची गई स्तुतियों में किया है। घनाक्षरी, कवित्त, तोमर, त्रिभंगी छंदों का भी सुंदर प्रयोग राम काव्य में देखा जा सकता है।

राम काव्य परंपरा के कवि अलंकार प्रवीण थे। काव्य में अलंकारों के प्रयोग में ये सिद्धहस्त थे। यद्यपि इन्होंने चमत्कार प्रदर्शन के लिए अलंकार योजना नहीं की है तथापि उनका काव्य अलंकारों में मंडित है। उपमा, उत्प्रेक्षा उनके प्रिय अलंकार हैं। रूपकों का जैसा विस्तृत निर्वाह तुलसी ने किया है, वैसा विरले कवि ही करने में समर्थ होते हैं। रामचरितमानस में ज्ञान-भक्ति के विवेचन में जो लंबा सांगरूपक उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह उन जैसे

प्रतिभा संपन्न कवि का ही सामर्थ्य था। इन कवियों की अलंकार योजना स्वाभाविक एवं अर्थबोध में सहायक रही हैं विभावना, प्रतीत, दृष्टांत जैसे अलंकार भी तुलसी के काव्य में मिल जाते हैं।



टास्क राम काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्य की तुलना में भक्तिकालीन रामकाव्य भले ही परिमाण की दृष्टि से न्यून हो, किंतु अपनी गरिमा एवं उदात्तता के कारण वह हिंदी काव्य में सर्वश्रेष्ठ है। भक्तिरस से सराबोर इन कवियों की वाणी ने जनता को आशा, उत्साह एवं स्फूर्ति का संदेश दिया। यही कारण है कि गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरितमानस आज राजा से लेकर रंक तक, विद्वान से लेकर मूर्ख तक सबके घरों में विराज रहा है। इन कवियों का प्रदेय हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है और इनकी उच्चकोटि की रचनाओं के कारण ही भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना गया है।

12.1.8 अष्टछाप

(क) परिचय—कृष्ण-भक्ति शाखा श्री निंबकाचार्य, श्री माध्वाचार्य, श्री विष्णु स्वामी, श्री वल्लभाचार्य और श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धांतों से अनुप्राणित थी। कृष्णभक्ति शाखा पर वल्लभाचार्य का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। उन्होंने ब्रह्मसूत्रों पर ‘अणुभाष्य’ लिखा था और श्रीमद्भागवत पर ‘सुबोधिनी टीका’। इनके दार्शनिक सिद्धांत ‘शुद्धाद्वैत’ के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनकी उपासना-पद्धति ‘पुष्टिमार्गी’ कहलाती है। पुष्टि भगवान के अनुग्रह को कहते हैं। इनके उपास्य नवनीतप्रिय गोपाल बालकृष्ण हैं। ये लोग अपने पुरुषार्थ की अपेक्षा भगवान के अनुग्रह को ही अधिक महत्त्व देते हैं। श्री वल्लभाचार्य ने जिस पुष्टिमार्गीय भक्ति-संप्रदाय की स्थापना की थी, उसका जिन हिंदी-भक्त कवियों द्वारा पल्लवन किया गया, उन्हें अष्टछाप के कवि कहा गया है। यूँ तो पुष्टिमार्ग को स्वीकार करने वाले अनेक भक्त थे परंतु जिन आठ भक्त कवियों पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने आशीर्वाद की छाप लागई थी, उन्हें ‘अष्टसखा’ या ‘अष्टछाप’ की संज्ञा दी गई।

(ख) अष्टछाप के कवि—ब्रज में पुष्टिमार्ग का व्यापक प्रभाव पड़ा और इस संप्रदाय में दीक्षित बहुत-से महानुभावों ने अपनी भावनाओं को काव्यलहरी से प्रभावित किया। श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य के सुपुत्र विट्ठलनाथ जी ने निम्नलिखित आठ कवियों को चुनकर उन पर प्रमाणिकता की मोहर लगा दी। इनमें से पहले चार कवि महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे तथा शेष कवि गोस्वामी विट्ठलनाथ के थे। इन कवियों के नाम इस प्रकार हैं—1. सूरदास, 2. परमानंददास, 3. कुंभनदास, 4. चतुर्भुजदास, 5. छीत स्वामी, 6. नंददास, 7. कृष्णदास, 8. गोविंद स्वामी।

1. सूरदास—महात्मा सूरदास के जन्म-स्थान, जन्म तिथि और जाति के संबंध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। किन्हीं के अनुसार उनका जन्म संवत् 1529 है तो किन्हीं के द्वारा उनका जन्म संवत् 1540 स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार कुछ विद्वान उनका जन्म-स्थान सीही ग्राम (देहली के पास) मानते हैं तो कुछ के विचार में उनका जन्म-स्थान रुनकता गाँव (रेणुका क्षेत्र; आगरा और मथुरा के बीच) है। कुछ विद्वानों के मत से ये सारस्वत ब्राह्मण थे तथा कुछ विद्वानों की सम्मति में ये चंदबरदास के वंशज स्वीकार किए गए हैं।

जनश्रुति के अनुसार सूरदास जन्मांध थे, किंतु इस पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि सूरदास की कविता में विविध रंगों, भाव-भंगिमाओं और भिन्न-भिन्न प्राकृतिक वस्तुओं एवं दृश्यों को जैसा सफल चित्रण हुआ है वैसा एक चक्षुर्विहीन व्यक्ति के लिए कठिन ही नहीं, अपितु असंभव भी है।

प्रसिद्ध किंवदंती है कि सूरदास गरुघाट पर भगवद्-भजन करते थे। वहीं पर इनकी भेंट वल्लभाचार्य से हुई। इस समय सूरदास दास्य भाव से भगवत यश गाया करते थे, किंतु वल्लभाचार्य से दीक्षित होने के पश्चात् इन्होंने सख्यभाव से कृष्ण की भक्ति प्रारंभ की; क्योंकि वल्लभाचार्य दास्यभाव की भक्ति को उचित नहीं समझते थे। अतएव हमें सूरदास की रचनाओं में दोनों प्रकार की भक्ति के उदाहरण मिलते हैं।

नोट

‘सूरसागर’ इनकी प्रसिद्ध रचना है। वल्लभाचार्य की आज्ञानुसार इन्होंने ‘श्रीमद्भागवत’ के दशम स्कंध को गीतों में गाया है। उन्हीं का संकलन ‘सूरसागर’ है। ‘श्रीमद्भागवत’ के समाज ‘सूरसागर’ में भी 12 अध्याय हैं, किंतु यह ‘श्रीमद्भागवत’ का अविकल अनुवाद नहीं है। यद्यपि ‘सूरसागर’ बृहदाकार ग्रंथ है, किंतु है मुक्तक ही। सूर की स्वयं भी ऐसी इच्छा प्रतीत होती है अर्थात् वे ‘सागर’ को एक प्रबंध-काव्य की अपेक्षा मुक्तक के रूप में देखना पसंद करते थे। इस बृहद ग्रंथ में सूरदास कृष्ण का चरित्र नहीं लिख रहे हैं, अपितु उनकी भक्ति में लीन होकर उनके चरणों पर अपने स्नेह-संवर्तित भक्ति-भाव अर्पित कर रहे हैं।



क्या आप जानते हैं ‘सूरसूरावली’ और ‘साहित्यलहरी’ सूरदास की, दो अन्य रचनाएँ हैं। ‘सूरसूरावली’ ‘सूरसागर’ की सूची-मात्र है। ‘साहित्यलहरी’ में सूरदास के दृष्टकृत पद संकलित हैं।

सूरदास ने पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के पश्चात माधुर्य एवं सख्यभाव की भक्ति को अपनाया और श्रीकृष्ण एवं उनकी शक्ति राधा की प्रेममयी मूर्ति को अपनाकर शृंगारी विषयों की रचना की।

2. **परमानंद दास**—ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। सन् 1493 ई. में कन्नौज में इनका जन्म हुआ। ये बड़ी मधुर कविता करते थे। कहते हैं कि एक बार इनका एक पद सुनकर श्री वल्लभ जी कई दिवस तक अपने शरीर की सुध भूल रहे। इनके मुक्तक पदों का संग्रह ‘परमानंद के पद’ और ‘वल्लभसंप्रदायी कीर्तन पद-संग्रह’ प्रकाशित हुए। ‘दानलीला’ और ‘ध्रुवचरित’ भी इनकी रचनाएँ मानी जाती हैं। इन्होंने कृष्ण के मथुरा-गमन भँवरगीत तक के प्रसंग को ही मुख्य रूप से अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है।
3. **कुंभनदास**—ये जाति से क्षत्रिय थे और गोवर्द्धन के पास के ही जमुनावती ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म संवत् 1525 में हुआ। अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि चतुर्भुजदास इनके पुत्र थे। ये कृषि का अपना स्वतंत्र व्यवसाय करते थे और परिग्रह के विरोधी थे। इनके द्वारा रचित किसी स्वतंत्र ग्रन्थ का उल्लेख नहीं मिलता। कुछ पद ‘रागकल्पद्रुम’, ‘रागरत्नाकर’, ‘वर्षोत्सव कीर्तन’, ‘वसंत धर्म कीर्तन’ आदि में संकलित हैं। एक बार अकबर बादशाह के बुलाने पर इनको फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा, परंतु इस बात का उन्हें बहुत दुःख था जैसा कि निम्नलिखित पद से प्रकट है—

भक्तन को कहा सीकरी सों काम?

आवत जात पनहैया टूटी, बिसरि गया हरि नाम॥

जिनको मुख देखत दुख उपजत, तिनको करिबे परी परनाम।

कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु, और सब झूठो धाम॥

4. **चतुर्भुजदास**—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि ये कुंभनदास जी के पुत्र थे। इनका जन्म सन् 1530 ई. में गोवर्द्धन के समीप जमुनावती गाँव में हुआ था। इनकी भाषा बड़ी सुंदर एवं सुव्यवस्थित है। इनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। इनके स्फुट पदों को ही ‘चतुर्भुज-कीर्तन संग्रह’, ‘कीर्तनावली’ और ‘दानलीला’ शीर्षकों से प्रकाशित किया गया है।
5. **छीत स्वामी**—ये चतुर्वेदी (चौबे) ब्राह्मण थे। सन् 1510 में मथुरा में इनका जन्म हुआ। विट्ठलनाथ जी से दीक्षा लेने से पहले अशिष्ट पुरुषों की संगति में रहे। ‘दानलीला’, ‘कुंजलीला’ और ‘बधाई’ आदि में इन्होंने अपने समस्त हार्दिक अनुराग के साथ कृष्ण के रूप-सौंदर्य, तिरछी चितवन एवं विविध भावभंगिमाओं तथा क्रियाकलापों का वर्णन किया है।

अष्टछाप के कवि—

1. सूरदास
2. परमानंददास
3. कुंभनदास
4. चतुर्भुजदास
5. छीत स्वामी
6. नंददास
7. कृष्णदास
8. गोविंद स्वामी।

नोट

6. **नंददास**—इनका जन्म सन् 1533 ई. में माना जाता है। इनकी कविता बड़ी सरस और मधुर है। इन्होंने अनुप्रासयुक्त संस्कृत मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग किया है; अतः प्रसिद्ध है—“**सब कवि गढ़िया, नंददास जड़िया**।” ये सूरदास के समकालीन थे और काव्य की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद इनका नाम आता है; इन्होंने निम्नलिखित ग्रंथों का प्रणयन किया है—
भँवरगीत, रासपंचाध्यायी, अनेकार्थ मंजरी, रुक्मिणी-मंगल, हितोपदेश, दशमस्कंध भागवत, ज्ञानमंजरी, मानमंजरी, रूपमंजरी, नाममंजरी, नामचिंतामणि आदि। नंददास की प्रसिद्धि ‘भँवरगीत’ और ‘रासपंचाध्यायी’ के कारण हुई।
7. **कृष्णदास**—इनका जन्म गुजरात में अहमदाबाद के पास सन् 1495 ई. के लगभग हुआ। ये जाति से शूद्र थे, परंतु श्रीवल्लभ की कृपा से मंदिर के प्रधान थे। बीरबल ने इनको कारागार में भेज दिया, परंतु आचार्य के अनुरोध से इन्हें मुक्ति मिली और फिर मंदिर के प्रधान बना दिए गए। इन्होंने किसी ग्रंथ का प्रणयन नहीं किया। इनके शताधिक फुटकर पद ही उपलब्ध हैं। इनकी मातृभाषा यद्यपि गुजराती थी परंतु उन्होंने अध्यवसायपूर्वक ब्रजभाषा पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर लिया था। अष्टछाप के अन्य कवियों के समान शृंगार के अतिरिक्त इनके पदों में ब्रजभूमि के प्रति प्रेम भी व्यक्त हुआ है।
8. **गोविंद स्वामी**—इनका जन्म भरतपुर में सन् 1505 ई. में हुआ। ये स्थाई रूप से महावन रहते थे। सन् 1535 ई. में इन्होंने स्वामी विठ्ठलदास से दीक्षा ली। गोवर्द्धन पर्वत पर इनकी लगाई हुई ‘कदंबखंडी’ अभी तक प्रसिद्ध है। ये बड़े अच्छे गायक थे। जनश्रुति है कि प्रसिद्ध गायक तानसेन इनका गाना सुनने आया करते थे। इनके द्वारा रचित 600 पद बताए जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

11. राम भक्ति शाखा के कवियों ने राम के प्रति दास्य भाव की भक्ति भावना प्रदर्शित की है।
12. राम भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में युगीन परिस्थितियों का उल्लेख नहीं किया है।
13. कृष्ण भक्ति शाखा पर वल्लभाचार्य का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा।
14. दानलीला और ध्रुवचरित सूरदास की दो अन्य रचनाएँ हैं।

12.2 सारांश (Summary)

- कृष्ण काव्य परंपरा का विकास रीतिकाल एवं आधुनिक काल में भी निरंतर होता रहा। रीतिकाल के सभी कवियों एवं आधुनिक काल के ब्रजभाषा कवियों ने कृष्ण को केंद्र बिंदु बनाकर अनेक काव्य ग्रंथ लिखे, किंतु उनका परिचय देना यहाँ अप्रासंगिक होगा।
- कृष्ण भक्त कवियों ने प्रायः पद लिखे हैं। सूरसागर में पदों की प्रधानता है। नंददास ने रूप मंजरी तथा रास मंजरी में दोहा-चौपाई का प्रयोग किया है। रसखान ने कवित्त और सवैया लिखे हैं। कुंडलिया, गीतिका, अरिल्ल जैसे कुछ अन्य छंदों का प्रयोग भी कृष्ण काव्य में हुआ है।
- कृष्ण काव्य की तुलना में भक्तिकालीन रामकाव्य भले ही परिमाण की दृष्टि से न्यून हो, किंतु अपनी गरिमा एवं उदात्तता के कारण वह हिंदी काव्य में सर्वश्रेष्ठ है। भक्तिरस से सराबोर इन कवियों की वाणी ने जनता को आशा, उत्साह एवं स्फूर्ति का संदेश दिया। यही कारण है कि गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरितमानस आज राजा से लेकर रंक तक, विद्वान से लेकर मूर्ख तक सबके घरों में विराज रहा है। इन कवियों का प्रदेय हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है और इनकी उच्चकोटि की रचनाओं के कारण ही भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना गया है।

12.3 शब्दकोश (Keywords)

नोट

1. प्रतिनिधि—प्रतिनिधित्व करने वाला, प्रमुख, अग्रणी
2. अविस्मरणीय—न भूलने वाला
3. संस्थापक—बनाने वाला, बुनियाद रखने वाला
4. शिथिलता—ठहराव, रुकाव
5. सामाजिक विकृतियाँ—सामाजिक बुराईयाँ

12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कृष्ण काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में समझाइए।
2. कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन-से हैं? उनकी रचनाओं का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
3. राम काव्य का विकास तथा राम काव्य परंपरा के भक्त कवियों के विषय में उल्लेख करें।
4. राम काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालें।
5. अष्टछाप के कुछ प्रमुख कवियों का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

- | | | | |
|-------------------|-------------------|--------------------|-----------------------|
| 1. शुद्धाद्वैतवाद | 2. प्रेम सिद्धांत | 3. गौड़ीय संप्रदाय | 4. युगीन परिस्थितियों |
| 5. रीति तत्व | 6. कृष्ण भक्ति | 7. (ग) | 8. (घ) |
| 9. (घ) | 10. (ग) | 11. सत्य | 12. असत्य |
| 13. सत्य | 14. असत्य | | |

12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास—शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—वाष्णीय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।

नोट

इकाई-13 : भक्तिकालीन हिंदी : भक्तिकाल स्वर्ण युग के रूप में

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

13.1 भक्तिकाल : स्वर्ण युग

13.1.1 भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएँ

13.1.2 निष्कर्ष

13.2 सारांश (Summary)

13.3 शब्दकोश (Keywords)

13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- भक्तिकाल की विशेषताएँ जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल सर्वश्रेष्ठ काल माना गया है, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है कि इस काल में भक्तिपरक रचनाओं की प्रधानता रही। इस काल की विभिन्न विशेषताओं का अवलोकन करते हुए विद्वानों ने इसे 'स्वर्णकाल' की संज्ञा दी।

13.1 भक्तिकाल : स्वर्ण युग

13.1.1 भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएँ

भक्तिकाल की कतिपय प्रमुख विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है, जिनके आधार पर भक्तिकाल को हिंदी-साहित्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है—

- राज्याश्रय का त्याग—**वीरगाथा काल में सभी कवि राज्याश्रित थे, परंतु भक्तिकाल कवियों ने राज्याश्रय को स्वीकार नहीं किया। सभी कवियों ने स्वतंत्र रहकर काव्य का सृजन किया। इन कवियों ने किसी राजा की स्तुति या प्रशंसा तक नहीं की। केवल जायसी ने तत्कालीन बादशाह की स्तुति में कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं।
- स्वान्तः सुखाय-परजनहिताय रचना—**भक्तिकाल के कवियों ने जो भी रचनाएँ कीं, वे स्वांतःसुखाय (अपने अंतःकरण के सुख के लिए) थीं। यद्यपि ये रचनाएँ उन्होंने अपने सुख के लिए लिखी थीं, परंतु

नोट

ये दूसरों के लिए भी कल्याणकारी सिद्ध हुई। उनके ग्रंथों में दिए गए धर्म उपदेश, नीति के सिद्धांत, भगवान के विविध क्रियाकलाप सभी को सद्मार्ग की ओर प्रेरित करने वाले सिद्ध हुए। इसलिए ये रचनाएँ स्वांतःसुखाय होते हुए भी परजनहिताय थीं।

- (iii) **भक्ति का प्राधान्य**—इस काल में भक्ति का प्राधान्य रहा। सभी कवियों ने परमात्मा का भक्ति संदेश दिया। इन कवियों ने भक्ति के विविध सोपानों और सिद्धांतों का अनेक प्रकार से वर्णन किया है। दास्य और सखा भाव की भक्ति के साथ-साथ नवधा भक्ति (श्रवण, कीर्तन, नाम, जप आदि) का संकेत भी इसमें मिलता है। प्रेम, ज्ञान और भक्ति का सुंदर समन्वय इस युग की देन है। **तुलसी** कहते हैं—

ज्ञानहिं भगतहिं नहिं कछु भेदा।

- (iv) **समन्वय की भावना**—इस युग की सबसे बड़ी विशेषता समन्वय की भावना है। इस काल के कवियों ने सगुण-निर्गुण, कर्म-भक्ति, शैव-वैष्णव, राजा-प्रजा, निर्धन-धनी, विभिन्न संप्रदायों-मतों और विभिन्न काव्य-शैलियों में सुंदर समन्वय स्थापित किया है। **तुलसी** ने स्पष्ट कहा है।

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।

उभय हरहिं भवसंभव खेदा॥

- (v) **भारतीय संस्कृति की रक्षा**—भक्तिकालीन कवियों ने भारतीय धर्म और संस्कृति की रक्षा की। मुसलमानों के अत्याचारों से जो भारतीय संस्कृति लुप्तप्राय हो गई थी, उसको इन कवियों ने जीवित रखा। भारतीय संस्कृति का उन्नत रूप उन्होंने जनता के समक्ष प्रस्तुत किया, जिससे वह श्रेष्ठ आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण कर सके।

भक्तिकाल की विशेषताएँ—

- (i) राज्याश्रय का त्याग
- (ii) स्वांतःसुखाय-परजन-हिताय रचना।
- (iii) भक्ति का प्राधान्य।
- (iv) समन्वय की भावना।
- (v) भारतीय संस्कृति की रक्षा।
- (vi) शृंगार तथा शांत रस की प्रधानता।
- (vii) मुक्तक तथा प्रबंध काव्य।
- (viii) गुरु की महत्ता।
- (ix) सामाजिक विषमता का खंडन।
- (x) भाषा।
- (xi) छंद।
- (xii) अलंकार।
- (xiii) संगीतात्मकता।
- (xiv) अमर साहित्य।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. भक्तिकाल के कवियों ने को स्वीकार नहीं किया।
2. ने तत्कालीन बादशाह की स्तुति में कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं।
3. प्रेम, ज्ञान और का सुंदर समन्वय इस युग की देन है।

- (vi) **शृंगार तथा शांत रस की प्रधानता**—भक्तिकालीन साहित्य में मुख्यतः शृंगार व शांत रस का प्रयोग हुआ है। आत्मा-परमात्मा के विरह-मिलन, सौंदर्य-चित्रण में शृंगार रस है तो भक्ति के उपदेशों, संदेशों एवं सिद्धांतों में शांत रस। वैसे तुलसी ने अपने काव्य में सभी रसों का प्रयोग किया है।
- (vii) **मुक्तक तथा प्रबंधकाव्य**—इस काल में प्रबंध व मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखे गए। जायसी का 'पद्मावत' व तुलसी का 'श्रीरामचरितमानस' श्रेष्ठ प्रबंधकाव्य हैं। सूर और कबीर ने मुक्तक काव्य की रचना की। तुलसी ने भी अनेक मुक्तक काव्य लिखे।
- (viii) **गुरु की महत्ता**—भक्तिकाल में गुरु की महत्ता सर्वोपरि मानी गई है। गुरु को इन्होंने मार्गदर्शक मानते हुए परमात्मा से भी बढ़कर माना। यह सत्य है कि जीवन के विभिन्न संघर्षों से उद्धार पाने का मार्ग गुरु ने ही बताया है और गुरु ही साधक को परमात्मा के द्वार तक पहुँचाता है। इसीलिए **कबीर** कहते हैं—

सतगुरु की महिमा अनंत अनंत किया उपगार।

लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार॥

बहुविकल्पीय प्रश्न-

4. साहित्य में मुख्यतः शृंगार व शांत रस का प्रयोग हुआ है।
 (क) रीतिकालीन (ख) काव्यकालीन
 (ग) भक्तिकालीन (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
5. किसने अनेक मुक्तक काव्य लिखे?
 (क) कालीदास (ख) तुलसी
 (ग) जायसी (घ) रामधारीसिंह दिनकर
6. भक्तिकाल में किसकी महत्ता सर्वोपरि मानी गई है?
 (क) कबीर (ख) तुलसी
 (ग) जायसी (घ) गुरु

(ix) सामाजिक विषमता का खंडन—भक्तिकालीन कवियों ने समाज में फैली विभिन्न कुरीतियों, आडंबरों, अंधविश्वासों और ऊँच-नीच के भेदभावों का खंडन किया। इन्होंने सबको एक ही परमात्मा का अंश माना और कहा कि जो भी परमात्मा का ध्यान-जप करता है। वही श्रेष्ठ है। इन कवियों ने मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा की और समाज के कुत्सित रूप को बदलने की पूर्णरूपेण चेष्टा की।

(x) भाषा—भक्तिकाल में ब्रज व अवधी भाषा का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ। संतों ने मिश्रित सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया तो जायसी ने अवधी का। तुलसी ने अवधी व ब्रज दोनों भाषाओं में काव्य का सृजन किया। सूर आदि ने ब्रजभाषा को स्वीकारा। इस प्रकार ब्रज और अवधी ही मुख्य भाषाएँ रहीं।

(xi) छंद—इस काल में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, पद, सोरठा, बरवै आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग किया गया।

(xii) अलंकार—भक्तिकाल के कवियों ने अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, अर्थांतरन्यास आदि का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है।

(xiii) संगीतात्मकता—भक्तिकाल का संपूर्ण साहित्य संगीतात्मकता से परिपूर्ण है। दोहा चौपाई आदि तो गेय हैं ही, पदों में सबसे अधिक यही गुण विद्यमान है। अर्थात् सभी पद किसी-न-किसी राग-रागिनी पर आधारित हैं।

(xiv) अमर साहित्य—भक्तिकाल का साहित्य अमर साहित्य है। अमर से अभिप्राय यह है कि इस साहित्य का महत्त्व आज भी है। इस समय की परिस्थितियों के लिए जो यह उपयोगी और कल्याणकारी था ही, आज भी यह हमें प्रभुभक्ति की पावन गंगा में अवगाहन कराता रहता है। तुलसी का 'श्रीरामचरितमानस' आज भी प्रातःस्मरणीय ग्रंथ है। कबीर के उपदेश आज भी हमें ज्ञान प्रदान करते हैं। जायसी और सूर का काव्य आज भी पाठकों के हृदय में मधुरता का समावेश कर देता है। निश्चय ही यह अमर साहित्य है।

13.1.2 निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकालीन काव्य सर्वश्रेष्ठ काव्य है। भाव और शिल्प की दृष्टि से यह काव्य श्रेष्ठतम है। परमात्मा की भक्ति का पावन संदेश देने वाला यह काव्य हिंदी-साहित्य की अमूल्य निधि है। इस काल के कवियों ने जिस साहित्य का सृजन किया वह अपनी विशेषताओं के कारण आज भी अमर है। इस काल की विभिन्न विशेषताएँ ही इसे स्वर्णयुग की संज्ञा प्रदान कराती हैं। डॉ. श्यामसुंदर दास का कथन अक्षरशः सत्य है—“जिस युग में कबीर, जायसी, तुलसी, सूर जैसे रससिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्यवाणी उनके अंतःकरणों से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी, उसे हिंदी साहित्य के इतिहास में सामान्यतः भक्तियुग कहते हैं। निश्चय ही यह हिंदी-साहित्य का स्वर्णयुग था।”

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. भक्तिकाल में संतों ने मिश्रित साधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया तो जायसी ने अवधी का।
8. भक्तिकाल का साहित्य अमर साहित्य नहीं है।
9. भक्तिकाल की विभिन्न विशेषताएँ ही इसे स्वर्णयुग की संज्ञा प्रदान करती हैं।

13.2 सारांश (Summary)

- भक्तिकालीन काव्य सर्वश्रेष्ठ काव्य है। भाव और शिल्प की दृष्टि से यह काव्य श्रेष्ठतम है। परमात्मा की भक्ति का पावन संदेश देने वाला यह काव्य हिंदी-साहित्य की अमूल्य निधि है। इस काल के कवियों ने जिस साहित्य का सृजन किया वह अपनी विशेषताओं के कारण आज भी अमर है। इस काल की विभिन्न विशेषताएँ ही इसे स्वर्णयुग की संज्ञा प्रदान कराती हैं।

13.3 शब्दकोश (Keywords)

1. काल—युग
2. स्वर्णयुग—सुनहरा युग, उत्तम काल

13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भक्तिकाल की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं? संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
2. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—
(अ) स्वान्तः सुखाय-परजनहिताय रचना। (ब) सामाजिक विषमता का खंडन

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

- | | | | |
|---------------|----------|----------|----------|
| 1. राज्याश्रय | 2. जायसी | 3. भक्ति | 4. (ग) |
| 5. (ग) | 6. (घ) | 7. सत्य | 8. असत्य |
| 9. सत्य | | | |

13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

- पुस्तकें
1. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
 2. हिंदी साहित्य का इतिहास—नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
 3. हिंदी साहित्य का इतिहास—कपूर श्यामचंद्र, प्रभात प्रकाशन।
 4. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास—त्रिपाठी विश्वनाथ, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन।

नोट

इकाई-14 : भक्तिकालीन अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

14.1 प्रमुख काव्य-प्रवृत्तियाँ

14.1.1 वीरकाव्य

14.1.2 प्रबंधात्मक चरितकाव्य

14.1.3 नीतिकाव्य

14.1.4 अकबरी दरबार का काव्य

14.1.5 रीतिकाव्य

14.2 सारांश (Summary)

14.3 शब्दकोश (Keywords)

14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- भक्तिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियों को जानने में।
- वीरकाव्य एवं प्रबंधात्मक चरितकाव्य को समझने में।
- अकबरी दरबार काव्य तथा रीतिकाव्य को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ साहित्य इतिहास के अन्य कालों से हैं। इन प्रवृत्तियों का अपना ही एक विशेष महत्त्व है। भक्तिकाल में निर्गुण-सगुण की प्रमुख प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कुछ गौण काव्य-प्रवृत्तियाँ भी लक्षित होती हैं, जिनका उल्लेख साहित्य के इतिहास में आवश्यक है। ये हैं—वीरकाव्य, प्रबंधात्मक, चरितकाव्य, नीतिकाव्य, अकबरी दरबार का काव्य और रीतिकाव्य।

14.1 प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ

भक्तिकाल में निर्गुण-सगुण की प्रमुख प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कुछ गौण काव्य-प्रवृत्तियाँ भी लक्षित होती हैं, जिनका उल्लेख साहित्य के इतिहास में आवश्यक है। ये हैं—वीरकाव्य, प्रबंधात्मक, चरितकाव्य, नीतिकाव्य, अकबरी दरबार का काव्य और रीतिकाव्य।

14.1.1 वीरकाव्य

नोट

धार्मिक काव्य की प्रमुखता के कारण भक्तिकाल में वीरकाव्य-धारा अपेक्षाकृत कृश हो गई, फिर भी उसका नैरंतर्य चलता रहा। वैसे तो 'रामचरितमानस', 'रामचंद्रिका' प्रभृति रचनाओं में भी वीर रस का प्रसंगवश समावेश हुआ है, किंतु आदिकाल की भाँति इस युग में वीर काव्यों की स्वतंत्र रचना भी हुई—यहाँ उन्हीं का अध्ययन अपेक्षित है। ऐसे काव्य प्रायः राजाश्रय में लिखे गए। इनमें प्रमुखतया आश्रयदाताओं की यशोगाथा, युद्ध-सज्जा, अतिशयोक्तिपूर्ण विरुदावली, दान एवं शौर्य संबंधी स्तुति, शत्रु के उपहास, युद्धों की भयानकता आदि को स्थान प्राप्त हुआ है। इस काल में वीरकाव्य की रचना करने वाले प्रमुख कवि निम्नलिखित हैं—श्रीधर, नल्हसिंह, राउ जैतसी रासोकार, दुरसा जी आढा, दयाराम (दयाल), कुंभकर्ण, न्यामत खाँ जान।

कवि श्रीधर ने ईडर के राजा रणमल्ल राठौर के आश्रय में रहकर 1400 ई. के लगभग 'रणमल्ल' छंद की रचना की थी। सांप्रति और इस काव्य के 70 छंद उपलब्ध हैं, जो डॉ. दशरथ शर्मा द्वारा संपादित 'रास और रासान्वयी काव्य' में संकलित हैं। रणमल्ल ने 1390 ई. में पाटण के सूबेदार जफ़र खाँ को युद्ध में पराजित किया था। 'रणमल्ल-छंद' की भाषा-शैली ओजपूर्ण है और इसमें वीर रस का सुंदर परिपाक मिलता है। नल्हसिंह द्वारा रचित **विजयपाल रासो** प्रसिद्ध तो है, किंतु इसका रचना काल संदिग्ध है। मिश्रबंधुओं के अनुसार इसकी रचना 1298 ई. में हुई थी, किंतु परवर्ती विद्वान् इसका रचना-काल 1543 ई. मानते हैं। इस काव्य के केवल 42 छंद ही उपलब्ध हैं। इसमें विजयगढ़ (करौली राज्य) के राजा विजयपाल और पंग राजा के युद्ध का वर्णन है। इसकी भाषा पर उत्तरकालीन भाषा-प्रभाव पड़ते रहे हैं, अतः जब तक इनकी पूर्ण और प्रामाणिक प्रति न मिल जाए तब तक इसके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत संदर्भ में तीसरी उल्लेखनीय कृति '**राउ जैतसी रासो**' है, जिसके रचयिता और रचना-काल के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। इसमें बीकानेर-नरेश राव जैतसी तथा सम्राट हुमायूँ के भाई कामरान के युद्ध का वर्णन है, जिसमें राव जैतसी की विजय हुई थी। यह घटना 1543 ई. के लगभग की है, अतः इस ग्रंथ का रचना काल भी इसी के आसपास माना जाता है। डिंगल भाषा में रचित प्रस्तुत कृति में सानुप्रासिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है। इसमें दोहा, मोतियदाम और छप्पय नामक छंद प्रयुक्त हैं, और कुल छंद संख्या 90 है। इस धारा के चौथे उल्लेखनीय कवि हैं—**दुरसाजी आढा**। इनका जन्म मारवाड़ के धूँदला गाँव में एक निर्धन चारण-कुल में 1435 ई. में हुआ था। ये डिंगल भाषा के बड़े प्रतिभावान कवि थे। अकबर के अतिरिक्त बीकानेर, जयपुर तथा सिरोंही के राजवंशों की ओर से भी इनका सम्मान हुआ था। इनकी रचनाओं में 'विरुद्ध छिहत्तरी' सर्वप्रसिद्ध है। इसमें महाराणा प्रताप का यशोगान हुआ है। इसकी रचना दोहा छंद में हुई है और शैलीगत उद्बोधन की दृष्टि से यह रचना अप्रतिम है।

भक्तिकाल के एक अन्य वीरगाथाकार **दयाराम (अथवा दयाल कवि)** ने सीसोदिया वंश के राणा कर्णसिंह के आश्रय में रहकर 1618 ई. के लगभग 'राणा रासो' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इसमें सीसोदिया कुल के प्रमुख राजाओं—कुंभा, उदयसिंह, प्रतापसिंह और अमरसिंह के युद्धों और वीरतापूर्ण क्रिया-कलापों का वर्णन है। डिंगल भाषा में रचित इस कृति में 875 छंद हैं और भाषा-प्रवाह के साथ छंद-वैविध्य की ओर भी कवि का ध्यान रहा है। **कुंभकर्ण** कृत 'रतन रासो' में रतलाम के महाराज रतनसिंह का प्रशस्ति-वर्णन है। इसी रचना अनुमानतः 1618-1624 ई. के मध्य हुई थी। इसकी रचना प्रवाहपूर्ण डिंगल भाषा में हुई है। इस धारा की अंतिम उल्लेखनीय कृति 'क्याम खाँ रासो' (1634) है, जिसके रचयिता **न्यामत खाँ जान** फतेहपुर (शेखावटी) के शासक अलिफ खाँ के पुत्र थे। इस ग्रंथ में क्याम खाँ चौहान तथा उनके वंशजों के युद्धादि वर्णन है। क्याम खाँ के वंश में अलिफ खाँ अधिक प्रसिद्ध हुए थे। इन्हीं का प्रमुख वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है। इस वंश के पूर्वजों ने धर्म-परिवर्तन करने पर भी अपनी 'चौहान' पदवी नहीं बदली। इस प्रकार इस वंश के राजाओं में क्षत्रियों की संस्कृति भी अक्षुण्ण बनी रही। यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वर्णन-शैली की दृष्टि से यह ग्रंथ इतिवृत्तात्मक है और ब्रजभाषा का सरल स्वरूप इसकी अन्य उल्लेखनीय विशेषता है।



टास्क वीरकाव्य से क्या तात्पर्य है? उल्लेख कीजिए।

भक्तिकाल में सधारु अग्रवाल, शालिभट्ट सूरि, गौतमरासकार, जाखू मणियार, देवप्रभ और पद्मनाभ ने कुछ ऐसे चरितमूलक प्रबंधकाव्यों की रचना की थी, जो या तो आदिकाल के जैन-काव्य की परंपरा में विचरित हैं या पौराणिक संदर्भविशेष पर आधारित हैं अथवा जैन-काव्य-प्रवृत्तियों एवं रासो-काव्य-शैली की मध्यवर्ती कड़ी के रूप में ध्यान आकृष्ट करते हैं। प्रथम वर्ग की रचनाओं में **सधारु अग्रवाल** का 'प्रद्युम्नचरित' (1354) ब्रजभाषा के आद्यवधि प्राप्त ग्रंथों में सबसे प्राचीन माना गया है। इसमें चौबीस तीर्थकरों की वंदना के पश्चात् प्रद्युम्न की कथा का वर्णन किया गया है। नारद का सत्यभामा पर क्रोध, कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह, प्रद्युम्न का दैत्य द्वारा अपहरण, शिला के नीचे कालसंवर को उसकी प्राप्ति प्रद्युम्न के लिए रुक्मिणी का विलाप, जिनेन्द्र पद्मनाभ के पास नारद का गमन, प्रद्युम्न द्वारा कालसंवर के शत्रुओं का विनाश, द्वारका-आगमन, विवाह आदि घटनाएँ इस काव्य की विषय-वस्तु का निर्माण करती हैं। अंत में प्रद्युम्न जिनेन्द्र से दीक्षा लेता है और कठिन तपस्या करके मोक्ष पाता है। इस प्रकार यह काव्य जैन-कथा-ग्रंथों की श्रेणी में आता है। काव्य-तत्त्व की दृष्टि से इसमें विभिन्न रसों के सरस चित्र मिलते हैं। प्रद्युम्न-वियोग का एक चित्र देखिए—

नित-नित सीजइ विलखी खरी, काहे दुखी विधाता करी।
इकु धाजइ अरु रोवइ वयण, आँसू बहत न थाके नयण।
की मइ पुरिष बिछोही नारि, की दव धाली वणह मझारि।
की मइ लोग तेल धृत हरउं, पूत संताप कवण गुण परउं।

शालिभट्ट सूरि कृत 'पंचपांडवचरितरास' पांडवों की पौराणिक कथा पर आधारित जैन-काव्य है। इसका प्रणयन ईसा की चौदहवीं शताब्दी के अंत में किया गया था। पंद्रह सगों में विभाजित इस काव्य में पांडवों की कथा को अहिंसा पर आधारित रखा गया है। युद्ध और अहिंसा में से अहिंसा का चयन ही कथा का मुख्य लक्ष्य है। इस काव्य की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी हिंदी है। चौदहवीं शताब्दी के अंत में किसी **अज्ञात जैन कवि** ने 'गौतमरास' की रचना की थी। इसके रचयिता का नाम कुछ विद्वानों में भूल से उदयवंत या विजयभद्र समझ लिया, किंतु श्री अगरचंद नाहटा इस मत से सहमत नहीं हैं। जैन तीर्थंकर महावीर के प्रथम गणधर गौतम इस काव्य के चरितनायक हैं। घटना और भाव के समन्वय से युक्त यह एक सरस खंडकाव्य है, जिसकी भाषा अपभ्रंश-प्रभावित राजस्थानी हिंदी है।

जैन-काव्य-परंपरा से भिन्न रचनाओं में जाखू मणियार कृत 'हरिचंद पुराण' (1396) ब्रजभाषा की महत्वपूर्ण काव्य-कृति है। इसमें राजा हरिचंद्र की पौराणिक कथा का चित्रण है। घटनाओं का नियोजन प्रबंधकाव्य की शैली में किया गया है तथा समस्त वर्णनों में भावों की मार्मिकता मिलती है। इसकी भाषा पर अपभ्रंश के प्रभाव की एक हल्की झलक शेष है। कथ्य, अभिव्यंजना तथा भाव-गांभीर्य की दृष्टि से यह काव्य भक्तिकाल में रचित ब्रजभाषा-काव्य का आरंभिक निदर्शन कराता है।

चौदहवीं शताब्दी के अंत में देवप्रभ द्वारा रचित 'कुमारपाल रासो' भिन्न शैली की रचना है। वह कृति जैन-रास-काव्यों तथा वीर-प्रशस्तिपरक 'रासो' काव्यों की प्रवृत्तियों का समन्वय प्रस्तुत करती है। इसमें राजा कुमारपाल की वीरता, उदारता, अहिंसा-प्रेम तथा नैतिकता-प्रचार का वर्णन है। एक ओर तो यह काव्य जैन धर्म की प्रवृत्तियों का काव्य की सरस भाव-भूमि पर अप्रत्यक्ष रूप में प्रसार करता है और दूसरी ओर राजा के अव्यक्तित्व तथा लोकमंगलकारी प्रभाव को भी व्यापक बनाता है। समस्त रचना में धार्मिकता कहीं पर भी उभरकर काव्य की सरसता में बाधक नहीं बनी। कुमारपाल के राज्य का तपोवनानुकूल प्रभाव काव्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसकी भाषा सरल राजस्थानी हिंदी है। इसी प्रकार की एक रचना 'कान्हड दे प्रबंध' है, जिसे **पद्मनाभ** ने ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी के आरंभ में लिखा था। इसी रचना-पद्धति रासो-काव्यों की शैली से भिन्न है। इसमें महाराजा कान्हड दे का चरित वर्णित है। कवि ने आलंकारिक शैली में घटनाओं का सुनियोजित चित्रण किया है। सभी वर्णनों में काव्य-कला का पूर्ण विकास पाया जाता है। पद्य के साथ इसमें गद्य का प्रयोग भी मिलता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. की भाषा-शैली ओजपूर्ण है और इसमें वीर रस का सुंदर परिपाक मिलता है।
2. कुंभकर्ण कृति 'रतन रासो' में रतलाम के महाराज का प्रशस्ति वर्णन है।
3. जैन तीर्थंकर महावीर के प्रथम गणघर गौतम इस काव्य के हैं।

14.1.3 नीतिकाव्य

आदिकाल से ही भारतीय चिंतनधारा ऐहिकता की अपेक्षा पारमार्थिक तत्वों को महत्त्व देती रही है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, अहंकार आदि से बचने तथा उपकार, दान, दया और ईश्वर-चिंतन की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति प्राचीनतम ग्रंथ से ही प्राप्त होने लगती है। समस्त वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि में नीति के तथ्य और उपदेश प्रज्ञपत होते हैं। संस्कृत-काव्य और नाटकों में प्रसंगानुसार यत्र-तत्र नीति-पदावली मिलती है। संस्कृत में अनेक नीति-ग्रंथ भी मिलते हैं, जैसे-चाणक्य-नीति, विदुर-नीति तथा भर्तृहरि-नीतिशतक। अनेक सुभाषितों के जो संग्रह मिलते हैं, उनमें नीति-वचनावली का आधिक्य मिलता है। पालि-साहित्य में नीतिकाव्य का बाहुल्य है, क्योंकि उसमें उपदेश अधिक हैं। प्राकृत और अपभ्रंश में बौद्ध सिद्धों तथा जैन संतों की रचनाओं में परलोक, मोक्ष, आत्म-साक्षात्कार आदि पर बल देने के साथ ही त्याग, संयम, दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि को विशेष महत्त्व दिया गया है। नाथपंथियों और वज्रयानी सिद्धों की रचनाओं में भी उपदेशों की ही प्राथमिकता है। तात्पर्य यह कि नीतिकाव्य की एक पुष्ट परंपरा पहले से विद्यमान थी, अतः भक्तिकाल में इसका विकसित होना स्वाभाविक था।

भक्तिकाल में नीतिकाव्य के तीन रूप प्राप्त होते हैं—(अ) कबीर, नानक, दादू आदि संतों की रचनाओं में नीति संबंधी पद धर्मोपदेशों के अंग-रूप में कहे गए थे, (आ) 'रामचरितमानस', 'पद्मावत' प्रभृति प्रबंधकाव्यों में यत्र-तत्र नीति संबंधी उपदेश कथा-क्रम में आनुषंगिक रूप में मिलते हैं, (इ) कुछ कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने नीतिकाव्य की ही रचना की है। यहाँ इनमें से तृतीय वर्ग के कवियों का विवेचन अभीष्ट है। इस वर्ग के प्रमुख कवि जैन मतावलंबी हैं; यद्यपि छीहल, रत्नावली, जमाल प्रभृति अनेक अन्य कवियों ने भी नीतिकाव्य की रचना की है। इस धारा की प्रथम उल्लेखनीय रचना जैन कवि **पद्मनाभ** की 'डूंगर-बावनी' (1486) है, जिसका नामकरण कवि ने अपने आश्रयदाता डूंगर सेठ के नाम पर किया है। इसमें 53 छप्पय हैं जिनमें दया, कर्म-फल, नम्रता आदि में ही जीवन-साफल्य माना गया है तथा सप्त व्यसन (जुआ, मांस-भक्षण, सुरापान, वेश्यागमन, आखेट, चोरी, परनारी-रमण) से बचने का परामर्श दिया गया है। जैन कवि **ठाकुर सी** (रचनाकाल 1523-1526) की रचनाओं-कृपण-चरित्र और पंचेन्द्रीवेलि—की हस्तलिखित प्रतियाँ बंबई के दिगंबर मंदिर और जयपुर के वधीचंद मंदिर में सुरक्षित हैं। 'कृष्ण-चरित्र' में एक कृपण सेठ और उसकी उदार पत्नी की कथा है तथा 'पंचेन्द्रीवेलि' में इंद्रिय-निग्रह संबंधी छप्पय हैं जिनमें गज, मीन, भ्रमर, पतंग, मृग आदि के माध्यम से स्पर्श, रस, रूप, गंध आदि से बचने के सुझाव हैं। कवित्व की दृष्टि से ये दोनों कृतियाँ साधारण स्तर की हैं।

अग्रवाल कुल में समुत्पन्न **छीहल** कवि की 'छीहल बावनी' (1527) भक्तिकालीन नीतिकाव्यों में विशेष प्रसिद्ध है। इसमें 53 छप्पय हैं, जिनमें अनेक व्यावहारिक विषयों पर सुंदर कथन मिलते हैं। वैसे इन्होंने 'पंच सहेली की बात', 'पंथी गीत' आदि कुछ अन्य कृतियों की भी रचना की है। इनके समकालीनों में गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी **रत्नावली** ने भी उद्बोधनात्मक नीतिकाव्य की रचना की है। इन्हीं के प्रभाव से गोस्वामी तुलसीदास विरक्त होकर चले गए थे। 'रत्नावली-दोहा-संग्रह' में 111 दोहे हैं, जिनमें विविध विषयों का प्रतिपादन हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

घी को घट है कामिनी, पुरुष तपत अंगार।
रत्नावलि घी अगिन को, उचित न संग विचार॥



क्या आप जानते हैं

भक्तिकाल में नीतिकाव्य के तीन रूप प्राप्त होते हैं—कबीर, नानक, दादू आदि संतों की रचनाओं में नीति संबंधी पद धर्मोपदेश के अंग-रूप में कहे गए थे।

सोलहवीं शती के मध्य में विद्यमान कवि **देवीदास** कृत 'राजनीति के कवित' की हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित है। ये शेखावटी के राव लूणकरण के मंत्री थे और जाति के वैश्य थे इनके कवितों की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से भी इनके कवित सुंदर बन पड़े हैं—उनमें राजनीति के अतिरिक्त अन्य सामान्य विषयों का भी प्रभावशाली निरूपण मिलता है। इनके समकालिक कवि **जमाल** की गणना भी राजस्थान के लोकप्रिय नीतिकारों में की जाती है। 1570 ई. के लगभग रचित 'जमाल दोहावली' के कुछ दोहे पठनीय हैं—

रंग ज चोल मजीठ का, संत बचन प्रतिपाल।

पाहण रेख रु करम गत, ए किमि मिटे जमाल॥

पूनज चांद कुसुम रंग, नदी-तीर द्रुम-डाल।

रेत भीत भुस लीपणो, ए थिर नहीं जमाल॥

बीकानेर नरेश महाराज राजसिंह के राजकवि **उदैराज** की 'उदैराज को दूहा' (1603) और 'गुणबावनी' शीर्षक रचनाएँ बीकानेर के अभय जैन ग्रंथालय में सुरक्षित हैं। इनकी भाषा राजस्थानी है तथा इन्होंने नीति संबंधी विविध विषयों का अनूठा कथन किया है। इनके समसामयिक कवि **बान** का 'कलिचरित्र' अनूप पुस्तकालय, बीकानेर में हस्तलिखित रूप में उपलब्ध है। ये मथुरा-निवासी रमई पाठक के पुत्र थे और महाराज महासिंह के यहाँ प्रतिष्ठित थे। इन्होंने अपने ग्रंथ में जहाँगीर की प्रशंसा भी की है। 'कलिचरित्र' में 45 पद्य हैं, जिनमें प्रवाहपूर्ण ब्रजभाषा तथा हास्यरसपूर्ण व्यंग्यात्मक शैली में कलिकाल की विडंबनाओं का वर्णन किया गया है। इस अवधि के अन्य कवियों में दादूदयाल के शिष्य **वाजिद** भी प्रसिद्ध नीतिकार हुए हैं। एक बार ये शिकार के लिए गए थे। वहीं पर हिरणी का शिकार करते हुए इनमें विराग-भाव जगा और ये साधु हो गए। इनकी पूरी 'वाणी' प्राप्त नहीं होती, केवल 14 ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं—ग्रंथ गुण उत्पत्तिनामा, ग्रंथ प्रेमनामा, ग्रंथ गरजनामा, साखी वाजिद। इन्होंने दोहा, चौपाई और अरिल्ल छंदों का प्रयोग किया है तथा इनकी रचनाओं में दया, दान, साधु-संगति, इन्द्रिय-निग्रह, मनोयोग आदि विषयों की प्रधानता मिलती है।

भक्तिकालीन नीतिकवियों में जैन कवि **बनारसीदास** का मुख्य स्थान है। इनका जन्म 1586 ई. में जौनपुर में हुआ था ये सम्राट अकबर के प्रशंसक थे, जहाँगीर के दरबार में भी गए थे और शाहजहाँ के दरबार में तो इन्हें विशेष मान प्राप्त था। 'नवरस पद्यावलि', 'समयसार नाटक', 'बनारसीविलास', 'अर्द्ध कथानक', 'भाषा सूक्तिमुक्तावली' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनमें कंचन और कामिनी के त्याग तथा सत्य, क्षमा, शील, अपरिग्रह, नम्रता, निर्लोभ, अहिंसा आदि गुणों के निर्वाह पर बल दिया गया है। नीतिकाव्य के साथ ही इन्होंने अध्यात्मपरक काव्य की भी रचना की है। ये समस्त प्राणियों में एक ही परमेश्वर का अंश मानते थे, अतः हिंदू-मुसलमान, हिंदू-जैन, ब्राह्मण-शूद्र आदि में भेद इन्हें स्वीकार नहीं था। इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

माया छाया एक है, घटै बढ़ै छिन माँहि

इनकी संगत जे लगें, तिनहिं कहीं सुख नाहि॥

एक रूप हिंदू तुरुक, दूजी दशा न कोय।

मन की द्विविधा मान कर, भए एक सौं दोग॥

जैन नीतिकारों में राजसमुद्र और कुशलबीर भी उल्लेखनीय हैं। **राजसमुद्र** का जन्म 1590 ई. में बीकानेर में हुआ था। इनका बचपन का नाम खेतसी था, 1599 ई. में जिनहिंस सूरि से दीक्षा लेने पर इनका नाम राजसमुद्र हो गया। इनकी रचनाओं का मुख्य विषय नीति है और भाषा राजस्थानी है। 'शालिभद्र चौपाई' 'गजसुकमाल चौपाई',

नोट

‘प्रश्नोत्तर रत्नमाला’, ‘कर्मबत्तीसी’, ‘शीलबत्तीसी’ और ‘बालावबोध’ इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। कुशलबीर सोजत नगर के निवासी थे। ये कल्याणलाभा के शिष्य थे और इनका रचना-काल 1637 से 1672 ई. है। इनके अनेक नीति-ग्रंथ हैं—भोज चौपाई, सीलवती रास, कर्म चौपाई, वर्णन संपुट तथा उद्दिम-कर्म-संवाद। इनकी भाषा राजस्थानी है और शैली उपदेशात्मक है।

14.1.4 अकबरी दरबार का काव्य

सम्राट अकबर को हिंदी भाषा से अनुराग था। राजभाषा यद्यपि फारसी थी, तथापि नित्य के व्यवहार में हिंदी ही प्रयुक्त होती थी। वे न केवल हिंदी-कवियों का अपने दरबार में सम्मान करते थे, वरन् स्वयं भी हिंदी और फारसी में काव्य-रचना करते थे। अकबरी दरबार में जिन हिंदी-कवियों को विशेष सम्मान प्राप्त था, वे हैं—चतुर्भुजदास, आसकरण, पृथ्वीराज, मनोहर, टोडरमल, नरहरि, बीरबल ‘ब्रह्म’, गंग, तानसेन और रहीम। चतुर्भुजदास विद्वान और विद्यानुरागी थे तथा बीरबल के माध्यम से अकबरी दरबार में सम्मानित हुए थे। बाद में ये राधावल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित हुए और जीवनपर्यन्त वृंदावन में रहे। ‘द्वादश यश’ (1503) इनकी कृष्ण-भक्ति संबंधी प्रसिद्ध रचना है। राजा आसकरण नरवरगढ़ के राजा भीमसिंह के पुत्र थे। ‘आईने अकबरी’ में इनका उल्लेख हुआ है। कालांतर में ये गुसाईं विट्ठलनाथ जी के सेवक हो गए और सेवा-विधि सीखकर कृष्ण-लीला-गान में निरत रहने लगे। ‘दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता’ और ‘कीर्तन-संग्रह’ में इनके पद मिलते हैं। कवि पृथ्वीराज बीकानेर राज्य के संस्थापक राव बीका जी के वंशज थे। इनका जन्म 1549 ई. में हुआ था। ये दर्शन, ज्योतिष और संगीत के ज्ञाता तथा अच्छे कवि थे। ‘वेलि क्रिसन रुक्मिणी री पृथ्वीराज कथी’, ‘श्यामलता’, ‘दशरथ रावउत’, ‘वसुदेव रावउत’ और ‘गंगालहरी’ के अतिरिक्त इनके स्फुट गीत भी उपलब्ध हैं। ‘वेलि क्रिसन रुक्मिणी री’ भक्ति-शृंगार का अनुपम ग्रंथ है। इसकी भाषा सरस और अलंकृत डिंगल है। कवि पृथ्वीराज जी वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित थे। इनके हृदय में भगवान् कृष्ण और ब्रजभूमि के प्रति बड़ी आस्था थी। राजभक्ति, देशभक्ति और ईश्वरभक्ति तीनों इनमें विद्यमान थीं। ये कृष्णभक्त तो थे ही, अकबर के प्रति इनमें राजभक्ति थी और देशभक्ति के कारण ये महाराणा प्रतापसिंह के प्रति अपार श्रद्धा-भाव रखते थे। अकबर के दरबारी कवि होते हुए भी इन्होंने महाराणा प्रताप का यशोगान किया है। यथा—

अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजल।

मेवाड़ों तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी॥

बाही राण प्रतापसी, वगतर में बच्छीह।

जावण भीतर जाल में मुँह काढ़यो मच्छीह॥



नोट्स

अकबरी दरबार में कुछ विशेष कवियों को सम्मान प्राप्त था, वे थे—चतुर्भुजदास, आसकरण, पृथ्वीराज, मनोहर, टोडरमल, नरहरि, बीरबल, ब्रह्म, गंग, तानसेन और रहीम।

मनोहर कवि फारसी, संस्कृत और हिंदी में काव्य-रचना करते थे। मिश्रबंधुओं ने इसका रचना-काल 1563 ई. माना है। ये युवावस्था में अकबरी दरबार में थे और वृद्धावस्था में जहाँगीरी दरबार में। अकबर ने इन्हें ‘राय’ की उपाधि दी थी। इनके द्वारा रचित ‘शत प्रश्नोत्तरी’ ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है। इसमें नीति और शृंगार के दोहे थे। इनके काव्य-गुणों की प्रशंसा शिवसिंह सेंगर, मिश्रबुध तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने की है। फारसी के कवि होने के कारण इनकी भाषा और काव्य-कला में फारसी का पुट हुआ करता था। अकबरी दरबार में भूमिकर-विभाग के मंत्री राजा टोडरमल भी काव्यानुरागी थे। नीति संबंधी उपदेशों के अतिरिक्त इन्होंने कुछ छंदों में आत्माभिव्यक्ति भी की है। हुँडी, व्यापारी, आदृतिया, साहूकार, सर्राफा और बहीखाता—जैसे विषयों पर भी इन्होंने दोहे लिखे थे।

नोट

महापात्र **नरहरि** (1505-1607) अकबर के राजकवि थे। ये संस्कृति, फारसी और हिंदी के विद्वान थे। 'मिश्रबंधु-विनोद' में इनके तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—रुक्मिणी मंगल, छप्पय-नीति और कवित्त-संग्रह। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इन्होंने भक्ति, नीति और राजप्रशस्तिपरक रचनाएँ लिखी हैं। इन्होंने वैष्णव और शैव संप्रदायों के भेद-भाव से विरत रहकर दोनों के प्रति समान श्रद्धा रखी है। साथ ही इन्होंने कृष्णभक्ति संबंधी पद भी लिखे हैं। नीति संबंधी तथ्यों का प्रतिपादन भी इनकी उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। हुमायूँ, अकबर, रीवा-नरेश वीरभान, उनके पुत्र रामचंद्र, शेरशाह और जगन्नाथपुरी के राजा मुकुंददेव की प्रशस्ति में भी इन्होंने कवित्त-रचना की है। इन कविताओं में ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन तो है, किंतु अन्य गुणों की दृष्टि से ये साधारण हैं।

बीरबल 'ब्रह्म' (1528-1583) सम्राट अकबर के दरबार में विनोदी और कवि के रूप में समादृत थे। इनका मूल नाम महेशदास भट्ट और ये तिकवाँपुर, जिला कानपुर में उत्पन्न हुए थे। 'राजा बीरबल' उपाधि इन्हें अकबर से प्राप्त हुई थी। अकबरी दरबार में आने से पूर्व ये कालपी, कालिंजर और रीवा के राजाओं के यहाँ रह चुके थे। अकबर ने इनको नगरकोट (जिला कांगड़ा) की तहसील दी थी और न्यायाधीश भी बनाया था। कविताओं से अधिक इनके चुटकुले लोकप्रिय हैं, किंतु यह इनके द्वारा रचित नहीं है। इनके लगभग दो सौ स्फुट पद्य प्राप्त होते हैं जिनमें शृंगारप्रधान कृष्ण-लीलाओं, भक्ति और नीति का समावेश है। इनकी भाषा सरस और अनुप्रासयुक्त है।

अकबरी दरबार के कवियों में **गंग** (1538-1617) का विशेष सम्मान था। इनका पूरा नाम गंगाप्रसाद था। इनके छंदों में जिस कोटि का काव्य-चमत्कार, वाग्वैदग्ध्य और भाषा-सौष्ठव मिलता है, उसके फलस्वरूप इनके विषय में यह कथन प्रसिद्ध है—“तुलसी गंग दुऔ भये सुकविन के सरदार।” ये बीरबल के बालसखा थे। आगे चलकर ये मानसिंह, टोडरमल और अब्दुल रहीम खानखाना के संपर्क में आए। अकबर के दरबार में कविगण समस्यापूर्ति करते थे। गंग की रचनाएँ विशेष सम्मानित होती थीं। कहा जाता है कि रहीम ने इनके एक छप्पय पर छत्तीस लाख रुपये पारितोषिक में दिए थे। गंग स्वयं भी दानी थे। दैववश वृद्धावस्था में जहाँगीर के शासन-काल में इनकी आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। उन दिनों शासन नूरजहाँ के हाथ में था। गंग ने शहजादा खुर्रम (बावी शाहजहाँ) की प्रशंसा में छंद लिखा। यह जानकर नूरजहाँ इनकी जानी दुश्मन बन गई और अवसर पाकर उसने इन्हें हाथी से कुचलवा डाला। मरने से पूर्व गंग ने यह दोहा कहा—

कबहुँ न भडुआ रन चढ़ै, कबहुँ न बाजी बंब।

सरस सभाहि प्रनाम करि, विदा होत कवि गंगा।

गंग की तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—गंग पदावली, गंग पच्चीसी और गंग रत्नावली। ये कृतियाँ संपूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं हैं। अभी तक इनके प्रायः 400 छंद उपलब्ध हुए हैं, जो 'गंग-कवित्त' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। इनमें मुख्य रूप से शृंगार और भक्ति को तथा गौण रूप से नीति और राज-प्रशस्ति को स्थान प्राप्त हुआ है।

अकबरी दरबार के कवियों में संगीतज्ञ **तानसेन** (1531-1583) विशेष गणनीय हैं। इनका जन्म ग्वालियर-निवासी मकरंद पांडे के यहाँ हुआ था और इनका बचपन का नाम 'तनू' था। पहले ये रीवा-नरेश रामचंद्र के दरबार में थे। मुसलमान होने पर ये प्रसिद्ध सूफी गौस मुहम्मद के शिष्य हुए। किंवदंती के अनुसार इन्होंने किसी शहजादी के प्रेम के कारण धर्म-परिवर्तन किया था। मुसलमान होने के उपरांत भी ये गोसाईं विट्ठलनाथ, सूरदास, हरिदास और गोविंदस्वामी के प्रभाव में रहकर वैष्णव भक्त बने रहे। 'मिश्रबंधु-विनोद' के अनुसार इन्होंने 'संगीत सार', 'रागमाला', और 'गणेशस्तोत्र' की रचना की थी। इनके स्फुट पद भी प्राप्त हैं। आरंभ में इन्होंने रीवा-नरेश रामचंद्र, अकबर और मानसिंह की यशोगान किया था, पर इनका परवर्ती काव्य भक्त-हृदय की अनुभूतियों से संपन्न है। ईश्वर की व्यापकता; अल्लाह और मुहम्मद का गुणगान; सरस्वती, गणेश, महादेव और सूर्य की स्तुति तथा मनःप्रबोध इनके प्रमुख वर्ण्य विषय हैं। वल्लभ-संप्रदाय के संपर्क में आने पर ये पूर्ण कृष्णभक्त हो गए। इन्होंने कृष्ण की बाललीला, मुरलीलीला, राधा के रूप-सौंदर्य, गोपी-विरह आदि का मार्मिक वर्णन किया है। इनकी ब्रजभाषा में फारसी-शब्द भी प्रयुक्त हैं। भाषा अलंकारिक, सरस और संगीतमयी है। तानसेन ध्रुपद शैली के श्रेष्ठ गायक थे, फलस्वरूप इनके पदों में काव्य और संगीत की गंगा-यमुना का प्रवाह मिलता है।

अकबरी दरबार के कवियों में **रहीम** (1556-1638) का मूर्द्धन्य स्थान है। ये बैरम खाँ खानखाना के पुत्र थे और इनकी माँ हुमायूँ की पत्नी की छोटी बहन थीं। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण अकबर ने ही

नोट

इनका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा अपनी देखरेख में करवाई थी। बड़े होने पर पहले इन्हें पाटन की जागीर दी गई और फिर अजमेर की सूबेदारी और रणथंभौर का किला दिया गया। अकबर ने इन्हें नवरत्नों में स्थान दिया था। जहाँगीर के शासन-काल में भी इनका सम्मान बना रहा, किंतु अंतिम दिनों में शहजादा खुर्रम का समर्थन करने के कारण इन्हें नूरजहाँ का कोपभाजन बनना पड़ा। वह अपने दामाद शहजादा शहरयार को भावी शासक बनाने का स्वप्न देख रही थी। उसके आदेश से इन्हें कैद कर दिया गया। बाद में जहाँगीर ने इन्हें क्षमा कर दिया। फिर भी, इनके जीवन के अंतिम दिन कुशलता के साथ व्यतीत नहीं हुए।



टास्क अकबरी दरबार के मुख्य कवियों के विषय में संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

रहीम अरबी, फारसी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता और हिंदी के सुकवि थे। इन्होंने ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही काव्य-रचना आरंभ कर दी थी। इनकी रचनाओं में दोहावली, नगरशोभा, बरवै नायिकाभेद और मदनाष्टक प्रमुख हैं। कहा जाता है कि इन्होंने सतसई की रचना की थी, किंतु संप्रति इनके नीति संबंधी प्रायः तीन सौ दोहे ही मिलते हैं। एक अनुमान के अनुसार कदाचित् इन्होंने शृंगार रस के दोहे भी लिखे होंगे, जिनके योग से 'सतसई' बनती। जो भी हो, इनके नीति संबंधी दोहे सर्वप्रसिद्ध हैं और उनमें जीवन की विविध अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण हुआ है। यथा—

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
 बारे उजियारे लगे, बड़े अंधेरों होय॥
 रहिमान अंसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ
 जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥

'नगरशोभा' में जौहरिन, रंगरेजिन, तुरकिन, कैथिन, गूजरी आदि विविध जातियों की स्त्रियों का चित्रण मिलता है। अकबरी दरबार की शृंगारिक भावनाओं और 'मीना बाजार' की झलक इस ग्रंथ में सुलभ है। 'बरवै नायिकाभेद' में काव्यशास्त्र में प्राप्त अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन हुआ है। इसमें नायिका के लक्षण नहीं दिए गए, किंतु उदाहरण इतने सरस हैं कि पाठक भाव-विभोर हो जाता है। 'मदनाष्टक' में कृष्ण-लीला संबंधी आठ सुंदर पद हैं, जिनमें गोपियों की प्रेमविह्वलता, मुरली-लीला तथा गोपी-विरह का शृंगार-रसात्मक वर्णन है। इनका एक ज्योतिष-ग्रंथ 'खेटकौतुक जातकम्' भी उपलब्ध है। इसी रचना फारसी-मिश्रित संस्कृत भाषा में हुई है और इसमें मनुष्य-जीवन पर ग्रह-नक्षत्रों के प्रभाव का संक्षिप्त चित्रण है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

- भक्तिकाल में नीतिकाव्य के कितने रूप प्राप्त होते हैं?
 (क) पाँच (ख) आठ
 (ग) तीन (घ) दस
- अकबरी दरबार में भूमिकर-विभाग के मंत्री भी काव्यानुरागी थे।
 (क) चतुर्भुजदास (ख) पृथ्वीराज
 (ग) बीरबल (घ) राजा टोडरमल
- कौन अरबी, फारसी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता और हिंदी के सुकवि थे?
 (क) रहीम (ख) जहाँगीर
 (ग) शाहजहाँ (घ) बीरबल

भक्तिकाल में तथा इससे पूर्व भी, यद्यपि हिंदी-साहित्य गुण और परिमाण की दृष्टि से पर्याप्त प्रतिष्ठित हो चुका था तथा इसे विरासत के रूप में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की अक्षुण्ण परंपरा भी प्राप्त थी, तथापि इसमें काव्यांग-निरूपण की प्रवृत्ति का आविर्भाव जिस कारण से नहीं हो सका वह यही था कि तत्कालीन कवियों को इस दिशा में या तो सोचने का अवकाश नहीं मिला या फिर उन्होंने प्रयत्न ही नहीं किया। आदिकाल के चारण कवियों को यदि युद्धों से अशांत वातावरण में काव्यशास्त्र के लिए अपेक्षित एकांत-चिंतन का अवसर नहीं मिला, तो संत और सूफी कवि एतद्विषयक ज्ञान की तुलना में आध्यात्मिक ज्ञान को कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं श्रेष्ठकर मानकर आत्मचिंतन में ही जान-बूझकर उलझे रहे। इन लोगों के लिए कविता अपनी बात को कहने का साधनमात्र रही—कला की वह सिद्धि नहीं रही, जिसमें अनुभूति के समान अभिव्यक्ति के विभिन्न उपकरणों का सौंदर्य भी महत्त्व रखता है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने पुष्प या पुद्गल कवि द्वारा 713 ई. में रचित ‘अलंकारत्नाकर’ नामक अलंकार-विवेचन संबंधी जिस हिंदी-ग्रंथ का उल्लेख कर हिंदी भाषा के बहुत पहले आविर्भूत होने, आठवीं शताब्दी तक उसके स्वरूप और साहित्य के प्रौढ़ और प्रतिष्ठित हो जाने, उसमें रीति-निरूपण की परंपरा का आरंभ कई शताब्दी पूर्व होने आदि जिन संभावनाओं के लिए स्थान छोड़ा है, उनसे उसके अस्तित्व को अस्वीकार करना अधिक संगत प्रतीत होता है, कारण एक तो वह आज किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं, दूसरे इस समय के पर्याप्त बाद तक हिंदी इतने प्रौढ़ रूप को प्राप्त नहीं हो सकी थी कि उसमें इस प्रकार का प्रयत्न संभव हो पाता।

वस्तुतः हिंदी-रीति-निरूपण परंपरा का आरंभ कृपाराम की ‘हिततरंगिनी’ से ही माना जाना चाहिए, क्योंकि इसकी रचना के समय तक हिंदी-भाषा और उसके साहित्य में इस विषय के लिए अपेक्षित प्रौढ़ता ही नहीं आ गई थी, उसके उपयुक्त वातावरण भी उपस्थित हो गया था। इस समय तक वैष्णव धर्म के व्यापक प्रभाव और प्रसार के परिणामस्वरूप निर्गुणब्रह्मवादियों द्वारा निरूपित जटिल दार्शनिक सिद्धांतों तथा कठोर साधना की अपेक्षा भक्ति की सरल पद्धति के प्रति लोग अधिक आकृष्ट होने लगे थे और इसे समझने-समझाने का प्रयत्न बराबर हो रहा है। यही कारण है कि वैष्णव भक्त रूपगोस्वामी ने भक्ति के स्वरूप और माहात्म्य को स्थापित करने के लिए संस्कृत में ‘भक्तिरसामृतसिंधु’ जैसे मौलिक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की तथा माधुर्य भक्ति के अंगरूप शृंगार रस और नायक-नायिका-भेद समेत उसके विभिन्न पक्षों की व्याख्या के निमित्त ‘उज्ज्वलनीलमणि’ नामक एक और ग्रंथ की रचना की। बाद में जब लोकभाषा-ब्रजभाषा-के माध्यम से इस विषय को समझाए जाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी तो कृपाराम, सूर और नंददास-जैसे भक्तों ने प्रयत्न आरंभ कर दिया। हमारी धारणा है कि कृपाराम ने ‘हिततरंगिनी’ की रचना मुख्य रूप से भक्तों द्वारा प्रयुक्त स्वकीया-परकीया-भाव को स्पष्ट करने के उद्देश्य से ही की होगी, यही कारण है कि उन्होंने इसमें सामान्य का वर्णन बहुत ही चलते ढंग से किया है, इसके भेदों का यथास्थान वर्णन करते हुए भी मनोयोग प्रदर्शित नहीं किया।

काव्यशास्त्र के साथ इस प्रकार से संपर्क होने के परिणामस्वरूप ये लोग संभवतः इतर काव्यांगों से भी परिचित हुए और अब तक मात्र भक्ति का माध्यम समझी जानेवाली कविता का इन्हें साहित्यिक महत्त्व भी ज्ञात हुआ। फलतः कविता के स्वरूपविधायक विभिन्न पक्षों के प्रति सचेष्ट होकर रचना करने का प्रयत्न ही नहीं हुआ, उनके विषय में चर्चा भी होने लगी। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा ‘मानस’ के प्रथम सोपान में विभिन्न रूपकों तथा विनम्रता-प्रदर्शन के ब्याज से यह सहज ही प्रकट कर दिया गया है कि काव्यशास्त्र का उन्हें केवल ज्ञान ही नहीं था, उसके विभिन्न पक्षों के प्रति उनका निश्चित दृष्टिकोण भी था। सूरदास द्वारा ‘साहित्यलहरी’ में शृंगार रस की सामग्री के अतिरिक्त क्रमशः विभिन्न अलंकारों का निर्वाह भी इसी ओर इंगित करता है।

इस काल के अंतिम चरण में कविता का प्रवेश राजदरबारों में भी दृष्टिगत होता है, जहाँ इसे साहित्य से ऊपर उठकर कला के रूप में ग्रहण किया गया। अतएव अब कवियों का कर्म कविता करने की अपेक्षा आश्रयदाताओं और उनके सामंतों आदि के लिए अभिव्यक्ति के सौंदर्यवर्द्धक उपकरणों का ज्ञान उपलब्ध कराना अधिक आवश्यक हो गया; जिससे कि वे लोग दरबार में होने वाली काव्य-गोष्ठियों में पढ़ी जाने वाली कविताओं के गुण-दोषों की चर्चा कर अपने काव्यकला-ज्ञान का, अथवा कतिपय छंदों की रचना कर अपनी सहृदयता का परिचय दे सके।

नोट

इस प्रकार रीति-निरूपण की यह प्रवृत्ति भक्ति के प्रखर की तुलना में अत्यंत क्षीण रही—भक्ति की पूरक होकर ही आविर्भूत हुई और उसके सहारे से ही आगे बढ़ती रही, तथापि शनैः-शनैः राजदरबारों में प्रवेश करते ही यह भक्ति के अवलंबन को छोड़कर स्वतंत्र प्रवृत्ति का रूप धारण कर उत्तरोत्तर पुष्ट होती गई। रीतिकाल में इसी का पुष्ट रूप दृष्टिगत होता है। यहाँ हम भक्तिकाल के कतिपय कवियों के रीति-निरूपण-कर्म की चर्चा करते हैं, जिससे सहज ही इस प्रवृत्ति के विकास का आभास मिल सकेगा।



नोट्स कृपाराम ने 1541 ई. में हिततरंगिनी नामक ग्रंथ लिखा था, हिततरंगिनी कुल मिलाकर 400 छंदों का ग्रंथ है।

कृपाराम—हिंदी-रीति-परंपरा के आदि आचार्यों में कृपाराम का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। इनके विषय में सिवाय इसके कि इन्होंने 1541 ई. में 'हिततरंगिनी' नामक ग्रंथ लिखा था, और कोई भी तथ्य उपलब्ध नहीं है। कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि ये ओड़छा में रहनेवाले पंजाबी वैष्णव ब्राह्मण रहे होंगे, किंतु इसकी पुष्टि के लिए सबल प्रमाणों की अपेक्षा है। 'हिततरंगिनी' कुल मिलाकर 400 छंदों का ग्रंथ है तथा पाँच तरंगों में विभक्त है। प्रथम तरंग में शृंगार के आलंबन नायिका और नायक के विभिन्न भेदोपभेदों का उल्लेखमात्र है। द्वितीय तरंग में सखी और उसके कर्मों तथा दूती, उसके उत्तमादि भेदों एवं कर्मों के उपरांत स्वकीया के सामांतर भेदों का लक्षण उदाहरण-सहित निरूपण है जबकि तृतीय और चतुर्थ तरंगों में क्रमशः परकीया और सामान्या के भेदों का वर्णन किया गया है। अंतिम तरंग में व्यवहार के आधार पर उत्तमादि का तथा मान और गर्व के आधार पर क्रमशः धीरादि और रूपगर्वितादि भेदों के उपरांत अवस्थानुसार दश नायिकाओं का वर्णन किया गया है। प्रथम तरंग में पति, उपपति और वैशिक नामक तीनों भेदों का उल्लेख तो हुआ है, किंतु नायिकाभेद के समान यहाँ एतद्विषयक लक्षण-उदाहरण देने का प्रयत्न नहीं किया गया। इसी प्रकार आरंभ में ग्रंथकार की प्रतिज्ञा शृंगार-विवेचन संबंधी ग्रंथ प्रस्तुत करने की रही है, किंतु आलंबन और उद्दीपन के संक्षिप्त विवेचन के अतिरिक्त इस रस के इतर अंगों तथा भेदों की चर्चा तक नहीं की गई। अतएव कहा जा सकता है कि यह ग्रंथ मूलतः नायिकाभेद-विवेचन के उद्देश्य से ही लिखा गया है और नायक-भेद, मान, मान-मोचन-उपायों, कामदशाओं तथा सखी और दूती के भेदों एवं उनके कर्मों का उल्लेख अथवा वर्णन इस विषय से किसी-न-किसी रूप में संबद्ध होने के कारण ही कर दिया गया है। किंतु, संक्षेप के आग्रह के रहते हुए भी कृपाराम का विवेचन पर्याप्त व्यवस्थित, सुबोध एवं सरस है। विवेचन का आधार, स्थान-स्थान पर दिए गए भरत के साक्ष्यों से, यद्यपि 'नाट्यशास्त्र' प्रतीत होता है; तथापि भानुदत्त की 'रसमंजरी' का प्रभाव भी इस पर कम स्पष्ट नहीं है। विवेचन-व्यवस्था ग्रंथकार की अपनी है। इतना ही नहीं, मुग्धा के ललिता, वयःसंधि और उदितयौवना तथा सामान्य के मुग्धा और मध्या नामक नवीन भेदों के अतिरिक्त अवस्थानुसार नायिकाओं में स्वाधीनपतिका की-तथा गर्विता के नवीन भेद सरलोक्तिगर्विता की-उद्भावना सर्वथा मौलिक है। लक्षण और उदाहरण दोहा आदि छोटे छंदों में होते हुए भी इतने सुगठित हैं कि विषय सहज ही स्पष्ट होता चला जाता है। रीति-निरूपण के समान ही कृपाराम को कविकर्म में भी अत्यंत सफल कहा जा सकता है। विभिन्न नायिकाओं संबंधी जो छंद इसमें दिए गए हैं, उनमें अधिकांश इतने कवित्वपूर्ण हैं कि परवर्ती कवि भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। इनकी काव्य-शैली का एक उदाहरण देखिए—

अति प्रवीन वह सुंदरी, मोहन को हित आँकि।

सबकी दीठि बचाइके, गई झरोखनि झाँकि॥

सूरदास—कृपाराम के बाद इस काल के दूसरे महत्त्वपूर्ण रीतिकवि सूरदास कहे जा सकते हैं। इन्होंने कृपाराम अथवा अपने परवर्तियों के समान लक्षणों की रचना न कर सीधे लक्ष्य-पदों की रचना द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रमाणित कर दिया है कि इस युग में भी रीतिकाल के समान रीतिबद्ध काव्य की रचना हुई; इनके 'सूरसागर'

नोट

के अनेक पद जहाँ नायिकाभेद और शृंगार रस की सामग्री के शास्त्रीय परिवेश में लिखे हुए प्रतीत होते हैं, वहाँ इनकी 'साहित्यलहरी' के पद इन विषयों के अतिरिक्त विविध अलंकारों के उदाहरणों के रूप में प्रत्यक्ष रूप से लिखे हुए कहे जा सकते हैं। रस-सामग्री और अलंकार के साथ-साथ निरूपण की शैली का सर्वप्रथम प्रयोग इसी ग्रंथ में हुआ है—रीतिकाल में याकूब खाँ और राय शिवप्रसाद ने अपने 'रसभूषण' नामक ग्रंथों की इस प्रकार की संक्षेप शैली के लिए इसी से संकेत ग्रहण किया होगा। अंतर केवल इतना ही है कि इनमें जहाँ विवेच्य रस-सामग्री और अलंकार के लक्षण भी लक्षणपरक छंदों में एकसाथ देकर तथा कठिन स्थलों की गद्य में व्याख्या करके विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है, वहाँ इसमें पद के अंतिम चरण में उनके नाम-निर्देश के द्वारा अपने कर्म की इतिश्री समझ ली गयी है। वैसे, इतना अवश्य है कि लक्षणों के न होते हुए भी निर्दिष्ट रसांग और अलंकार विशेष का इसमें अन्वेषण किया जा सकता है। लक्षणों के न होने के कारण यह पता लगाना कठिन है कि सूर पर किसका प्रभाव रहा है, पर अलंकारों के विवेचन-क्रम को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अप्पय दीक्षित के 'कुवलानंद' में गृहीत एतद्विषयक क्रम को ही इसका आधार बनाया गया है। कवित्व की दृष्टि से यदि इस ग्रंथ की परीक्षा की जाए, तो कहना होगा कि दृष्टिकूट-शैली का प्रयोग होने के कारण यह चित्रकाव्य की कोटि की रचना है। किंतु, संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग करते हुए भी कवि ने ब्रजभाषा के सहज माधुर्य तथा शृंगार और भक्ति का जिस सफलता के साथ सहज निर्वाह किया है, वह निश्चय ही इसके रचयिता की प्रतिभा और भाषा पर उसके सहज अधिकार का परिचायक है।

नंददास—हिंदी-साहित्य के अंतर्गत नंददास यद्यपि भक्त कवि के रूप में ही प्रसिद्ध हैं, तथापि इस काल में रीति-निरूपण की जो धारा कृपाराम से आरंभ हुई थी उसको आगे बढ़ानेवालों में इनका महत्त्व भी असंदिग्ध है। रीति-निरूपण संबंधी इनके एकमात्र ग्रंथ 'रसमंजरी' की रचना 1550 ई. के आसपास हुई थी। इसमें दोहा-चौपाई की शैली में नायक-नायिकाओं तथा भाव, हाव, हेला और रतिभाव का परिचय दिया गया है। भानुदत्त की 'रसमंजरी' के आधार पर इसमें स्वकीया और परकीया के भेदोपभेदों तथा आवश्यकतानुसार नायिकाओं के नौ भेदों के साथ धृष्ट, शठ, दक्षिण और अनुकूल नामक नायक के चार भेदों एवं हावादिक के स्वरूप को समझाया गया है—सामान्या का मात्र उल्लेख किया गया है तथा शेष विषयों को छोड़ दिया गया है; अतएव विवेचन-क्षेत्र और मौलिकता की दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है। इसकी विशेषता इसी बात में निहित है कि लक्षण-उदाहरणों का चक्कर छोड़कर विभिन्न नायिकाओं के गुण, स्वभाव, चेष्टा आदि के द्वारा उनके स्वरूप को सहज बोधगम्य बना दिया गया है। ग्रंथोद्देश्य के रूप में ग्रंथकार का यह कथन कि एक मित्र की जिज्ञासा शांत करने के लिए मैं नायिकाभेद का वर्णन कर रहा हूँ, इस ओर सहज ही संकेत करता है कि इस काल के अंतर्गत भक्ति के सिद्धांतों के निरूपण के प्रसंग में प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करने के उद्देश्य से नायिकाभेद की जो चर्चा वैष्णव भक्तों के बीच में सामान्यतः हुआ करती थी, उसी के परिणामस्वरूप भक्त कवियों का संपर्क काव्यशास्त्र के साथ बढ़ा और क्रमशः इतर काव्यांगों के विषय में उनका ज्ञानवर्द्धन ही नहीं हुआ, आगे चलकर कुछ कवियों ने तत्संबंधी ग्रंथों का सृजन भी किया।

केशवदास—भक्तिकाल के इतर रीति-निरूपकों की तुलना में व्यापक विवेचन-क्षेत्र को ग्रहण करते हुए प्रखर पाण्डित्य, आचार्यत्व के गांभीर्य, स्वतंत्र चिंतन एवं असाधारण प्रतिभा द्वारा परवर्ती कवियों को प्रभावित करने तथा उनसे उचित सम्मान प्राप्त करने के कारण आचार्य केशव 'रीतिकाल का प्रवर्तक' कहलाने के सहज अधिकारी कहे जा सकते हैं। इनके विषय में ज्ञातव्य है कि ये राजा प्रातपरुद्र के आश्रित सनाढ्य ब्राह्मण पं. कृष्णदत्त के पौत्र और राजा मधुकरशाह से सम्मानित पं. काशीनाथ मिश्र के पुत्र थे तथा ओड़छा-नरेश महाराज इंद्रजीतसिंह इन्हें अपने गुरु के रूप में सम्मान देते थे—इंद्रजीतसिंह के बड़े भाई महाराज रामसिंह इन्हें मंत्री और मित्र के रूप में मानते थे। विद्वानों का अनुमान है कि इनका जन्म 1560 ई. के आसपास और मृत्यु 1601 ई. के लगभग हुई थी। इनके द्वारा रचित ग्रंथ हैं—रसिकप्रिया (1591), रामचंद्रिका (1601), कविप्रिया (1601), रतन बावनी (1607 ई. के लगभग), वीरसिंहदेवचरित (1607), विज्ञानगीता (1610), जहाँगीरजसचंद्रिका (1612), नखशिख और छंदमाला। इनमें 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' और 'छंदमाला' रीतिग्रंथ हैं, जिनमें क्रमशः अलंकारों और छंदों का निरूपण किया गया है। 'रामचंद्रिका' में राम-कथा का प्रबंधात्मक वर्णन है; 'रतनबावनी',

नोट

‘वीरसिंहदेवचरित’ और ‘जहाँगीरजसचंद्रिका’ आश्रयदाताओं की प्रशस्तिविषयक है; ‘विज्ञानगीता’ में प्रतीक-शैली में आध्यात्मिक विषय को प्रस्तुत किया गया है तथा ‘नखशिख’ में परंपरागत उपमानों की सहायता से राधा के विभिन्न अंगों का वर्णन हुआ है।

‘रसिकप्रिया’ में सोलह प्रकाश हैं जिनमें से प्रथम तरह में क्रमशः शृंगार रस के भेदों, नायक-नायिका के भेदों, दर्शन के विविध प्रकारों, मिलन-स्थलों, भाव-हावों, अवस्थानुसार अष्ट नायिकाओं, विप्रलंभ शृंगार के भेदों, कामदशाओं, मन के भेदों, मानमोचन के उपायों, करुण और प्रवास विप्रलंभ, सखी के भेदों और उसके विविध कर्मों का निरूपण किया गया है—शेष तीन में क्रमशः शृंगारेतर रसों, वृत्तियों तथा पंचविध रसदोषों का विवेचन है। ‘रसिकप्रिया’ के समान कविप्रिया भी सोलह प्रभावों में विभक्त है। इनमें प्रथम चार के अंतर्गत आश्रयदाता-वंश, कवि-वंश, काव्य-दूषण और कवि-भेद का वर्णन है, जबकि पाँचवें से आठवें तक के प्रभावों में विभिन्न उपशीर्षकों से सामान्यालंकारों का तथा शेष में विशेष अलंकारों का विवेचन किया गया है। ‘छंदमाला’ दो भागों में विभक्त है—प्रथम भाग में 77 वर्णवृत्तों तथा द्वितीय में 26 मात्रावृत्तों को लक्षण-उदाहरण-सहित प्रस्तुत किया गया है। अतएव कहा जा सकता है कि इस काल के कवियों द्वारा गृहीत नायक-नायिकाभेद-निरूपण की साधारण परिपाटी से आगे बढ़कर केशव ने रस, अलंकार, दोष और वृत्ति के विवेचन द्वारा रीति-निरूपण-क्षेत्र के फलक को अधिक विस्तार प्रदान किया। दूसरे, इनके पूर्ववर्तियों ने जहाँ केवल भानुदत्त की ‘रसमंजरी’ और ‘रसतरंगिणी’ का आश्रय लेकर अपनी दृष्टि सीमित रखी, वहाँ इन्होंने ‘रसिकप्रिया’ में इनके अतिरिक्त रुद्रट के ‘शृंगारतिलक’, विश्वनाथ के ‘साहित्यदर्पण’, रूपगोस्वामी-कृत ‘उज्ज्वलनीलमणि’, वात्स्यायन के ‘कामसूत्र’ आदि का तथा ‘कविप्रिया’ में ‘दंडी के काव्यादर्श’, केशव मिश्र के ‘अलंकारशेखर’ आदि का आश्रय लेकर अपने दृष्टिकोण को कहीं अधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न किया। इसके साथ ही इन्होंने स्वतंत्र चिंतन भी किया जिसके परिणामस्वरूप शृंगार में इतर रसों का अंतर्भाव कर उसकी श्रेष्ठता को, तथा काव्य में अलंकारों के महत्त्व को, प्रबल शब्दों में प्रतिपादित करने का इनका प्रयत्न रहा। किंतु, इतना होते हुए भी ये कोई मौलिक योगदान नहीं कर सके। स्वतंत्र चिंतन और सबल प्रतिपादन के कारण इनकी रचनाओं में जो मौलिक उद्भावनाएँ प्रतीत होती हैं वे या तो अशास्त्रीय रह गई हैं या फिर किसी-न-किसी रूप में संस्कृत-काव्यशास्त्र में विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए ‘रसिकप्रिया’ में वर्णित अनुकूलादि चार प्रकार के नायकों के प्रकाश और प्रच्छन्न नामक उपभेद तथा मुग्धा नायिका के नवलवधू, नवल अनंगा और लज्जाप्रहाररति नामक भेद भिन्न प्रसंगों में क्रमशः भोज के ‘शृंगारप्रकाश’ तथा शिंगभूपाल के ‘रसावर्णसुधाकर’ में देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार ‘कविप्रिया’ में निरूपित अंध, वधिर और पंगु नामक दोष मम्मट द्वारा निरूपित प्रसिद्धविरुद्ध, असमर्थ और हतवृत्तता से पृथक् नहीं कहे जा सकते—अलंकार निरूपण के लिए ये केशव मिश्र और दंडी के ऋणी हैं। उधर शृंगार के रसराजत्व और उसमें अन्य रसों के अंतर्भाव का संकेत भोज के ‘शृंगारप्रकाश’ में मिलने से इनकी इस प्रकार की मान्यताओं में कोई अद्भुत बात है ही नहीं, साथ में इन्होंने उदाहरणों द्वारा उनको अंतर्भुक्त करने का जो प्रयत्न किया है, वह अशास्त्रीय ही नहीं; अपने-आपमें हास्यास्पद भी बन गया है। इन सीमाओं के रहते हुए भी अपनी बात को प्रबल शब्दों में कहने का साहस और उसे प्रमाणित करने का सामर्थ्य, दोनों ही विद्यमान हैं—यह बात दूसरी है कि अतिवाद अथवा मनोवैज्ञानिकता के अभाव में इनकी बात किसी को मान्य न हो अथवा अशास्त्रीय समझी जाए। कदाचित् इसी गुण कारण रीतिकाल के अनेक कवि इनके सिद्धांतों का अनुसरण न करते हुए भी इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते रहे।

आचार्यत्व के समान कवित्व की दृष्टि से भी केशव का अत्यंत गौरवपूर्ण स्थान है। भक्तिकालीन कवियों में संभवतः ये पहले कवि हैं जिन्होंने ब्रजभाषा में मुक्तकों के साथ-साथ प्रबंधकाव्य की रचना का सूत्रपात किया। विज्ञानगीता, वीरसिंहदेवचरित, जहाँगीरचंद्रिका, रतनबावनी और रामचंद्रिका—ये पाँच ग्रंथ इनकी प्रबंध-रचनाएँ कही जा सकती हैं। इनमें ‘रामचंद्रिका’ सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसमें महाकाव्य की शैली अपनाई गई है। किंतु, अनेक ऐसे विद्वान हैं जो इसके महाकाव्यत्व को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। उनका कहना है कि इस ग्रंथ में न तो वह कथाक्रम है जो महाकाव्य के लिए अपेक्षित है और न समुचित कथा प्रवाह का ही इसमें सम्यक् निर्वाह किया गया है—विभिन्न प्रसंगों को भी इसके रचयिता ने अपनी रुचि के अनुसार विस्तार और संकोच प्रदान कर दिया

नोट

है। दूसरी ओर चरित्र-चित्रण और भाषा-शैली की दृष्टि से यह ग्रंथ अपने-आप में अव्यवस्थित ही है। किंतु फिर भी इसके महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। स्थान-स्थान पर छंद-परिवर्तन भले ही इसके प्रवाह में व्याघात उत्पन्न कर देता हो, पर शैली की दृष्टि से तो यह नया प्रयोग है ही। इसी प्रकार विषयवस्तु में वर्णन का अनुपात न होना भी इस बात का द्योतक है कि ग्रंथकार जीवन के सरस प्रसंगों को ही मनोयोग के साथ ग्रहण करना उचित समझता रहा है। इधर राजकीय वर्णनों और संवादों की दृष्टि से तो यह काव्य अपने-आपमें इतना अनूठा है कि इस सीमा तक हिंदी-साहित्य का कोई भी कवि नहीं पहुँच पाया। वस्तुतः 'रामचंद्रिका' केशव का असाधारण महाकाव्य है, जिसमें परंपरा-पालन के स्थान पर वैशिष्ट्य-सन्निवेश का ध्यान अधिक रखा गया है। 'रामचंद्रिका' के अतिरिक्त जहाँ तक शेष चार प्रबंधकाव्यों का प्रश्न है, उनमें प्रथम का महत्त्व जहाँ तत्त्व-चिंतन तक ही सीमित रहा है, वहाँ शेष तीन ऐतिहासिक सामग्री के लिए प्रामाणिक स्रोत हो सकते हैं। कवित्व की दृष्टि से इनमें 'रतनबावनी' को थोड़ा आदर दिया जा सकता है, जिसमें वीर रस का उत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर हो सकता है—अन्य दो में आध्यात्मिकता का अच्छा निर्वाह हुआ है, पर ये कवित्व की दृष्टि से उतने ऊँचे नहीं उठ सके; वीर रस के सम्यक् परिपाक के स्थान पर इनमें अधिकांशतः राजविषयक रति का निर्वाह ही रह गया है।

मुक्तक काव्यों में केशव के रसिकप्रिया, कविप्रिया और नखशिख—ये तीन ग्रंथ ही आते हैं। इनका वर्ण्य विषय मुख्यतः शृंगार ही है, यद्यपि 'रसिकप्रिया' के अंतर्गत इतर रसों का संक्षिप्त वर्णन भी हुआ है तथा 'कविप्रिया' में कवि के आश्रयदाता इंद्रजीतसिंह की प्रशस्ति संबंधी अनेक छंद समाविष्ट हैं। यहाँ यह कह देना असंगत न होगा कि इनका रचयिता रसिक होते हुए भी रस का समुचित परिपाक करने में पूर्ण रीति से समर्थ नहीं हो पाया। इसका मुख्य कारण यही है कि उसने रस-परिपाक को अनुभावों के वर्णन तक ही सीमित समझा है—संचारियों का वर्णन उसकी कविता में खोजने पर ही मिलता है। दूसरी ओर, इस व्यक्ति ने प्रतिभा होने पर भी उसका समुचित उपयोग नहीं किया। किसी भी विषय को रसात्मक बनाने के लिए कल्पना के उचित प्रयोग द्वारा जिस भव्य चित्र-योजना की अपेक्षा होती है उसको वह प्रायः उपेक्षित ही कर गया है। इसका कारण वस्तुतः यही मानना चाहिए कि इस प्रकार के वर्णनों में उसका मन नहीं रमा—बुद्धि के सहारे ही सब कुछ किया गया है, क्योंकि दूसरी ओर राजसी ठाठबाट के वर्णनों में उसका काव्य अत्यंत निखरा हुआ प्रतीत होता है। अभिव्यंजना की दृष्टि से भी केशव का समग्र साहित्य शिथिल कहा जाएगा। उसमें न तो भावों के अनुकूल गुण और रीति का उपयोग किया गया है और न शब्दों का ही यथार्थ प्रयोग हुआ है। वस्तुओं के रूप, रंग, आकार आदि को स्पष्ट करने के लिए जिन उपमानों की अपेक्षा होती है उनको प्रस्तुत करने पर भी विषयों को अस्पष्ट अथवा हास्यास्पद बना दिया गया है। इसके अतिरिक्त छंदों में भी कहीं-कहीं अनगढ़पन है। न्यूनपदत्व और अधिकपदत्व के कारण इनमें और भी भोंडापन आ गया है। भावों की मौलिकता की भी इनमें न्यूनता है—अधिकांश विदग्ध-उक्तियाँ संस्कृत की उक्तियों का ब्रजभाषा में रूपांतरमात्र हैं। फिर भी, यह मानना होगा कि यदि केशव का आविर्भाव न हुआ होता तो रीतिकालीन कवि अपने युग की कविता को कला-शिल्प की दृष्टि से मूल्यवान् बना सकते; इसमें संदेह है। इनकी कविता से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

केशोदास लाख लाख भाँतिन के अभिलाष,
बारि दे री बावरी न बारि हिए होरी सी।
राधा हरि के री प्रीति सबते अधिक जानि,
रति रतिनाह हूँ में देखो रति थोरी सी॥
तिनहूँ में भेद न भवानि हूँ पै पार्यो जाइ,
भारती की भारती है कहिबे को भोरी सी।
एकै गति एकै मति एकै प्राण एकै मन,
देखिबे को देह द्वै हैं नैनन को जोरी सी॥

रहीम—हिंदी में केशव के बाद रीति-निरूपण-कर्म में रीतिकाल के अनेक कवियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने के बाद अब्दुरहीम खानखाना को भक्तिकाल और रीतिकाल को जोड़नेवाले कवियों की श्रेणी में महत्त्वपूर्ण

नोट

स्थान दिया जा सकता है। रीतिकवियों के रूप में इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—‘नायिकाभेद’ और ‘नगरशोभा’। नायिकाभेद में नायक-नायिकाभेद का तथा ‘नगरशोभा’ में विभिन्न वर्णों के अनुसार विभिन्न नायिकाओं का वर्णन किया गया है। ‘नायिकाभेद’ की रचना भानुदत्त की ‘रसमंजरी’ के आधार पर की गई है और इसमें नायक-नायिका के अतिरिक्त सखी और उसके कर्मों तथा चतुर्विध दर्शन का वर्णन बरवै छंद में किया गया है। इस ग्रंथ में एक-दो लक्षणपरक छंदों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें संकलित जो बरवै छंद आज मिलते हैं, वे मूल ग्रंथ के उदाहरणमात्र हैं—लक्षणपरक छंदों में से अधिकांश लुप्त हो गए हैं। जो हो, इस ग्रंथ के आधार पर यह सहज ही कहा जा सकता है कि ग्रंथकार ने अत्यंत मनोयोग के साथ अपने विषय का विवेचन किया है। मौलिकता की दृष्टि से इसका भले ही महत्त्व न हो, किंतु स्वच्छ, सुबोध, सरस एवं संक्षिप्त विवेचन की दृष्टि से यह अपने-आपमें अद्वितीय रचना है। अवधी भाषा में लिखे गए रीति-निरूपण संबंधी ग्रंथों में संभवतः यह प्रथम है। यही बात ‘नगरशोभा’ के विषय में कही जा सकती है। इसका आधार यद्यपि कोई काव्यशास्त्रीय ग्रंथ नहीं रहा, तथापि इसमें भी कोई बात नहीं है—वर्णव्यवसाय के आधार पर दस प्रकार की सखियों का वर्णन केशव की ‘रसिकप्रिया’ में भी हुआ है। हो सकता है कि वहीं से संकेत ग्रहण कर इन्होंने नायिकाभेद का यह आधार बना लिया हो। वैसे भी, शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रकार की उद्भावना का महत्त्व नहीं; कारण, नायिकाभेद का मूल आधार स्त्री का पुरुष के प्रति अथवा पुरुष का स्त्री के प्रति रतिभाव है, जिसका इन भेदों के मूल में कोई स्थान नहीं। पर चूँकि देव आदि रीतिकाल के कतिपय कवियों ने इस प्रकार का वर्णन किया है, अतएव इस दिशा में ये उनके प्रेरक तो कहे ही जा सकते हैं। जहाँ तक इनके कवित्व का प्रश्न है, इनकी रचनाएँ सरस हैं। भक्ति और नीति—जैसे शुष्क विषयों को भी इन्होंने कांतासम्मत उपदेश का सरस रूप दे दिया है। ये सीधी-सादी बात को सीधे-सादे शब्दों में कुछ इस प्रकार से व्यक्त करते हैं कि तद्गत बिंब की स्वच्छ रेखाएँ सहृदय के मनःपट पर उभरकर गहरा प्रभाव छोड़ जाती हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि कवि ने अपनी रचनाओं में वैयक्तिक एवं लोक के अनुभवों को ही स्थान दिया है—दूरारूढ़ कल्पना का आश्रय लेकर विचित्र अनुभूतियों का सन्निवेश करने का प्रयत्न नहीं किया।

सुंदर कविराय—लक्षण-उदाहरण की रीति-निरूपण-शैली में शृंगार रस को रसरज मानकर उसके आलंबन नायक-नायिकाभेद का विशेष तथा इतर अंगों का सामान्य विवेचन कर सुंदर कविराय ने इस युग के केशव, सेनापति आदि रीतिकारों और रीतिकाल के इन विषयों के विवेचक कवियों के बीच की कड़ी को जोड़ने का कार्य किया है। ये जाति के ब्राह्मण और ग्वालियर के रहनेवाले थे तथा इन्हें शाहजहाँ का आश्रय प्राप्त था। ‘सुंदर शृंगार’ (1631) इनका नायक-नायिकाभेद और शृंगार-रस-निरूपण संबंधी प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनके साथ ही इसमें सखी-कर्म-और दूती-भेद, नायक-भेद और नर्मसंचित, दर्शन-भेद, संयोग शृंगार और हाव-भाव, विप्रलंब शृंगार और दश कामदशाओं तथा उद्दीपन विभावों का वर्णन किया गया है। लक्षण सामान्यतः दोहों में हैं और उदाहरण कवित्त, सवैया, दोहा आदि छंदों में। विवेचन का आधार मुख्य रूप से भानुदत्त की ‘रसमंजरी’ प्रतीत होती है—अंतर केवल इतना ही है कि नायिकाभेद में मध्या के अतिविश्रब्ध नवोद्गा, परकीया के कन्यका तथा नायक के प्रोषितपति और प्रोषितवैशिक भेदों को जहाँ इन्होंने स्वीकार नहीं किया है, वहाँ रूप और प्रेम के आधार पर मानी नायक के दो उपभेदों की उद्भावना की है तथा कामशास्त्र के आधार पर पद्मिनी आदि चार प्रकार की नायिकाओं का सन्निवेश केशव के समान किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि मौलिकता की दृष्टि से इस ग्रंथ का विशेष महत्त्व नहीं है, पर सुबोध लक्षणों और तदनुरूप उदाहरणों ने इसे अत्यंत उपयोगी बना दिया है। इसके अतिरिक्त भाव भाषा आदि की दृष्टि से भी यह अपने-आपमें पर्याप्त कवित्वपूर्ण है—स्वच्छ, गंभीर भावों की प्रसादगुण-संपन्न स्वच्छ भाषा में अभिव्यक्ति से इनकी कविता सामान्यतः सरस बन गई है।

न्यामत खाँ जान—केशव और चिंतामणि के बीच विविधांग-निरूपण-शृंखला की कड़ी के रूप में न्यामत खाँ जान का नाम भी लिया जा सकता है। अधिकांशतः प्रेममार्गी ग्रंथों की रचना करने के कारण ये यद्यपि मुख्य रूप से प्रेममार्गी कवि के रूप में ही प्रसिद्ध हैं, तथापि काव्यांग-निरूपण संबंधी ग्रंथों की रचना में मनोयोग प्रदर्शित करने के कारण इन्हें भक्तिकाल के अंतिम चरण के उन रीतिनिरूपकों की श्रेणी में भी सहज ही परिगणित किया जा सकता है जिन्होंने रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति के प्रसार के लिए उपयुक्त वातावरण उपस्थिति किया। संप्रति इनके रीतिनिरूपण संबंधी चार ग्रंथ—रसकोश (1619), कविवल्लभ (1647), सिंगारतिलक (1652) तथा रसमंजरी

नोट

(1652) ही उपलब्ध हैं। इनमें 'रसकोश' जहाँ नवरस और नायक-नायिकाभेद-विवेचन संबंधी है, वहाँ 'कविवल्लभ' में दोष, गुण, अलंकार और छंद का विवेचन किया गया है—शेष दो क्रमशः रुद्रभट्ट के 'शृंगारतिलक' और भानुदत्त की 'रसमंजरी' के अनुवाद हैं। इन ग्रंथों में इन्होंने यद्यपि अपने विवेचन के आधार को स्पष्ट नहीं किया, तथापि लक्षणों को देखने से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्रंथकार ने भानुदत्त, रुद्रभट्ट और दंडों के ग्रंथों का आश्रय ग्रहण किया है—छंदोंविवेचन के लिए 'प्राकृतपैंगलम्' और भट्ट केदार के 'वृत्तरत्नाकर' जैसे प्रचलित आधार-ग्रंथों के स्थान ब्रजभाषा के किसी छंदोंविवेचन विषयक ग्रंथ को आधार बनाया गया है। कतिपय लक्षण ऐसे ही हैं जिन पर मम्मट के 'काव्यप्रकाश' का प्रभाव स्पष्ट है। अतएव कह सकते हैं कि लक्षणों की रचना में इन्होंने यथारुचि संस्कृत के अनेक ग्रंथों को आधार बनाया है, जो इनके दृष्टिकोण की व्यापकता का परिचायक है। मौलिकता की दृष्टि से इनमें कोई नवीन बात देखने को नहीं मिलती—सामान्यतः प्रकारांतर से वही बातें विवेच्य विषयों संबंधी लक्षणों में कही गई हैं, जो पूर्ववर्ती संस्कृताचार्यों तथा केशव आदि हिंदी-रीतिनिरूपकों द्वारा कही गई है। हाँ, भाषा के व्यास और समास नाम परंपरा-प्रचलित दो भेद बताते हुए अपने लक्ष्य ग्रंथों में इन्होंने काव्य-भाषा के विषय में जो यह कहा है—

अच्छर सरल सरल ही भाव, समझत ही बाढ़ै चित चाव।
अच्छर सरल होइ सुध भाषा, ताकी सब करिहैं अभिलाषा॥
ऊकति विसेष सांचु कै जानहु, भाषा जो आवै सो जानहु।
ऊकति भली भाषा मैं आवै, तौ यह सोना सुगंध कहावै।

उसके आधार पर यह सहज ही स्थापित किया जा सकता है कि इनके समय तक आते-आते कविता को कविजन कला के रूप में ग्रहण करने के अतिरिक्त तद्विषयक निमित्त दृष्टिकोण भी रखने लगे थे। जान ने कदाचित् इसीलिए केवल उन्हीं काव्यांगों का विवेचन किया है जिनकी उपस्थिति अथवा बहिष्कार काव्योक्ति का सुंदर बनाने के लिए अनिवार्य है। विवेच्य काव्यांगों के विषय में इनके ये विचार द्रष्टव्य हैं—

(अ) भोजन नीरस लागिहै, लौन बिना कह जान।

त्यौं नौ रस बिनु ग्रंथ है, ताते करौं बखान॥

(आ) गुननि सहित दूषन रहित, कवित नारि आकार।

अलंकार बिनु यौं लगत, ज्यौं तिय बिनु शृंगार॥

कहना न होगा कि ये विचार मौलिक न होते हुए भी इनके निर्भ्रान्त दृष्टिकोण के परिचायक होने के कारण इनके आत्मविश्वास को भी प्रकट करते हैं। यही कारण है कि इनके लक्षण सामान्यतः स्वच्छ एवं सुबोध बन पड़े हैं—इनके दृष्टिकोण से भले ही कोई सहमत न हो, पर उसमें किसी प्रकार का कलुष नहीं देख सकता। किंतु दुर्भाग्य की बात है कि इतने स्पष्ट विचार रखते हुए एवं 71 ग्रंथों की रचना करने पर भी इनका कवित्व अत्यंत साधारण स्तर पर ही रह गया है। वास्तव में इन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रयोग कविता के स्थान आदि काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के प्रणयन में ही किया होता, तो संभव है कि ये कुछ अधिक स्थायी योगदान कर गए होते।



टास्क रीतिकाव्य तथा रीतिकाव्य के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त में उल्लेख कीजिए।

अन्य रीतिकार—रीतिनिरूपण में प्रत्यक्ष रूप में भाग लेनेवाले कवियों के साथ ही भक्तिकाल के अंत में कुछ ऐसे कवि भी हुए जिन्होंने रीति-प्रभावित काव्य की रचना कर रीतिकाल के लिए उस क्षेत्र में भी पृष्ठभूमि का निर्माण किया। इनमें प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं—बलभद्र मिश्र और मुबारक। ओरछा-निवास कवि **बलभद्र** (रचना-काल 1580 ई.) हिंदी के ख्यातनामा कवि केशवदास के अग्रज थे। इनके द्वारा लिखित पाँच ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—शिखनख बलभद्री व्याकरण, गोवर्द्धन सतसई टीका, हनुमन्नाटक तथा दूषण विचार। इस समय इनमें से प्रथम कृति ही उपलब्ध है। इसमें नायिका की अंग-छवि का नखशिख-पर्यन्त स्वच्छ आलंकारिक वर्णन

नोट

मिलता है। रूप-वर्णन में तन्मयता के साथ कवि ने भाषा पर अपने अधिकार का भी असंदिग्ध प्रमाण दिया है। इनके परिवर्ती कवियों में मोहनलाल मिश्र (रचना-काल 1589 ई.) के 'शृंगारसागर' का भी उल्लेख किया जाता है, किंतु यह कृति संप्रति उपलब्ध नहीं है। मुबारक (रचना-काल 1623 ई.) की 'तिल शतक' और 'अलक शतक' नखशिख-वर्णन संबंधी संक्षिप्त कृतियाँ हैं जिनमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के माध्यम से सरस कल्पनामूलक रूप-चित्रण मिलता है। भक्तिकालीन रीतिकाव्य में ये अपने ढंग की एकमात्र कृतियाँ हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

7. हिततरंगिनी कुल मिलाकर 400 छंदों का गंथ है तथा पाँच तरंगों में विभक्त है।
8. नंददास के बाद कबीर इस काल के दूसरे महत्त्वपूर्ण रीतिकवि कहे जा सकते हैं।
9. रीति-निरूपण संबंधी ग्रंथ 'रासमंजरी' की रचना 1550 ई. के आसपास हुई थी।
10. आचार्यत्व के समान कवित्व की दृष्टि से भी केशव का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है।
11. अभिव्यंजना की दृष्टि से भी केशव का समग्र साहित्य शिथिल नहीं कहा जाएगा।
12. सुंदर कविराम जाति के ब्राह्मण और उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे।

14.2 सारांश (Summary)

- चौदहवीं शताब्दी के अंत में देवप्रभ द्वारा रचित 'कुमारपाल रासो' भिन्न शैली की रचना है। वह कृति जैन-रास-काव्यों तथा वीर-प्रशस्तिपरक 'रासो' काव्यों की प्रवृत्तियों का समन्वय प्रस्तुत करती है। इसमें राजा कुमारपाल की वीरता, उदारता, अहिंसा-प्रेम तथा नैतिकता-प्रचार का वर्णन है। एक ओर तो यह काव्य जैन धर्म की प्रवृत्तियों का काव्य की सरस भाव-भूमि पर अप्रत्यक्ष रूप में प्रसार करता है और दूसरी ओर राजा के अव्यक्तित्व तथा लोकमंगलकारी प्रभाव को भी व्यापक बनाता है। समस्त रचना में धार्मिकता कहीं पर भी उभरकर काव्य की सरसता में बाधक नहीं बनी।
- रीति-निरूपण की यह प्रवृत्ति भक्ति के प्रखर की तुलना में अत्यंत क्षीण रही—भक्ति की पूरक होकर ही आविर्भूत हुई और उसके सहारे से ही आगे बढ़ती रही, तथापि शनैः-शनैः राजदरबारों में प्रवेश करते ही यह भक्ति के अवलंबन को छोड़कर स्वतंत्र प्रवृत्ति का रूप धारण कर उत्तरोत्तर पुष्ट होती गई। रीतिकाल में इसी का पुष्ट रूप दृष्टिगत होता है।

14.3 शब्दकोश (Keywords)

1. हस्तलिखित—हाथ से लिखी हुई
2. नीतिकार—योजना बनाने वाला
3. सम्मान—इज्जत देना, मान देना।

14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. (अ) वीरकाव्य (ब) प्रबंधात्मक चरितकाव्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. अकबरी दरबार काव्य से क्या तात्पर्य है? समझाइए।
3. रीतिकाव्य तथा इसके प्रमुख कवियों के विषय में उल्लेख कीजिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

- | | | | |
|---------------|-------------|-------------|-----------|
| 1. रणमल्ल-छंद | 2. रत्नसिंह | 3. चरितनायक | 4. (ग) |
| 5. (घ) | 6. (क) | 7. सत्य | 8. असत्य |
| 9. सत्य | 10. सत्य | 11. असत्य | 12. असत्य |

14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—धवन डॉ. मधु, वाणी प्रकाशन।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, पंचशील प्रकाशन।
3. हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास—शर्मा रमेशचंद्र, विद्या प्रकाशन, कानपुर।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—वार्णोय डॉ. लक्ष्मीसागर, लोकभारती प्रकाशन।

नोट

इकाई-15 : रीतिकाल : प्रमुख प्रवृत्तियाँ, दरबारी संस्कृति एवं लक्षण ग्रंथों की परंपरा

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 15.1 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, लक्षण ग्रंथों की परंपरा और दरबारी संस्कृति
 - 15.1.1 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
 - 15.1.2 दरबारी संस्कृति
 - 15.1.3 लक्षण ग्रंथों की परंपरा
- 15.2 सारांश (Summary)
- 15.3 शब्दकोश (Keywords)
- 15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ जानने में।
- रीतिकाल में लक्षण ग्रंथों की परंपरा समझने में।
- रीतिकाल में दरबारी संस्कृति का वर्णन करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सम्वत् 1700 वि. से 1900 वि. (1643-1843 ई.) तक के कालखंड को **रीतिकाल** की संज्ञा प्रदान की है। उनके अनुसार इस काल में 'रीति तत्व' की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए इसका नामकरण रीतिकाल किया गया है। इस काल के अधिकांश कवियों ने आचार्यत्व का निर्वाह करते हुए लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रीति ग्रंथों की रचना की जिनमें अलंकार, रस, नायिका भेद, आदि काव्यांगों का विस्तृत विवेचन किया गया। अपनी काव्य प्रतिभा दिखाने के लिए इन कवियों के लिए लक्षण ग्रंथ लिखना अनिवार्य था। काव्यांग चर्चा में ये गौरव का अनुभव करते थे तथा इस युग में इस बात पर विवाद होते थे कि इस पंक्ति में कौन-सा अलंकार, शब्द-शक्ति, रस या ध्वनि है। काव्यांगों के लक्षण एवं स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत करने वाले रीति ग्रंथों की प्रचुरता के कारण ही इस काल में रीति तत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है और इसी कारण इस काल का नाम **रीतिकाल** रखा गया है।

यद्यपि भक्तिकाल में कुछ कवियों ने रीति ग्रंथ लिखे हैं। यथा—सूरदास कृत **साहित्य लहरी** में तथा नंददास कृत '**रस मंजरी**' में रीति निरूपण किया गया है तथापि रीतिकाल में सैकड़ों कवियों ने लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर

रीति ग्रंथ लिखे। मतिराम, चिंतामणि, भूषण, ग्वाल, पद्माकर, देव, भिखारीदास, प्रतापसाहि जैसे कवियों ने रीति ग्रंथ लिखकर युगीन प्रवृत्ति का परिचय दिया।

15.1 रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, लक्षण ग्रंथों की परंपरा और दरबारी संस्कृति

रीतिकाल के लिए जो अन्य नाम दिए गए उनमें प्रमुख हैं—अलंकृतकाल, शृंगारकाल, कलाकाल, उत्तर मध्यकाल। मिश्र बंधुओं ने इस काल में अलंकरण की प्रवृत्ति को परिलक्षित कर इसे ‘अलंकृतकाल’ कहा है। कुछ अन्य आलोचकों ने इस काल की कविता में कलापक्ष की प्रधानता को देखकर इसे ‘कला काल’ कहना उचित माना है जबकि आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल में शृंगार रस की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए इसका नाम शृंगारकाल रखा है। उक्त सभी नामों में रीतिकाल नाम अधिक उपयुक्त है, क्योंकि रीति ग्रंथों की प्रचुरता से रचना इस काल में हुई है, अतः यह नामकरण प्रवृत्तिमूलक है तथा सबको स्वीकार भी है। मध्यकाल के पूर्व भाग को ‘भक्तिकाल’ तथा उत्तर भाग को ‘रीतिकाल’ कहा गया है। इस आधार पर यदि कोई रीतिकाल को उत्तर मध्यकाल कहना चाहे तो असंगत नहीं है।

संस्कृत में ‘रीति’ शब्द का प्रयोग आचार्य वामन ने एक विशेष संप्रदाय ‘रीति संप्रदाय’ का प्रवर्तन करते हुए किया। उनके अनुसार, “विशिष्ट पद रचना रीतिः” अर्थात् विशेष प्रकार की पद रचना रीति है। ‘विशेषों गुणात्मा’ कहकर उन्होंने विशेषत्व को स्पष्ट किया अर्थात् वाक्य में विशिष्टता का समावेश गुणों से होता है। ओज, प्रसाद, माधुर्य, कांति, आदि काव्य के गुण बताए गए हैं। रीति का अर्थ शैली, पद्धति एवं मार्ग भी है।

हिंदी में रीति शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं हुआ। यहाँ रीति ग्रंथ का तात्पर्य काव्यांग निरूपण करने वाले लक्षण ग्रंथों से लिया गया है। जिन ग्रंथों में अलंकार, रस, ध्वनि, शब्द, शक्ति, नायिका भेद, आदि काव्य तत्वों का निरूपण लक्षण, उदाहरण शैली में किया गया उन्हें रीति ग्रंथ कहा गया। इन रीति ग्रंथों को लक्षण ग्रंथ भी कहा गया।

रीतिकाल के लक्षण ग्रंथकारों ने अपने रीति ग्रंथों की रचना प्रायः काव्य शिक्षा देने के उद्देश्य से तथा अपनी काव्य प्रतिभा एवं पांडित्य प्रदर्शन के उद्देश्य से की है। अधिकांश लक्षण ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी पर लिखे गए। इनमें से कुछ तो निश्चय ही प्रतिभाशाली आचार्य कवि थे, किंतु लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रचना करने वाले रीतिकाल के सैकड़ों कवि वस्तुतः आचार्य कोटि में नहीं आते, वे कवि ही हैं। आचार्यत्व के लिए जिस प्रतिभा, सूक्ष्म विश्लेषण एवं विवेचन शक्ति की आवश्यकता होती है उसका नितांत अभाव इन कवि आचार्यों में था। इसीलिए उनके द्वारा निरूपित काव्यांगों के लक्षण अधूरे, अधकचरे एवं अपरिपक्व ज्ञान पर आधारित थे परिणामतः वे कहीं गलत हो गए हैं तो कहीं अस्पष्ट एवं भ्रामक हैं। इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल इन्हें आचार्य कोटि में न मानकर कवि ही मानते हैं।

15.1.1 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

रीतिकालीन काव्य में पाई जाने वाली प्रवृत्तियाँ उपर्युक्त परिस्थितियों से पूर्ण सामंजस्य रखती हैं। इस काव्य की रचना सामंती छत्रछाया में हुई, अतः उसमें वे सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो दरबारी काव्य में होनी चाहिए। रीतिकाल का कवि जनता का कवि न होकर ‘राजदरबार’ का कवि था, अतः उसके काव्य में अलंकरण की प्रधानता, चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति एवं शृंगारिकता का सहजपुट आना स्वाभाविक ही था। उसका संपूर्ण काव्य नारी के चारों ओर केंद्रित है और उसमें रसिकता की प्रधानता है। सामान्य रूप में रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है—

1. **रीति निरूपण**—रीतिकालीन कवियों की प्रधान प्रवृत्ति है—‘रीति निरूपण’ अर्थात् लक्षण ग्रंथों की रचना करना। इस प्रवृत्ति को प्रधान मानकर ही आचार्य शुक्ल ने इस काल का नाम रीतिकाल रखा है। संस्कृत काव्यशास्त्र को हिंदी में रूपांतरित करने का काम रीतिकालीन आचार्यों द्वारा किया गया है। विभिन्न काव्यांगों के लक्षण एवं उदाहरण देते हुए अनेक कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना की। सामान्य पाठकों को काव्यशास्त्र की जानकारी कराना तथा काव्यशास्त्र की मर्मज्ञता का प्रदर्शन करना ही इन ग्रंथों के

नोट

रचयिताओं का उद्देश्य रहा है। केशव की 'कविप्रिया', चिंतामणि की 'कविकुल कल्पतरु', 'शृंगार मंजरी', मतिराम की 'ललित ललाम' गोप की 'रामचंद्राभरण', भूषण की 'शिवराजभूषण', 'देव' की 'रस विलास', आदि ऐसी ही रीति निरूपक रचनाएँ हैं। इन कवियों ने संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों को आधार बनाकर अपने लक्षण ग्रंथों की रचना की है, किंतु संस्कृत काव्यशास्त्र में जो सूक्ष्म चिंतन एवं विश्लेषण है, उसका यहाँ नितान्त अभाव है। रीतिकालीन आचार्यों द्वारा काव्यशास्त्र के क्षेत्र में कोई मौलिक उपलब्धि प्राप्त नहीं की जा सकी। यही नहीं अपितु कहीं-कहीं इनके द्वारा प्रस्तुत किए गए लक्षण भ्रम मूलक हैं। इन्हीं सब कारणों से आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन रीति ग्रंथकारों को आचार्य न मानकर कवि ही माना है। इनके अनुसार, "हिंदी में लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रचना करने वाले सैकड़ों कवि हुए हैं, वे आचार्य कोटि में नहीं आ सकते।"

2. **शृंगारिकता**—रीतिकालीन कवियों के काव्य का केंद्र बिंदु है—शृंगार। इस काव्य में नखशिख के द्वारा नायिका के रूप-सौंदर्य की झाँकी प्रस्तुत की गई है तथा राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का विविध प्रकार से चित्रण किया गया है, जिसमें भक्ति भावना का लेश भी नहीं है। नायिका-भेद के अंतर्गत भी शृंगार ही प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है। रीतिकालीन दरबारी परिवेश एवं कामुक मनोवृत्ति के कारण शृंगार एवं उससे संबंधित विषय ही इन कवियों को विशेष प्रिय रहे हैं। इनकी शृंगारिकता में रूप लिप्सा, भोगेच्छा, विलासिता एवं शरीर सुख की कामना ही दिखाई पड़ती है। रीतिकालीन लक्षण ग्रंथकारों ने शृंगार रस वर्णन में ही अपनी रुचि अधिक दिखाई है। काव्यशास्त्र की परंपरा में बंधे हुए लक्षण ग्रंथों में शृंगार के विभिन्न भेद-उपभेद, हाव-भाव, नायिका भेद, आदि का विशद निरूपण किया गया है। डॉ. नगेंद्र ने रीतिकालीन काव्य में शृंगार की प्रधानता को लक्ष्य कर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा है—

“सांचा चाहे जैसा भी रहा हो, इसमें ढली शृंगारिकता ही।”

शृंगार रस के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग का चित्रण रीतिकालीन काव्य में किया गया है। संयोग चित्रण में कहीं-कहीं अश्लीलता का समावेश भी हो गया है, विशेष रूप से उन स्थलों पर जहाँ सूरत वर्णन या विपरीत रति का वर्णन किया गया है। वियोग-वर्णन के अंतर्गत रीतिमुक्त स्वच्छंद कवियों ने हृदय की आकुलता एवं विकलता का मार्मिक एवं अनुभूतिपरक चित्रण किया है, जबकि बिहारी ने विरह ताप एवं विरहजन्य कृशता का ऊहात्मक वर्णन किया है, जो कहीं-कहीं मजाक की हद तक पहुँच गया है। प्रेम के उदात्त पक्ष का चित्रण रीतिकाल के बहुत कम कवि ही कर सके हैं। रीतिकालीन कवियों की शृंगारिकता के संबंध में डॉ. भगीरथ मिश्र का यह मत समीचीन प्रतीत होता है—“शृंगारिकता के प्रति उनका दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर वे नहीं जा सके। प्रेम का अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या, आदि उदात्त पक्ष भी उनकी दृष्टि में बहुत आए हैं।” वियोग वर्णन में इन कवियों ने शास्त्रीय कामदशाओं का निरूपण किया है। स्मृति, गुण, कथन, प्रलाप, आदि के द्वारा अपनी मनोदशा का चित्रण तत्कालीन नायिकाएँ करती दिखाई गई हैं। रीतिकालीन शृंगार में रूपलिप्सा, प्रेमजन्य विलासिता, शारीरिक सुख की कामना, भोगेच्छा एवं नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण जैसी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

3. **अलंकारिकता**—दरबारी काव्य होने के कारण रीतिकालीन काव्य में अलंकरण की प्रधानता है। कविगण कविता-सुंदरी को अलंकारों से सुसज्जित करने में अपने कवि कर्म की सार्थकता समझते थे। विलासी दरबारी-मनोवृत्ति के कारण भी कवियों को काव्य में सहजता के स्थान पर कृत्रिम अलंकारिकता का समावेश करना पड़ा। अलंकारों के प्रति इनका मोह अति प्रबल था। वे प्रयत्नपूर्वक काव्य में अलंकारों को समाविष्ट करते थे और इस प्रकार अपनी बुद्धि का लोहा मनमाने को विवश करते थे। वस्तुतः वे 'केशव' की इस उक्ति के पक्षधर थे—

“जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न विराजई कविता बनिता मित॥”

‘अलंकारों’ के बिना कविता-सुंदरी सुशोभित नहीं होती, भले ही वह अन्य गुणों से युक्त क्यों न हो। अपनी इस मान्यता के अनुरूप उन्होंने अपने काव्य में अलंकारों का समावेश किया। अलंकार के पीछे दौड़ने के

नोट

कारण अधिकांश स्थलों पर 'काव्य' विकृत हो गया है, क्योंकि वहाँ अनुभूति प्रमुख न होकर अलंकार का चमत्कार ही प्रमुख है। 'केशव' में ऐसे प्रसंग संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक हैं। अलंकारिक के चमत्कार के मोह में काव्यत्व की हानि हो गई है। रीतिकालीन कवियों ने सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। सादृश्यमूलक, विरोधमूलक, संभावनामूलक, चमत्कारमूलक एवं अतिशयमूलक अलंकार इस काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं। संभावनामूलक उत्प्रेक्षा अलंकार की प्रचुरता होने के कारण रीतिकाव्य में कल्पना की ऊँची उड़ान और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित हुई है। बिहारी के काव्य में एक ओर तो उत्प्रेक्षा का सौंदर्य विद्यमान है तो दूसरी ओर यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे शाब्दिक चमत्कार की सृष्टि करते हुए अलंकार प्रयोग की कुशलता का परिचय दिया गया है। बिहारी की उत्प्रेक्षाएँ बड़ी सटीक एवं मनोहारी बन पड़ी हैं, यथा—

सोहत ओढ़ैं पीत पट स्याम सलोने गात।

मनों नीलमनि सैल पर आतप पर्यौ प्रभात॥

रीतिकालीन कवि के लिए अलंकारशास्त्र की जानकारी एक अपरिहार्य आवश्यकता थी। इस ज्ञान के बिना उसे सम्मान मिलना कठिन था, परिणामतः इस काल में अलंकारिकता खूब फली-फूली। अलंकार जो कविता का 'साधन' है, इस काल में आकर 'साध्य' बन गया। यहाँ तक कि कुछ कवियों ने तो केवल अलंकार की जानकारी को प्रदर्शित करने के लिए ही काव्य रचना की।

4. **आश्रयदाताओं की प्रशंसा**—रीतिकाल के अधिकांश कवि विभिन्न राजदरबारों के आश्रय में रहते थे। बिहारी, देव, भूषण, सूदन, केशव, मतिराम, आदि सभी प्रसिद्ध कवि राजदरबारों से वृत्ति प्राप्त करते थे, अतः यह स्वाभाविक था कि वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में काव्य रचना करते। 'देव' ने अपने आश्रयदाता भवानी सिंह के लिए 'भवानी-विलास' तथा कुशल सिंह के लिए 'कुशल विलास' की रचना की तो 'सूदन' ने भरतपुर के राजा सुजान सिंह की प्रशंसा में 'सुजान चरित' लिखा। वीर रस के प्रसिद्ध कवि 'भूषण' ने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी' तथा छत्रसाल बुंदेला की प्रशंसा में 'छत्रसाल दशक' की रचना की। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने भूषण की इन रचनाओं की प्रशंसा करते हुए लिखा है—“शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता। वे आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं हैं। इन वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिंदू जनता स्मरण करती है, उसी की व्यंजना भूषण ने की है।” परंतु यदि भूषण जैसे कुछ कवियों को छोड़ दिया जाए, तो रीतिकाल के अधिकांश कवियों के द्वारा की गई आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण है। 'उमरदराज महाराज तेरी चाहिए' की उद्घोषणा करने वाले इन दरबारी कवियों को अपनी जीविका के लिए दरबारों से वृत्ति मिलती थी, अतः आश्रयदाताओं का गुणगान करना इनकी विवशता थी। 'देव' जैसे प्रसिद्ध कवि को कई आश्रयदाता बदलने पड़े, किंतु उन्हें स्थायी आश्रय प्राप्त नहीं हुआ। कवियों को येन-केन-प्रकारेण अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए प्रयत्नशील रहना पड़ता था और कभी-कभी उनके प्रतिद्वंद्वी उन्हें दरबार से निलकालने में भी सफल हो जाते थे। राजनीतिक दांव-पेंच एवं जोड़-तोड़ में लगे रहने वाले इन दरबारी कवियों के काव्य में स्वतः स्फूर्त काव्य रचना की वह प्रवृत्ति दिखाई नहीं पड़ती जो भक्तिकाल में थी।

5. **बहुज्ञता एवं चमत्कार प्रदर्शन**—रीतिकालीन काव्य में बहुज्ञता का प्रदर्शन करने के साथ-साथ चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। बिहारी जैसे कवियों के काव्य में ज्योतिष, आयुर्वेद, पुराण, गणित, नीतिशास्त्र काव्यशास्त्र, चित्रकला आदि अनेक विषयों की जानकारी समाविष्ट है। अपने दोहों में ज्योतिष की अनेक उक्तियों का समावेश कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि इस विद्या में भी उनकी गहरी पैठ है। उदाहरण के लिए निम्न दोहे को लिया जा सकता है, जिसमें **राजयोग प्रकरण** का उल्लेख है—

“सनि कज्जल चख झख लगन उपज्यो सुदिन सनेह।

क्यों न नृपति है भोगवै लहि सुदेस सब देह॥”

इसी प्रकार आयुर्वेद-ज्ञान का परिचय 'जरी विषमजुर ज्याइये आय सुदरसन देहु' में दिया है।

नोट

रीतिकालीन कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए प्रायः यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे अलंकारों का सहारा लिया है। इनके काव्य में शब्दों की पच्चीकारी एवं कला की रमणीयता पर अधिक ध्यान दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि रीतिकाल में चमत्कार प्रदर्शन को ही वास्तविक कवि कर्म समझा जाने लगा था, यही कारण है कि भक्ति भावना विरूपक दोहों में भी बिहारी चमत्कार प्रदर्शन को तिलांजलि नहीं दे सके। उदाहरण के लिए बिहारी सतसई का मंगलाचरण विषयक पहला दोहा लिया जा सकता है—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै स्यामु हरित दुति होय॥

यहाँ राधा की वंदना उतनी प्रमुख नहीं है जितनी श्लेष के चमत्कार द्वारा तीन-तीन अर्थों की अभिव्यक्ति करना। झाँई, स्यामु एवं हरित-दुति पद शिल्प हैं। वर्ण्य विषय की मार्मिकता एवं भाव व्यंजना पर रीतिकालीन कवियों ने उतना ध्यान नहीं दिया, जितना शब्द सामर्थ्य के प्रदर्शन एवं अलंकारों की योजना पर दिया।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. संस्कृत काव्यशास्त्र को हिंदी में रूपांतरित करने का काम आचार्यों द्वारा किया गया है।
2. रीतिकालीन कवि के लिए अलंकारशास्त्र की जानकारी एक आवश्यकता थी।
3. और की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता।
4. कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए प्रायः यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे अलंकारों का सहारा लिया है।

6. **भक्ति एवं नीति**—रीतिकाव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य तो शृंगार ही है, तथापि उसमें भक्ति एवं नीति संबंधी सैकड़ों सूक्तियाँ यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाती हैं। रीतिकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का गान करते हुए जो रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, उनमें शृंगारिकता के साथ-साथ भक्ति-भावना भी विद्यमान है। अधिकांश रीति कवियों ने अपने जीवन के संध्याकाल में भक्ति एवं वैराग्य से ओतप्रोत रचनाएँ लिखी हैं, ऐसा शायद उन्होंने अपने पाप बोध के कारण किया है। इस संबंध में डॉ. नगेंद्र की यह टिप्पणी अत्यंत सटीक है—“रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नहीं है—हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उनके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करें अथवा सैद्धांतिक निषेध कर सकें।”

रीतिकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण के नाम को आधार बनाकर जो रचनाएँ प्रस्तुत की हैं उनमें भक्ति-भावना प्रमुख न होकर शृंगार-भावना ही प्रमुख है। वस्तुतः उनके हृदय में भक्तिकालीन कवियों की भाँति राधा-कृष्ण के प्रति श्रद्धा भाव नहीं था, क्योंकि वे सामान्य नायक-नायिका के रूप में प्रेम क्रीड़ाएँ करते हुए चित्रित किए गए हैं। उन्होंने अपनी भक्ति भावना के संबंध में स्पष्ट घोषणा करते हुए कहा है—

रीझिहैं सुकवि जो तौ जानौ कविताई।
न तौ राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है॥

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी की काव्य कृति ‘बिहारी सतसई’ में लगभग 70 दोहे भक्ति भावना से संबंधित हैं। दरबारी वातावरण के प्रभाव से इन कवियों ने रीति संबंधी उक्तियों को भी काव्य निबद्ध किया है। बिहारी सतसई में नीति संबंधी अनेक दोहें उपलब्ध हैं। इसी प्रकार घाघ, बेताल, वृंद, निरधरदास ने नीति संबंधी काव्य की रचना की है। वृंद सतसई में नीति संबंधी सुंदर उक्तियों को काव्य रूप दिया गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

भले बुरे सब एक सम जौ लौं बोलत नाँह।
जानि परत हैं काग पिक रितु वसंत के माँह॥

7. **नारी के प्रति कामुक दृष्टिकोण**—रीतिकालीन काव्य का केंद्रबिंदु 'नारी चित्रण' रहा है। नायिका के नखशिख चित्रण में उन्होंने अधिक रुचि दिखाई है। नारी के ऐंद्रिक बाह्य रूप के निरूपण में ही उनकी वृत्ति अधिक रमी है, उसके आंतरिक गुणों का चित्रण उन्होंने नहीं किया। नारी के विभिन्न अंगों का स्थूल एवं मांसल चित्र अंकित करते हुए उन्होंने काव्य रसिकों को उसके मनमोहक स्वरूप से ही परिचित कराया। उनके समक्ष नारी का एक ही रूप था—विलासिनी प्रेमिका का, अतः वे इसके अन्य पक्षों की ओर से नितान्त उदासीन रहे। नारी को वे भोगविलास का उपकरण मात्र समझते थे अतः उसके अन्य रूपों—गृहिणी, माता, भगिनी, देवी आदि का चित्रण उन्होंने नहीं किया। नारी के प्रति इस एकांगी दृष्टिकोण के कारण वे नारी-जीवन की सामाजिक महत्ता एवं उसकी श्रद्धा समन्वित गौरवमयी मूर्ति को दिखा सकने में सफल नहीं हुए।

रीतिकालीन कवियों ने नारी को कामुक दृष्टि से देखा, इसलिए उनकी वृत्ति नायिका के अंग-प्रत्यंग की शोभा का निरूपण करने में, उसके हाव-भाव का चित्रण करने में और उसकी विलास चेष्टाओं का वर्णन करने में ही अधिक रमी। नारी के प्रति उनका संकुचित दृष्टिकोण तत्कालीन दरबारी वातावरण एवं परिवेश से अनुप्राणित था। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने रीतिकालीन नारी भावना के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—“यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संघटन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बंधन से यथासंभव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है।” रीतिकालीन कवि नारी को पुरुष के आकर्षण का केंद्र एवं उसकी अंकशायिनी मात्र समझते थे। **देव कवि** की यह उक्ति इस धारणा के समर्थन उद्धृत की जा सकती है—

कौन गनै पुर वन नगर कामिनी एकै रीति।
देखत हरै विवेक कौं चित्त हरै करि प्रीति॥

रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने नारी के प्रति इसी दृष्टिकोण पर बल देते हुए उसके रूप के प्रति तीव्र आसक्ति का परिचय दिया है।

8. **प्रकृति चित्रण**—रीति कवियों ने प्रकृति चित्रण प्रायः उद्दीपन एवं अलंकारिक रूप में किया है। प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण बहुत कम हुआ है। नायक-नायिका की मानसिक दशा के अनुकूल प्रकृति भी संयोगकाल में सुखद एवं वियोगकाल में दुःखद रूप में चित्रित की गई है। परंपरागत रूप में षड्ऋतु वर्णन एवं बारहमासे का चित्रण भी इन कवियों ने किया है, परंतु उसमें कोई नवीनता नहीं है। रीतिकालीन विलासी वातावरण में रहे हुए इन कवियों को इतना अवकाश ही कहाँ था, कि वे प्रकृति के मनोहर स्वरूप पर रीझकर काव्य रचना करते? **सेनापति** जैसे एक दो कवियों ने ही प्रकृति के मनोरम चित्र अंकित किए हैं अन्यथा बिहारी, देव, मतिराम, भिखारीदास, आदि कवियों के षड्ऋतु वर्णन में उद्दीपन रूप में ही प्रकृति चित्रण उपलब्ध होता है। **सेनापति को ऋतु वर्णन में अप्रतिम सफलता प्राप्त हुई है।** उन्होंने सभी ऋतुओं का सुंदर वर्णन किया है। **वर्षा काल** का एक चित्र द्रष्टव्य है—

“सेनापति उनए नए जलद सावन के,
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात कैहूँ भाँति।
आने हैं पहार मानों काजर के ढोय कै॥”

रीतिकाल के एक अन्य कवि **पद्माकर** का **वसंत वर्णन** भी अत्यंत आकर्षण बन पड़ा है—

“द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में
देखी दीप दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में वेलिन में,
बनन में, बागन में बग्यौ बसंत है॥”

नोट

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति का निरूपण अप्रस्तुत विधान के रूप में भी किया है। उन्होंने प्रकृति से विभिन्न उपमान लेकर नायिका के अंग सौंदर्य का चित्रण किया है। कमल, चंद्रमा, हंस, कोकिल, चातक, मेघ, पर्वत, पुष्प, आदि इसी प्रकार के उपमान हैं।

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी के काव्य में भी प्रायः सभी ऋतुओं का वर्णन उपलब्ध होता है। निम्न दोहों में वासंती मकरंद से तृप्त भौरों का अत्यंत मनोरम चित्र अंकित किया गया है—

छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधवी गंध।
ठौर-ठौर झौरत झपत भौर-झौर मधु अंध।

रीतिकाल में यद्यपि प्रकृति चित्रण का अभाव नहीं है तथापि प्रकृति के प्रति इनका दृष्टिकोण तटस्थ था। छायावादी कवियों ने जिस प्रकार प्रकृति को आलंबन बनाकर मनोहर काव्य की रचना की, वैसा रीतिकाल के कवि नहीं कर पाए।

9. **संकुचित जीवन दृष्टि**—रीतिकालीन कवियों की जीवन दृष्टि अत्यंत संकुचित दिखाई पड़ती है। किसी महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे काव्य रचना में प्रवृत्त नहीं हुए अपितु शृंगार-प्रधान काव्य लिखकर उन्होंने आश्रयदाता विलासी राजाओं का मनोरंजन मात्र किया। अधिकांश कवि नायिका के कटाक्ष कुशल नेत्रों, उन्नत उरोजों, रक्ताभा कपोलों, रससिक्त अधरों, पुष्ट जंघाओं और द्युतिमान अंगों के सौंदर्य का निरूपण करने में ही कवि कर्म की सार्थकता समझते रहे। जीवन के प्रति जिस व्यापक दृष्टिकोण की अपेक्षा उत्तम काव्य रचना के लिए की जाती है, उसका नितांत अभाव रीतिकालीन काव्य में है। इन कवियों ने जीवन के विविध पक्षों की ओर से अपनी दृष्टि हटाकर शृंगार के सीमित वृत्त में ही केंद्रित कर ली। **डॉ. भगीरथ मिश्र** ने रीतिकालीन कवियों की इस प्रवृत्ति पर विचार करते हुए कहा है—“ऐसा लगता है कि रीति कविता के रचयिता यौवन और वसंत के कवि हैं। जीवन का फूलता हुआ सुधार रूप ही उन्हें प्रिय है। उसने जीवन का एक-ही स्वरूप लिया, एक ही पक्ष लिया, यह इस धारा के कवि की संकीर्णता है, दुर्बलता है और एकांगिता है।”

दरबारी वातावरण एवं विलासितापूर्ण जीवन ने इन कवियों की दृष्टि को इतना संकुचित बना दिया था कि वे जीवन और जगत की व्यापकता पर दृष्टिपात भी न कर सके। भक्तिकालीन काव्य जहाँ महान संदेश का वाहक है, वहीं रीतिकालीन काव्य से ऐसा कोई संदेश प्राप्त नहीं होता। गंभीर चिंतन एवं व्यापक जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति का कोई प्रयास रीतिकालीन कवि ने नहीं किया। उसकी आधार भूमि इतनी संकुचित है कि जीवन की अनेकरूपता के लिए वहाँ स्थान ही नहीं है।

10. **मुक्तक काव्य की रचना**—रीतिकालीन में यद्यपि कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गए हैं, तथापि रीति कवियों ने मुक्तक काव्य की रचना की ओर ही अपनी रुचि प्रदर्शित की है। जब राजदरबारों में कवि दंगलों का आयोजन किया जाता हो और दूसरे से बाजी मार लेने की प्रतिस्पर्धा चल रही हो वहाँ प्रबंध रचना की प्रवृत्ति पनप ही नहीं सकती। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** का मत है—“यदि प्रबंध काव्य विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता। इसी से वह सभा-समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है।” अलंकारिकता, चमत्कारप्रियता एवं बहुज्ञता का प्रदर्शन करने हेतु भी मुक्तक रचना की प्रवृत्ति का विकास रीतिकाल में हुआ। तत्कालीन दरबारी वातावरण के लिए मुक्तक रचनाएँ ही अधिक उपयुक्त थीं, क्योंकि राजा-महाराजाओं के पास इतना अवकाश कहाँ था कि वे प्रबंध काव्य को सुनकर उसकी सराहना करते। कविगण तो एक ही दोहे या छंद में अपनी काव्य प्रतिभा का पूर्ण उत्कर्ष दिखाकर राजा-महाराजा को चमत्कृत करने में विश्वास करते थे। बिहारी जैसे रससिद्ध कवियों ने दोहे जैसे छोटे छंद में ही रस की अपूर्व सृष्टि की है।
11. **ब्रजभाषा का प्रयोग**—भक्तिकाल में जो ब्रजभाषा कृष्ण काव्य तक सीमित रही, वह रीतिकाल में आकर पूर्णतः काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई और लगभग दो सौ वर्षों तक हिंदी काव्य जगत पर एकछत्र शासन करती रही। रीतिकाल में केवल ब्रज क्षेत्र के कवियों ने ही नहीं अपितु संपूर्ण हिंदी क्षेत्र के कवियों ने ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की। मराठी क्षेत्र भूषण ने, पंजाब में गुरु गोविंद सिंह ने, बुंदेली क्षेत्र (ओरछा) में केशव ने तथा राजस्थानी क्षेत्र (आमेर) में बिहारी ने ब्रजभाषा में ही अपनी रचनाएँ प्रस्तुत

नोट

कीं। निष्कर्ष यह कि रीतिकाल तक आते-आते ब्रजभाषा व्यापक काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी। रीतिकालीन ब्रजभाषा अपने शब्द सौष्ठव, आनुप्रासिकता, मधुरता एवं पदलालित्य के कारण काव्य भाषा के लिए पूर्ण उपयुक्त बन चुकी थी, किंतु उसमें कवियों ने मनमानी तोड़-मरोड़ भी की। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने रीतिकालीन ब्रजभाषा के इस दोष की ओर संकेत करते हुए हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है—“रीतिकाल में एक बड़े अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी। ... यदि शब्दों के रूप स्थिर हो जाते और शुद्ध रूपों के प्रयोग पर जोर दिया जाता, तो शब्दों को तोड़-मरोड़कर विकृत करने का साहस कवियों को न होता, पर इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं हुई, जिससे भाषा में बहुत कुछ गड़बड़ी बनी रही।”

रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा में अवधी शब्दों एवं रूपों का इच्छानुसार प्रयोग किया है। बिहारी की भाषा में ‘कीन’, ‘दीन’ जैसे क्रिया रूप इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। इस काल की ब्रजभाषा में फारसी शब्दों का प्रयोग भी बढ़ चला था। रीतिकालीन ब्रजभाषा में फारसी शब्दों के प्रयोगाधिक्य पर टिप्पणी करते हुए **शुक्ल जी** लिखते हैं—“राजा-महाराजाओं के दरबार में विदेशी शिष्टता और सभ्यता के व्यवहार का अनुकरण हो रहा था और फारसी के लच्छेदार शब्द वहाँ चारों ओर सुनाई देने लगे। अतः भाट या कवि लोग ‘आयुष्मान’ और ‘जय जयकार’ ही तक अपने को कैसे रख सकते थे? वे भी दरबार में ‘उमरदराज महाराज तेरी चाहिए’ पुकारने लगे।”

रीतिमुक्त कवियों की भाषा में लाक्षणिकता का सौंदर्य भी विद्यमान है। लक्षणा और व्यंजना का सहारा लेते हुए घनानंद जैसे कवि ने काव्य भाषा की शक्ति का परिचय दिया है। **आचार्य शुक्ल** ने घनानंद की काव्य भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है—“घनानंद जी उन बिरले कवियों में हैं, जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूप-रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिंदी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षण एवं व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।”

निष्कर्ष यह कि रीतिकालीन ब्रजभाषा में एक ओर तो माधुर्य एवं नाद सौंदर्य विद्यमान है तो दूसरी ओर उसमें आनुप्रासिकता एवं लाक्षणिकता होने से उसका सौंदर्य द्विगुणित हो गया है। इन कवियों की भाषा सामर्थ्य भी अपूर्व ही कही जा सकती है।

रीतिकालीन कवियों ने कवित्त, सवैया, दोहे अधिक लिखे हैं जो उनके वर्ण्य विषय के लिए पूर्णतः उपयुक्त छंद थे। इन कवियों ने एक ओर तो लक्षण ग्रंथ लिखकर हिंदी काव्य-रसिकों को काव्यशास्त्र से परिचित कराया तो दूसरी ओर शृंगार प्रधान रचनाएँ लिखकर काव्य में माधुर्य का समावेश किया। **‘बिहारी सतसई’ रीतिकाल की सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जा सकती है**, जो अपनी काव्य कला, भाषा सामर्थ्य एवं आलंकारिकता के कारण एवं अद्वितीय कृति बन पड़ी है। बिहारी, देव, सेनापति, घनानंद, केशव, भिखारीदास, पद्माकर जैसे सशक्त कवियों की रचनाओं से संपन्न रीतिकाल निश्चित रूप से हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण काल है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न—

5. वृंद सतसई में नीति संबंधी सुंदर उक्तियों को रूप दिया गया है।
(क) शृंगार (ख) नया
(ग) काव्य (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
6. रीतिकालीन कवि को पुरुष के आकर्षण का केंद्र एवं उनकी अंकशायिनी मात्र समझते थे।
(क) धन (ख) सोना
(ग) हीरे (घ) नारी

7. छायावादी कवियों ने जिस प्रकार को आलंबन बनाकर मनोहर काव्य की रचना की, वैसा रीतिकाल के कवि नहीं कर पाए।

(क) प्रकृति

(ख) धरती

(ग) आकाश

(घ) पक्षियों

नोट

15.1.2 दरबारी संस्कृति

रीतिकाल मुगलों की सत्ता के चरम वैभव का काल है। मुगल साम्राज्य का चरम उत्कर्ष, उत्तरोत्तर ह्रास और फिर पतन भी इसी काल में हुआ। शाहजहाँ के शासनकाल में रीति युग का प्रारंभ हुआ। राजदरबारों में वैभव, भव्यता एवं अलंकरण की प्रधानता थी। राजा और सामंत अपने दरबारों में गुणीजनों, कवियों, कलाकरों को प्रश्रय देते थे। शासकों में आत्म प्रशंसा का मोह एवं शृंगारिक मनोरंजन की चाह थी। ताजमहल एवं मयूर सिंहासन जैसी भव्य कृतियों का निर्माण हो चुका था। उत्तर भारत के अधिकांश राजपूत राजाओं एवं सामंतों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मुगलों का शासन दक्षिण में अहमद नगर, बीजापुर एवं गोलकुंडा तक फैल गया था। शाहजहाँ के उपरांत औरंगजेब मुगल शासक बना जो अपनी धर्मांधता एवं कट्टरता के लिए प्रसिद्ध रहा है। उसका व्यक्तित्व रागात्मक तत्वों से रहित था और साहित्य, संगीत, कला के प्रति उसे कोई रुचि नहीं थी। औरंगजेब ने अपने जीवनकाल में अनेक युद्ध किए तथा राज्य का विस्तार भी किया, किंतु उसके बाद मुगल सत्ता का पतन प्रारंभ हो गया। औरंगजेब के उत्तराधिकारी विलासी, अयोग्य एवं असमर्थ शासक सिद्ध हुए। अनेक प्रदेशों में राजा एवं सामंतों ने अपनी स्वतंत्र सत्ताएँ स्थापित कर लीं, दक्षिण में मराठे स्वतंत्र हो गए। नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण क्रमशः 1739 एवं 1757 ई. में हुए जिससे मुगल साम्राज्य की कमर टूट गई। कालांतर में अंग्रेजों ने बक्सर की लड़ाई में शाहआलम को पराजित कर मुगल साम्राज्य को अपनी कठपुतली बना लिया। जहाँदरशाह, मुहम्मदशाह रंगीले जैसे विलासी एवं कमजोर शासकों के राज्य में 'गिद्धों के नीड़ों में उल्लू रहने लगे और बुलबुलों का स्थान कागों ने ले लिया।'।' वेश्याओं, तबलचियों एवं सारंगी वादकों का राज्य कार्य में दखल होने लगा और शासन व्यवस्था निरंतर कमजोर होती गई।

15.1.3 लक्षण ग्रंथों की परंपरा

रीतिकाल के कुछ प्रमुख लक्षण ग्रंथकार और उनके ग्रंथ इस प्रकार हैं—

1. चिंतामणि—काव्य विवेक, कविकुल कल्पतरु शृंगार
2. मतिराम—रसराम, अलंकार पंचाशिका, ललित ललाम, वृत्त कौमुदी, सतसई।
3. भूषण—शिवराज भूषण, अलंकार प्रकाश, छंदोहृदय प्रकाश, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक।
4. जसवंत सिंह—भाषा भूषण, आनंद विलास, सिद्धांत बोध, अनुभव प्रकाश।
5. कुलपति सिंह—रस रहस्य, नशशिख, दुर्गा भक्ति तरंगिणी।
6. मंडन—रस रत्नावली, रस विलास, नैन पचासा, काव्य रत्न।
7. देव—भाव विलास, भवानी विलास, रस विलास, काव्य रसायन।
8. पद्माकर—जगत विनोद, पद्माभरण, प्रतापसिंह विरुदावली, प्रबोध पचासा, गंगा लहरी।
9. गोप—रामचंद्राभरण, रामचंद्र भूषण, रामालंकार।
10. ग्वाल कवि—नखशिख, अलंकार भ्रम भंजन, रस रूप कवि दर्पण।
11. भिखारीदास—काव्य निर्णय, शृंगार निर्णय, रस सारांश, छंदार्णव पिंगल, छंद प्रकाश।
12. रसलीन—अंगदर्पण, रस प्रबोध।
13. सोमनाथ—रस पीयूष निधि, शृंगार विलास, प्रेम पचीसी।
14. दूलह—कवि कुल कंठाभरण।

नोट

15. हठी जी—श्री राधा सुधा शतक।

16. प्रताप साहि—व्यंग्यार्थ कौमुदी, शृंगार मंजरी, शृंगार शिरोमणि, अलंकार चिंतामणि, काव्य विनोद।

17. द्विजदेव—शृंगार लतिका, शृंगार बत्तीसी, कवि कल्पद्रुम।



क्या आप जानते हैं रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवि

1. बिहारी—बिहारी सतसई।
2. घनानंद—सुजान हित प्रबंध, कृपाकंद निबंध, इश्कलता, पदावली, फुटकल छंद, घनानंद कवित्त।
3. आलम—आलम केलि।
4. बोधा—इश्कनामा, विरह वारीश।
5. ठाकुर—ठाकुर ठसक, ठाकुर शतक।

रीतिकाल के कवियों ने आचार्य बनने का प्रयास अवश्य किया पर उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। शृंगार वर्णन में इन कवियों की वृत्ति अधिक रमी है। राधा-कृष्ण के नाम पर शृंगार के जो चित्र इन कवियों ने अंकित किए हैं, उनमें भक्ति भावना का लेश भी नहीं है। रीतिकालीन काव्य में कलापक्ष की प्रधानता और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य/असत्य बताएँ—

8. शृंगार वर्णन में रीतिकालीन कवियों की वृत्ति अधिक रमी है।
9. कालांतर में अंग्रेजों ने बक्सर की लड़ाई में शाहआलम को पराजित कर मुगल साम्राज्य को अपनी कठपुतली बना लिया।
10. शासकों में आत्मप्रशंसा का मोह एवं शृंगारिक मनोरंजन की चाह नहीं थी।

15.2 सारांश (Summary)

- रीतिकाल के लक्षण ग्रंथकारों ने अपने रीति ग्रंथों की रचना प्रायः काव्य शिक्षा देने के उद्देश्य से तथा अपनी काव्य प्रतिभा एवं पांडित्य प्रदर्शन के उद्देश्य से की है। अधिकांश लक्षण ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी पर लिखे गए।
- रीतिकालीन ब्रजभाषा में एक ओर तो माधुर्य एवं नाद सौंदर्य विद्यमान है तो दूसरी ओर उसमें आनुप्रासिकता एवं लाक्षणिकता होने से उसका सौंदर्य द्विगुणित हो गया है। इन कवियों की भाषा सामर्थ्य भी अपूर्व ही कही जा सकती है।
- रीतिकाल के कवियों ने आचार्य बनने का प्रयास अवश्य किया पर उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। शृंगार वर्णन में इन कवियों की वृत्ति अधिक रमी है। राधा-कृष्ण के नाम पर शृंगार के जो चित्र इन कवियों ने अंकित किए हैं, उनमें भक्ति भावना का लेश भी नहीं है। रीतिकालीन काव्य में कलापक्ष की प्रधानता और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

15.3 शब्दकोश (Keywords)

नोट

1. मनमोहक—दिल को लुभाने वाला
2. कट्टरता—किसी परंपरा या धर्म का कठोरता से पालन करना।

15.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।
2. लक्षण ग्रंथों की परंपरा तथा दरबारी संस्कृति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. प्रमुख लक्षण ग्रंथ एवं उनके रचनाकारों का उल्लेख करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers : Self Assessment)

- | | | | |
|--------------|--------------|-------------------|--------------|
| 1. रीतिकालीन | 2. अपरिहार्य | 3. शिवाजी/छत्रसाल | 4. रीतिकालीन |
| 5. (ग) | 6. (घ) | 7. (क) | 8. सत्य |
| 9. असत्य | 10. सत्य। | | |

15.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—द्विवेदी हजारी प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास—टंडन डॉ. कपूर चंद, जगत राम एंड संस प्रकाशन।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल आचार्य रामचंद्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास—नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।